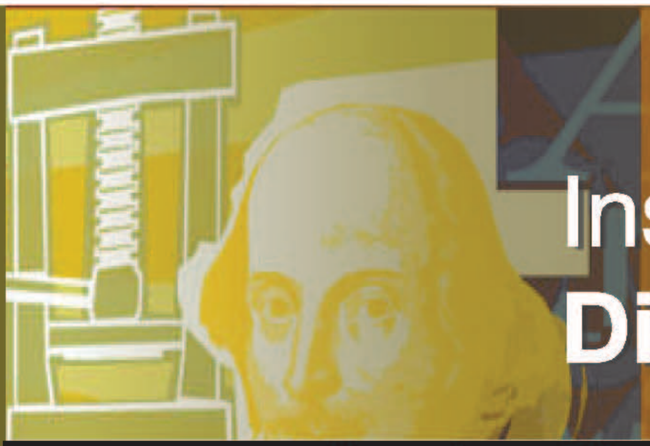

# Institute of Open and Distance Education

**Faculty of Arts**

# आधुनिक हिन्दी गद्य और उसका इतिहास -II

**2MAHIN2**

**DR. C.V. RAMAN UNIVERSITY**

Chhattisgarh, Bilaspur

A STATUTORY UNIVERSITY UNDER SECTION 2(F) OF THE UGC ACT

आधुनिक हिन्दी गद्य और उसका इतिहास -II

Dr. C.V. Raman University
Kargi Road, Kota, BILASPUR, (C. G.),
Ph. : +07753-253801, +07753-253872
E-mail : info@cvru.ac.in | Website : www.cvru.ac.in

**2MAHIN2**

आधुनिक हिन्दी गद्य और उसका इतिहास –II

**2MAHIN2**

# आधुनिक हिन्दी गद्य और उसका इतिहास –II

**Credit- 4**

---

**Subject Expert Team**

---

***Dr. Shahid Hussain, Dr. C.V. Raman*** University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh

***Dr. Aanchal Shrivastav, Dr. C.V. Raman*** University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh

***Dr. Mithalesh Singh Rajput, Dr. C.V. Raman*** University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh

***Dr. Manju Bhatt, Dr. C.V.*** Raman University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh

***Dr. Kalpana Abhishek Pathak,*** *Department of Hindi, Govt. College, Kotari, Mungeli, Chhattisgarh*

***Dr. Radha Sharma, Dr. C.V. Raman*** University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh

---

**Course Editor:**

---

- **Dr. Sandhya Dubey, Associate Professor, *Dr. C.V. Raman* University Khandwa, M.P.**

---

**Unit Written By:**

---

1. Dr. Radha Sharma

(Assistant Professor, Dr. C. V. Raman University)

2. Dr. Pooja Yadav

(Assistant Professor, Dr. C. V. Raman University)

3. Murli Singh Thakur

(Assistant Professor, Dr. C. V. Raman University)

---

**Warning:** All rights reserved, No part of this publication may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the publisher.

---

Published by: Dr. C.V. Raman University Kargi Road, Kota, Bilaspur, (C. G.), Ph. +07753-253801,07753-253872 E-mail: info@cvru.ac.in, Website: www.cvru.ac.in

इकाई इकाई का नाम पृष्ट संख्या

# अनुक्रमणिका

## ब्लॉक -I

इकाई -1 बाण भट्ट की आत्मकथा: हजारी प्रसाद द्विवेदी 1
इकाई -2 निर्धारित निबंध (व्याख्यांश) 16
इकाई -3 निर्धारित कहानियाँ - I 46
इकाई - 4 निर्धारित कहानियाँ – II 65

## ब्लॉक -II

इकाई – 5 समीक्षात्मक अध्ययन - I 81
इकाई – 6 समीक्षात्मक अध्ययन-II 121
इकाई – 7 समीक्षात्मक अध्ययन - III 141
इकाई – 8 'पथ के साथी' संस्मरण की समीक्षा 159

## ब्लॉक -III

इकाई – 9 हिन्दी कहानी का विकास 198
इकाई – 10 निबंध का उद्भव एवं विकास 213
इकाई – 11 अन्य गद्य विधाएँ – I 236
इकाई – 12 अन्य गद्य विधाएँ- II 249

## ब्लॉक -IV

इकाई – 13 निबंधकार भारतेन्दू और प्रताप नारायण मिश्र 267
इकाई – 14 बालमुकुन्द गुप्त एवं सरदार पूर्ण सिंह 287
इकाई – 15 कहानीकार अज्ञेय एवं यशपाल 300
इकाई – 16 फणीश्वर नाथ रेणू एवं अमरकांत 310

# ब्लॉक - I

# इकाई -1

# बाण भट्ट की आत्मकथा: हजारी प्रसाद द्विवेदी

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 हजारी प्रसाद द्विवेदी जीवन परिचय

1.4 साहित्य में स्थान

1.5 बाण भट्ट की आत्मकथा के व्याख्यांश

1.6 सार संक्षेप

1.7 मुख्य शब्द

1.8 स्व -प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

1.9 संदर्भ सूची

1.10 अभ्यास प्रश्न

## *1.1 प्रस्तावना*

इस उपन्यास में बाणभट्ट के प्रमुख पात्रों में राजकुमारी चंद्रदीधति और सुचरिता हैं। इस उपन्यास को हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों की श्रेणी में रखा जाता है। बाणभट्ट की आत्मकथा हजारी प्रसाद द्विवेदी रचित एक ऐतिहासिक हिन्दी उपन्यास (1946) बाणभट्ट की आत्मकथा आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदीरचित एक ऐतिहासिक हिन्दी उपन्यास है। इसमें तीन प्रमुख पात्र हैं- बाणभट्ट, भट्टिनी तथा निपुणिका। इस पुस्तक का प्रथम प्रकाशन वर्ष 1946 में राजकमल प्रकाशन ने किया था। इसका नवीन प्रकाशन 1 सितम्बर 2010 को किया गया था। यह उपन्यास आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की विपुल रचना-सामर्थ्य का रहस्य उनके विशद शास्त्रीय ज्ञान में नहीं, बल्कि उस पारदर्शी जीवन-दृष्टि में निहित है, जो युग का नहीं युग-युग का सत्य देखती है। उनकी प्रतिभा ने इतिहास का उपयोग 'तीसरी आँख' के रूप में किया है और अतीतकालीन चेतना-प्रवाह को वर्तमान जीवनधारा से जोड़ पाने में वह आश्चर्यजनक रूप से सफल हुई है। बाणभट्ट की

आत्मकथा अपनी समस्त औपन्यासिक संरचना और भंगिमा में कथा-कृति होते हुए भी महाकाव्यत्व की गरिमा से पूर्ण है।

## *1.2 उद्देश्य*

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझ सकेंगे:

- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व की गहन समझ।
- उनकी रचना शैली एवं भाषा शैली की विशेषताओं का परिचय।
- उनके प्रमुख उपन्यास *बाणभट्ट की आत्मकथा* की मुख्य व्याख्याओं का अध्ययन।
- बाणभट्ट के चरित्र में कर्तव्यबोध और दायित्वबोध को समझने की क्षमता।

## *1.3 हजारी प्रसाद द्विवेदी : जीवन परिचय*

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी हिंदी साहित्य के उन युगद्रष्टा व्यक्तित्वों में से हैं जिन्होंने न केवल हिंदी भाषा और साहित्य को एक नई दिशा दी, बल्कि भारतीय संस्कृति, इतिहास और दर्शन को भी समृद्ध किया। उनके बहुमुखी ज्ञान और गहन अध्ययन ने उन्हें आधुनिक युग का एक सर्वाधिक प्रभावशाली साहित्यकार और चिंतक बना दिया।

**जीवन परिचय:** द्विवेदी जी का जन्म 19 अगस्त 1907 को उत्तर प्रदेश के बलिया जिले के दुबे का छपरा गांव में हुआ। उनका परिवार अपनी ज्योतिषीय विद्या और संस्कृत के गहन ज्ञान के लिए प्रसिद्ध था। उनके पिता, पंडित अनमोल द्विवेदी, संस्कृत के प्रकांड पंडित थे, और उनके परिवार का वातावरण प्राचीन भारतीय शास्त्रों और ज्ञान परंपरा से ओत-प्रोत था। द्विवेदी जी ने अपनी प्रारंभिक शिक्षा गांव के विद्यालय में पूरी की और वहीं से मिडिल की परीक्षा उत्तीर्ण की। आगे की शिक्षा में उन्होंने इंटरमीडिएट की परीक्षा उत्तीर्ण की और ज्योतिष विषय में आचार्य की उपाधि प्राप्त की।

**शांति निकेतन और साहित्यिक यात्रा:** द्विवेदी जी का साहित्यिक और बौद्धिक जीवन शांतिनिकेतन में एक नई ऊंचाई पर पहुंचा। वे कई वर्षों तक गुरुदेव

रवींद्रनाथ ठाकुर द्वारा स्थापित इस संस्थान में हिंदी का अध्यापन कार्य करते रहे। यहाँ उन्हें गुरुदेव और आचार्य क्षितिमोहन सेन जैसे विद्वानों का सान्निध्य मिला, जिससे उनके साहित्यिक दृष्टिकोण में गहराई और व्यापकता आई। शांतिनिकेतन का सांस्कृतिक और शैक्षणिक परिवेश उनके साहित्य सृजन के लिए प्रेरणा का स्त्रोत बना।

**व्यक्तित्व औरयो गदान:** द्विवेदी जी का व्यक्तित्व अत्यंत सरल, सौम्य और उदार था। वे हिंदी, संस्कृत, अंग्रेज़ी और बंगाली भाषाओं के ज्ञाता थे। उनका साहित्यिक दृष्टिकोण भारतीय परंपराओं से गहराई से जुड़ा हुआ था, लेकिन उसमें आधुनिकता का भी समावेश था। भक्तिकालीन साहित्य में उनकी गहरी रुचि थी, और उन्होंने इस काल को समझने और व्याख्या करने में अभूतपूर्व योगदान दिया।

**साहित्यिक उपलब्धियां:** द्विवेदी जी का साहित्यिक योगदान बहुआयामी था। उनके निबंध, उपन्यास, आलोचनात्मक लेखन और सांस्कृतिक चिंतन उनकी विद्वता और सृजनशीलता का परिचायक हैं। उनके सबसे प्रसिद्ध उपन्यास *बाणभट्ट की आत्मकथा* में न केवल इतिहास और कल्पना का अद्भुत मिश्रण है, बल्कि यह उपन्यास भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों और मानवता के प्रति उनकी गहरी आस्था को भी दर्शाता है।

**सम्मान और मान्यता:** द्विवेदी जी को लखनऊ विश्वविद्यालय द्वारा डी.लिट. की मानद उपाधि से सम्मानित किया गया। काशी हिंदू विश्वविद्यालय (बी.एच.यू.) में उन्होंने हिंदी का शिक्षण कार्य किया और छात्रों को साहित्य और संस्कृति के प्रति प्रेरित किया। 1957 में भारत सरकार ने उन्हें पद्मभूषण सम्मान से विभूषित किया, जो उनके साहित्यिक और सांस्कृतिक योगदान का प्रमाण है।

**विशेषताएँ और शैली:** उनकी भाषा शैली में संस्कृतनिष्ठता और लोक भाषा का अद्भुत संतुलन देखने को मिलता है। उनकी रचनाओं में गंभीरता के साथ-साथ सरलता और प्रवाह भी है, जो पाठकों को गहराई तक प्रभावित करती है। उनका लेखन भारतीय परंपरा और आधुनिकता का संगम है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने साहित्य, संस्कृति और भाषा के क्षेत्र में जो योगदान दिया, वह सदैव प्रासंगिक रहेगा। उनकी रचनाएँ न केवल एक युग को परिभाषित करती हैं, बल्कि आने वाली पीढ़ियों के लिए भी प्रेरणा का स्रोत हैं।

## *1.4 साहित्य में स्थान*

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने हिंदी निबंध और आलोचना के क्षेत्र में जो योगदान दिया है, वह अद्वितीय और अमूल्य है। उनके निबंधों के विषय अत्यंत व्यापक हैं, जिनमें भारतीय संस्कृति, इतिहास, ज्योतिष, साहित्य, विभिन्न धर्मों और संप्रदायों का गहन विवेचन प्रमुख है। उनके निबंधों को दो मुख्य भागों में विभाजित किया जा सकता है–विचारात्मक और आलोचनात्मक।

**विचारात्मक निबंध**

विचारात्मक निबंधों को दो श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है। पहली श्रेणी के निबंध दार्शनिक तत्वों से युक्त होते हैं, जिनमें गहन चिंतन और विचारशीलता की प्रधानता रहती है। दूसरी श्रेणी के निबंध सामाजिक जीवन और व्यवहार से जुड़े होते हैं, जो समाज को गहराई से समझने और विश्लेषण करने का प्रयास करते हैं।

**आलोचनात्मक निबंध**

आलोचनात्मक निबंध भी दो प्रकार के होते हैं। पहली श्रेणी में वे निबंध आते हैं, जिनमें साहित्य के विभिन्न पक्षों और तत्वों का शास्त्रीय दृष्टिकोण से विश्लेषण किया गया है। दूसरी श्रेणी में ऐसे निबंध शामिल हैं, जिनमें साहित्यकारों और उनकी कृतियों की आलोचना की गई है। द्विवेदी जी के आलोचनात्मक निबंधों में विचारों की गहराई, निरीक्षण की नवीनता और विश्लेषण की सूक्ष्मता प्रमुख रूप से दिखाई देती है।

### भाषा की विशेषताएँ

हजारी प्रसाद द्विवेदी जी की भाषा परिमार्जित खड़ी बोली है, जो विषय और भाव के अनुरूप ढलती है। उनकी भाषा के दो रूप देखे जा सकते हैं–

1. **प्रांजल व्यावहारिक भाषा**: यह उनके सामान्य निबंधों में देखने को मिलती है। इस शैली में उर्दू और अंग्रेज़ी के प्रचलित शब्दों का भी समावेश होता है, जो इसे सहज और प्रवाहमय बनाते हैं।
2. **संस्कृतनिष्ठ शास्त्रीय भाषा**: यह उनके उपन्यासों और सैद्धांतिक आलोचनाओं में प्रयुक्त होती है। इस शैली में गहनता के साथ-साथ एक प्रकार की गंभीरता और शास्त्रीयता स्पष्ट झलकती है।

उनकी विषय-प्रतिपादन की शैली अध्यापकीय है, जो जटिल से जटिल विचारों को भी सरलता से समझाने में सक्षम है। उनकी शास्त्रीय भाषा के प्रवाह में कभी अवरोध नहीं आता।

### शैली की विविधता

आचार्य द्विवेदी की रचनाओं में उनकी शैली के कई रूप परिलक्षित होते हैं:

- **गवेषणात्मक शैली**: उनके विचारात्मक और आलोचनात्मक निबंधों की यह प्रतिनिधि शैली है। इसमें संस्कृतनिष्ठ और प्रांजल भाषा का प्रयोग होता है। वाक्य संरचना अपेक्षाकृत बड़ी होती है। उदाहरण के रूप में– *"लोक और शास्त्र का समन्वय, गृहस्थ और वैराग्य का समन्वय, भक्ति और ज्ञान का समन्वय–रामचरितमानस समन्वय का काव्य है।"*
- **वर्णनात्मक शैली**: यह शैली उनकी रचनाओं को स्वाभाविक और रोचक बनाती है। इसमें हिंदी के साथ-साथ संस्कृत और उर्दू के प्रचलित शब्दों का संतुलित प्रयोग होता है।

- **व्यंग्यात्मक शैली**: द्विवेदी जी के निबंधों में व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग कुशलतापूर्वक किया गया है। यह शैली भाषा को जीवंत और प्रभावशाली बनाती है।

- **व्यास शैली**: जहाँ उन्होंने विषय को विस्तार से समझाया है, वहाँ व्यास शैली अपनाई है। इसमें विषय को विस्तारपूर्वक व्याख्या के साथ प्रस्तुत कर अंत में उसका सार बताया गया है।

## महत्वपूर्ण योगदान

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी हिंदी निबंध साहित्य और आलोचना के उच्चतम शिखर पर हैं। उन्होंने सूरदास, कबीर और तुलसी जैसे साहित्यिक महापुरुषों पर गहन और विद्वत्तापूर्ण आलोचनाएँ लिखी हैं, जो हिंदी साहित्य की अमूल्य धरोहर हैं। उनके निबंधों और आलोचनाओं में गहन चिंतन और मौलिकता की छाप है।

द्विवेदी जी ने संपादन के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय कार्य किए। *विश्वभारती* जैसे संस्थानों के माध्यम से उन्होंने हिंदी साहित्य को समृद्ध किया। उनके निबंध और उपन्यास भारतीय मानवता और सांस्कृतिक चेतना के परिचायक हैं। उनकी कृतियों में साहित्य और संस्कृति के बीच गहरा संबंध दिखाई देता है।

उनका समग्र साहित्य न केवल हिंदी भाषा की स्थायी निधि है, बल्कि यह साहित्यिक, सांस्कृतिक और बौद्धिक दृष्टिकोण से भी अत्यंत प्रेरणादायक है। उनके लेखन ने साहित्य को नई दिशा और दृष्टि प्रदान की, जो आने वाली पीढ़ियों के लिए सदैव मार्गदर्शक रहेगा।

## स्वप्रगति परीक्षण

नीचे दिए गए प्रत्येक कथन को ध्यानपूर्वक पढ़ें और सत्य अथवा असत्य का चयन करें।

1. द्विवेदी जी के निबंधों की भाषा केवल संस्कृतनिष्ठ शैली में है।

2. द्विवेदी जी की रचनाओं में गवेषणात्मक शैली उनकी प्रतिनिधि शैली है।
3. द्विवेदी जी के निबंधों में सामाजिक जीवन से जुड़े विषयों पर कोई विचार नहीं मिलता।
4. द्विवेदी जी के निबंध साहित्य में मानवता का परिशीलन स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।

## *1.5 बाण भट्ट की आत्मकथा के व्याख्यांश*

**(1) "अहा, दृष्टि से इतनी पूतकारिता भी होती है! मानों वह दृष्टि पुण्य रश्मियों से द्रष्टव्य को उद्भासित कर रही थी, तीर्थ-वारि-धारा से प्लावित कर रही थी, तपस्या से पवित्र बना रही सत्य के अंतर्निहित ताप के हृदय पाप-भावों को भस्म कर रही थी। मुझे ऐसा लगा कि वेदों की पवित्र-वाणी विग्रहवती होकर मुझे आज ब्रह्मणत्व के वरण योग्य बना रही है।"**

**सन्दर्भ -** प्रस्तुत गद्यांश 'बाण भट्ट की आत्मकथा' नामक पाठ से उद्घृत किया गया है, जिसके लेखक सुप्रसिद्ध साहित्यकार डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी जी है।

**प्रसंग-** बाण 'सुदक्षिमा' के वेश में निपुणिका के साथ 'भट्टिनी' छोटे अंतःपुर की कैद से मुक्त कराने जाता है। वहाँ जब वह भट्टिनी के प्रथम दर्शन करता है तो उसका हृदय भावों से उद्वेलित हो उठता है। वह सोचने लगता है-
**व्याख्या-** मैने पहली बार अनुभव किया कि नजरों में इतनी ज्यादा पावनता भी होती है, दृष्टि में राग, विह्नलता और न जाने कितने भाव देखे हैं पर इतनी निर्मलता के तो आज प्रथम बार ही दर्शन हुए हैं। ऐसा लग रहा था मानो जीवन के संचित पुण्य दृष्टि की अमल किरणों में फूट पड़े हों तथा कुछ भी दृश्यमान है उसे प्रकाशित कर रहे हों। जिस तरह किसी तीर्थ-स्थल का पानी अंतःकरण को शुचिता से भर देता है वैसे ही भट्टनी के नयनों से फूट-पड़ती ज्योति मनोभूति को पावनता में डुबो रही थी। जिस तरह तपस्या या साधना से मन के विकारों को तिरोहित करके उसे तप पूत कर देती है वैसे ही वह दृष्टि भी मानों मन को

विशुद्ध बना रही थी। सत्य के सामने जिस तरह समस्त असत्य-कल्मष-कर्दम जल कर खाक हो जाता है। हृदय (तृप्त कंचन सा) निखर आता है वैसे ही मानो भट्टिनी की अंतः दृष्टि का तेज नयनों से फूट कर समस्त मनोविकारों का प्रक्षालन कर रहा था। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे वेदों की पवित्र वाणी में आकार ग्रहण करके मुझे ब्राह्मणोचित कम करने को प्रतित किया हो, शायद मुझे पवित्रता की इस देवी को उपासना करके इसके तेज से समाज की मलिनता दूर करनी थी, पाप-मोचन करना था, जन मन के इस निर्मलता को फैलाना था।

(2) **"लौकिक मानदंड से आनंद नामक वस्तु को नहीं मापा जा सकता। दुःख तो केवल मन का विकल्प ही है, मनुष्य तो ऊपर से नीचे तक केवल परमानंद स्वरूप है। अपने को विशेष भाव से दे देने से ही दुःख जाता रहता है, परमानंद प्राप्त होता है।"**

**सन्दर्भ -** प्रस्तुत गद्यांश 'बाण भट्ट की आत्मकथा' नामक पाठ से उद्घृत किया गया है, जिसके लेखक सुप्रसिद्ध साहित्यकार डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी जी है।

**प्रसंग-** आत्मकथा के उन्नीसवें परिच्छेद के अंतिम भाग में जब निपुणिका 'वाभ्रव्य' के साथ वार्ता के दौरान दुःख और सार्थकता की बात करती है तो वाभव्य उसे वस्तु स्थिति समझाते हुए कहते हैं-

**व्याख्या-** तुम लोक संपत्ति, समृद्धि और किसी तरह का भौतिक अभाव न होने को आनंद मानते. हो, अन्यथा स्थिति को दुःख कहते हो। यही बात गलत है। भौतिक प्रतिमानों से आनंद का मूल्यांकन नहीं किया जा सकता, सुख या आनंद मन की संपत्ति है, मन ही का अनुभव है। अतः उसे भौतिकता के सापेक्ष करना गलत है। वास्तव में तो सब कुछ आनंदमय ही है अतः उसका माप करने का प्रश्न ही नहीं उठता। एक बात को यहाँ मैं स्पष्ट कर दूं कि जिस दुख और कष्ट की बात तुम करती हो उसका अस्तित्व ही नहीं है, वह मन का विकार मात्र है, मन की दुर्बलता है, कष्ट सहन कर सकने की कमजोरी का ही परिणाम मात्र है। आनंद रूप नारायण का आश्रय होने के नाते हमारा जीवन भी आनंदमय ही है। संघर्ष, उत्थान-पतन आदि तो लीला है! व्यक्ति को इसमें भी आनंद लेना चाहिए। दरअसल हम दूसरों के लिए कष्ट सहना नहीं चाहते! चाहते हैं कि अन्य लोग हमारे लिए कुछ करें और इसलिए हम क्लांत रहते हैं। हम जानते हैं कि घृणा

देने से घृणा और प्रेम देने से प्रेम मिलता है इसी भांति यदि हम अपना संपूर्ण अस्तित्व ही लोक-मंगल के सुपुर्द कर दें, तो अपने आपको जन-सेवा में लगा दें तो फिर हमारे लिए सर्वत्र आनंद ही यही शाश्वत उपस्थित रहेगी। ऐसी स्थिति में दुःख महसूस करने की फुरसत ही न रहेगी। कर्मण्य व्यक्ति के लिए तो आत्म-दान भी आनंद से पूर्ण होता है। वैयक्तिकता के दायरे से निकल कर जन-मन में मिल जाना ही परमानंद की प्राप्ति है, यही सार्थकता है, यही मुक्ति है जो यहाँ दुःख और क्लाति की छाया भी नहीं पड़ती ।

विशेष डॉ. भगवानदीन की पंक्तियां यहाँ मुझे याद आ रही हैं जिनका भाव यह है कि दुःख दिखलाई देगा। लेखक ने भी दुःख-सुख को मन का विकल्प बतलाया है। 'वंदना इन स्वरों में एक स्वर मेरा मिला लो' ऐसा हौसला आदमी में हो तो उसके लिए दुनियां आनंद-सागर है।

**(3) "वे फेन बुद्-बुद् की भांति अनित्य हैं। वे सैकत-सेतु की भांति अस्थिर हैं एवं जल-रेखा की भांति नश्वर हैं। उनमें अपने आप को दूसरों के लिए मिटा देने की भावना जब तक नहीं आती, तब वे ऐसे ही रहेंगे। उन्हें जब तक पूजाहीन दिवस और सेवाहीन रात्रियां अनुतृप्त नहीं करती और जब तक निष्फल अर्ध्यद उन्हें कुरेद नहीं देता तब तक उनमें निषेधा-रूपा नारी का अभाव रहेगा....।"**

**सन्दर्भ -** प्रस्तुत गद्यांश 'बाण भट्ट की आत्मकथा' नामक पाठ से उद्घृत किया गया है, जिसके लेखक सुप्रसिद्ध साहित्यकार डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी जी है।

**प्रसंग-** लेखक ने 'पूर्णता' की ओर संकेत करते हुए स्पष्ट किया है कि नारी के बिना उसे पूर्णता प्राप्त नहीं हो सकती और न ही समाज में स्थायित्व आ सकता है।

**व्याख्या-** पुरुष विधि रूप है, उसमें अपने को दूसरों के लिए मिटा देने की तत्परता नहीं है। इसलिए उसके कार्यों, निर्माणों, संगठनों और संस्थाओं का अस्तित्व नश्वर ही हैं पानी में उठकर विलीन हो जाने वाले बुलबुले की भांति नष्ट हो जाने वाले हैं। जिस तरह रेत का पुल अधिक समय तक नहीं टिकता तथा जल-रेखा थोड़े से समयोपरांत ही सूख कर मिट जाती है उसी भांति पुरुष के ये विविध रूप गतिविधियां भी शीघ ही नष्ट हो जाती है, इनमें तनिक भी स्थिरता नहीं होती। वह इस जटिल दुरावस्था से तब तक छुटकारा नहीं पा सकता जब तक

उसमें भी निषेधात्मक तत्व नहीं आ जाते, यानी जब उसकी आधारशिला में लोक-मंगल, त्याग आत्मदान आदि का समाहार नहीं होगा तब तक दयनीय स्थिति कायम रहेगी। उसमें निषेधारूपा नारी-तत्व का त्याग, उत्सर्ग प्रेम आदि का अभाव है तथा यह अभाव तब ही पूर्ण होगा जब 9 (नौ) दिनों तक कोई उसका सम्मान नहीं करेगा, उसकी विकृतियों की हर उपेक्षा करेगा, दिवस पर्यन्त श्रम करने के उपरांत जब रात्रि काल में भी उसे शांति नहीं मिलेगी, किसी की सेवा तथा तरलता का श्रम, शासक स्पर्श नहीं होगा और जब निरंतर की असफलता उसे कचोटने लगेगी। इस तरह हर ओर से विफल होकर, परितप्त होकर, अशांत होकर तथा असफल होकर अंत में वह अपनी भूल का ज्ञान करेगा और फिर इस 'निषेध-रूप' के समक्ष सिर झुकाएगा।

**(4) "बंधन ही चारुता है, संयम है सुरुचि है। निपुणिका व्यर्थ परेशान हो रही है। इस बाधा के कगारों से बधी हुई-जीवन-सरिता ही, गतिशील होती है, सरस होती है मधुर होती है।"**

**सन्दर्भ -** प्रस्तुत गद्यांश 'बाण भट्ट की आत्मकथा' नामक पाठ से उद्धृत किया गया है, जिसके लेखक सुप्रसिद्ध साहित्यकार डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी जी है।

**प्रसंग-** श्री हर्ष के स्वागत में निपुणिका उन्हीं के द्वारा लिखी गई नाटिका 'रत्नावली' का अभिनय करने के लिए बाणभट्ट को कहती है। यही प्रसंग वश जब वह जीवन को भी-पगपग पर बंधन और दमन के कारण-अभिनय करती है तो भट्ट उसे समझाते हुए कहता है-

**व्याख्या-** बंधन से विचलित होने की कोई जरूरत नहीं है। अनियंत्रित जीवन में भी भला कभी सुख और शांति मिल सकती है! आचरों, नियमों और पाबंदियों से सीमित जीवन में ही संतुलन में ही सौंदर्य है, फिसलकर न गिरने वाला संयम है, मन को तृप्त करने वाला माधुर्य है। व्यक्ति की यदि हर इच्छा फलीभूत हो जाय, तो वह उच्छृंखल हो जाएगा जो कि उसके और समाज के दोनों के लिए कष्टकर होगा। संयम भी तो अपने आप में एक सौंदर्य, आनंद और संतोष है। अब नदी को ही देखो ना! किनारों में बंधकर प्रवाहित होने में ही उसके अस्तित्व की सार्थकता है नहीं तो इधर-उधर बह कर उसका सब कुछ नष्ट हो जाएगा।

उसी तरह व्यक्ति का जीवन भी अनियमित और असीमित होने पर इतस्ततः बिखर कर नष्ट हो जाएगा। जिस तरह बंधे किनारों में प्रवाहित नदी सदैव प्रवाहदान रहती है, औरों के लिए सुखकर और संतोषप्रद होती है वैसी ही संयमित, संतुलित और कहिए कि नियमों में बंधा हुआ जीवन मधुर, प्रीतिकर, सुखकर स्पृहणीय होता है।

**(5) "तुम्हारी उदासी मेरे लिए बड़ी विधि रही है। मैं जब तुमको उदास देखती थी तो यही समझती थी कि मेरा जन्म सार्थक है, तुमने इस गंधहीन पुण्य को चरणों तक पहुँचने देने के अयोग्य नहीं समझा।"**

**सन्दर्भ -** प्रस्तुत गद्यांश 'बाण भट्ट की आत्मकथा' नामक पाठ से उद्घृत किया गया है, जिसके लेखक सुप्रसिद्ध साहित्यकार डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी जी है।

**प्रसंग-** निपुणिका पर हम सम्तोहन प्रभाव को कम करने हेतु जन-श्रुति से प्रेरित होकर भट्ट उसे सौरभ मद ले जाता है। वहाँ निपुणिका भावोद्वेलित हो जाती है। भट्ट के प्रति अपनी अनुरक्ति का संकेत करते हुए वह कहती है-

**व्याख्या-** मैंने तुम्हें अपने राग में डुबो कर देखा है। मेरे लिए यही बहुत है कि कभी तुमने मेरे विषय में कुछ सोचा तो मैंने तुम्हारी उदासी को सदैव स्वयं से संबद्ध जाना, यह सोचा कि शायद तुम्हें मेरा विचार कुरेद रहा तथा यह बस इतना ही मेरे लिए अथाह संपदा के समान था, यही मेरा धन था। मैंने तुम्हारी उदासी में ही अपने जीवन की सफलता देखी है। हम प्रेम करनी स्त्रियों के लिए तो इतना ही बहुत होता है कि हमारा प्रिय कभी हमारे संबंध में सोचता तो है, नितांत असंपृक्त नहीं है। मैं जानती हूं कि मेरा जीवन निर्गन्ध फूल के समान रहा है मुझ में श्रेय तथा प्रेम जैसा कुछ भी नहीं फिर भी तुमने मुझे प्रत्यक्षतः ठुकराया नहीं, मेरी उपेक्षा नहीं की, मेरे शुभचिंतक के साथ ही मेरे सुखसाधन के अनेकानेक प्रयत्न करते रहे। बस, मुझे इसी में संतोष है।

(6) **"क्रमशः पश्चिम दिग्वध के कानों को सुशोभित करने वाले रक्तोत्पल के समान सूर्य-मंडल अस्त हो गया, आकाश रूप सरोवर में संध्या रूपी पदमनी प्रकाशित हो उठी, कृष्णा गुरु के पंक से निर्मित पत्र-लेखा की भांति तिमिर लेखा दिंगमुखों में परिव्याप्त उठी और उससे संध्या की लालिमा इस प्रकार आच्छादित हो गई मानों भ्रमर-भूषित नीलोत्पलो ने रक्त पदम के आच्छादित कर लिया है।"**

**सन्दर्भ -** प्रस्तुत गद्यांश 'बाण भट्ट की आत्मकथा' नामक पाठ से उद्घृत किया गया है, जिसके लेखक सुप्रसिद्ध साहित्यकार डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी जी है।

**प्रसंग-** गंगा-तट पर वभतीर्थ में कापालिकों के चक्कर में फंसा बाण भैरवी महायात्रा द्वारा बचा लिया जाता है। महामाया इन्हें लोरिक देव के संरक्षण में भद्रेश्वर दुर्ग में आश्रय दिलाती है। एक दिन दुर्ग की पश्चिमी प्राचीर पर खड़ा बाण साध्य सौंदर्य को देख रहा होता है। उसी का वर्णन हुआ है।

**व्याख्या-** पश्चिमाकाश में अरुण प्रभा के घेरे में अस्तंगत सूर्य दिशा रूपी दुल्हन के कानों को शोभित करने वाले कमल जैसा लग रहा था शनैःशनैः वह भी डूब गया। विस्तृत आकाश में सांध्य लालिमा ऐसी लग रही थी मानों गगन रूपी सरोवर में संध्या-रूपी कमलिनी खिल गई हो। दिशाओं में भरा हुआ अंधेरा काले चंदन से बनी हुई पत्र लेखा जैसा लग रहा था। धीरे-धीरे संध्या अंधकार में डूबने लगी। चारों ओर क्षणदा का अंधकार फैल गया। इस कालिमा ने संध्या की अरुणाई ढांप ली। ऐसा लग रहा था जैसे सरोवर में लिखे हुए लाल कमलों पर अलि-अवली से पूर्ण नीले कमल छा गए हों।

(7) **'मेरा चित्त कहता है कि कहीं न कहीं मनुष्य-समाज ने अवश्य गलती की है। वह उन्मत्त उत्सव, ये रासक गान ये श्रृंगक चीतकार, ये अबीर-गुलाल ये चर्चरी और पटह मनुष्य की किसी मानसिक दुर्बलता को छिपाने के लिए है, ये दुःख भुलाने वाली मदिरा है, ये हमारी मानसिक दुर्बलता के पर्दे हैं। इनका अस्तित्व सिद्ध करता है कि मनुष्य का मन रोगी है, उसकी चिंताधारा आविल है, उसका पारस्परिक संबंध दुःखपूर्ण है।'**

**सन्दर्भ -** प्रस्तुत गद्यांश 'बाण भट्ट की आत्मकथा' नामक पाठ से उद्घृत किया गया है, जिसके लेखक सुप्रसिद्ध साहित्यकार डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी जी है।

**प्रसंग-** फाल्गुनी पर्णिमा का मध्यन्ह होली की अबीर-गुलाल में रंगा हुआ या भट्ट कुमार कृष्णवर्धन से मिलने जा रहा था। नगर मार्गों पर कुचले हुए फूल, बिखरा हुआ गुलाल देखकर भट्ट इन सब में मनुष्य की दुर्बलता देखते हुए सोचता है-

**व्याख्या-** ये राग-रंग और उन्माद, जिसमें अनुराग तथा उत्सुकता तनिक भी नहीं, देखकर मैं यह विचारने को विवश हो जाता हूं कि उनके मूल में मनुष्यों

की कमजोरी और गलतियां हैं। लोगों ने कहीं न कहीं भयंकर भूलें की हैं जिनको छिपाने के लिए ये बदहवास कर देने वाले उत्सव, अबीर गुलाल तथा रसोद्रेक करने वाले गीत आयोजित किए जा रहे हैं। नारी संगठन व्यवस्था आदि के संबंध में व्यक्ति की मानसिक दुर्बलता को छिपाने के लिए ये रंगीन आवरण है तथा तज्जनित दुःखों को भुलाने के लिए मदहोश कर देने वाली सुरा है। ये वे तिरस्कारणियां हैं जिनके पीछे मनुष्य की कमजोरियां निश्चित होकर गतिशील रहती हैं तथा बाहर जिनकी (इन आयोजनों की) चकाचौंध से जन-मन विस्मय-विमूढ़ रहता है। इन सबकी उपस्थिति इस सत्य का उद्घाटन करती है कि मनुष्य के विचार, धारणाएं तथा मान्यताएं साफ नहीं हैं, अकलुष नहीं है, स्वस्थ नहीं है, अपने इन विकारों पर पर्दा डालने के लिए ही उसे इतने प्रपंच करने पड़ते हैं उसके सोचने समझने का दृष्टिकोण दोषपूर्ण है, निश्छल नहीं है अतः वह भटकता हुआ इनमें सुख खोजता है। अपने पारस्परिक दुःखपूर्ण संबंधों की कटुता विस्मृत करने के लिए ही अहिर्निश उसे इस तरह के आयोजन करने पड़ते हैं।

## *1.6 सार संक्षेप*

'बाणभट्ट की आत्मकथा' हर्षकालीन सभ्यता एवं संस्कृति का जीवन्त दस्तावेज है। ऐतिहासिक उपन्यासकार को अतीत में भी प्रवेश करना पड़ता है। अतीत में प्रविष्ट हो कर ही इतिहास को वर्तमान संदर्भों के साथ जोड़ पाता है। इसी जुड़ाव के माध्यम से ऐतिहासिक उपन्यासकार अतीत को चित्रित करता है। इस उपन्यास के माध्यम से हजारीप्रसाद द्विवेदी के स्त्री संबंधी विचारों को भी समझने में सहायता मिलती है। निउनिया को उज्जयिनी की नाटक-मंडली में भर्ती करने के पश्चात् भट्ट सोचता है कि- "साधारणतः जिन स्त्रियों को चंचल और कुलभ्रष्टा माना जाता है उनमें एक दैवी शक्ति भी होती है, यह बात लोग भूल जाते हैं। मैं नहीं भूलता। मैं स्त्री-शरीर को देव-मंदिर के समान पवित्र मानता हूँ।"

## *1.7 मुख्य शब्द*

1. **दृश्मान** - दृश्यमान, जो दिखाई दे; स्पष्ट।
2. **प्रक्षालय** - स्नानागार या वह स्थान जहाँ साफ-सफाई की जाती है।
3. **मलिनता** - गंदगी या मैल, अशुद्धता; मन का नैतिक अशुद्ध होना।
4. **सूर्यमंडल** - सूर्य और उसके चारों ओर घूमने वाले ग्रहों का समूह।
5. **अनियंत्रित** - जिसे नियंत्रित न किया गया हो; नियंत्रण के बाहर।
6. **प्रवाहयान** - बहाव के साथ बहने वाला; पानी पर चलने वाला वाहन।
7. **उच्छृंखल** - अनुशासनहीन, निरंकुश; जो किसी नियम या मर्यादा का पालन न करता हो।
8. **उत्थान-पतन** - ऊँचाई और गिरावट, विकास और अवनति का चक्र।
9. **आत्मदान** - स्वयं को समर्पित करना; अपने आप को किसी उद्देश्य के लिए अर्पण करना।
10. **प्रपंच** - छल-कपट, भ्रम, झूठे दिखावे से युक्त।
11. **मदहोश** - नशे में या भावुकता में बेसुध होना।
12. **निश्चल** - स्थिर, जो हिलता-डुलता न हो; शांत।
13. **उन्माद** - अत्यधिक उत्साह या पागलपन की स्थिति।
14. **अरुणाई** - हलकी लालिमा, सूर्योदय या सूर्यास्त के समय आकाश में होने वाला लाल-गुलाबी रंग।

## *1.8 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर*

**प्रगति की जाँच**

उत्तर: 1. असत्य

उत्तर: 2. सत्य

उत्तर: 3. असत्य

उत्तर: 4. सत्य

## 1.9 संदर्भ सूची


1. बाणभट्ट की आत्मकथा. राजकमल प्रकाशन. 2010. आई॰ऍस॰बी॰ऍन॰ 8126704284. मूल से 2 फ़रवरी 2017 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 28 जनवरी 2020 .

2. हजारीप्रसाद, द्विवेदी (2021). बाणभट्ट की आत्मकथा. नयी दिल्लीः राजकमल प्रकाशन.


## 1.10 भ्यास प्रश्न

**सप्रसंग ब्याख्या कीजिए।**

1. "बंधन ही चारुता है, संयम है सुरुचि है। निपुणिका व्यर्थ परेशान हो रही है। इस बाधा के कगारों से बधी हुई-जीवन-सरिता ही, गतिशील होती है, सरस होती है मधुर होती है।"
2. "क्रमशः पश्चिम दिग्वध के कानों को सुशोभित करने वाले रक्तोत्पल के समान सूर्य-मंडल अस्त हो गया, आकाश रूप सरोवर में संध्या रूपी पदमनी प्रकाशित हो उठी।"

# इकाई - 2
# निर्धारित निबंध (व्याख्यांश)

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 काव्य में लोक मंगल की साधनावस्था

2.4 अशोक के फुल

2.5 मेरे राम का मुकुट भीग रहा है

2.6 पगडण्डियों का जमाना

2.7 सार संक्षेप

2.8 मुख्य शब्द

2.9 स्व -प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

2.10 संदर्भ सूची

2.11 अभ्यास प्रश्न

## *2.1 प्रस्तावना*

परिचय-'काव्य में लोकमंगल की साधना अवस्था' आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा रचित निबंध है जो काव्य  लोकमंगल की भावना से ओत-प्रोत नहीं होता है वह सच्चा काव्य नहीं होता है शुक्ल जी ने लोकमंगल की साधना व्यवस्था का संबंध जीवन के प्रयत्न पक्ष से जोड़ा है ।'अशोक के फूल' के निबंध के रचनाकार हजारी प्रसाद द्विवेदी है ,भारतीय परंपरा में अशोक के फूल दो प्रकार के होते हैं श्वेत एवं लाल पुष्प ,श्वेत पुष्प तांत्रिक क्रियो की सिद्धि के लिए उपयोगी है जबकि लाल पुष्प स्मृति वर्धन माना जाता है । 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' ,विद्यानिवास मिश्र का एक ललित निबंध है इस निबंध के जरिए लेखक ने पुरानी पीढ़ी की अपनी संतानों के लिए चिंता को उजागर किया है ।'पगडंडियों का जमाना'

हरिशंकर परसाई द्वारा रचित निबंध है इसमें लेखक ने अपने व्यंग्यों के द्वारा मौजूदा व्यवस्था समाज और सत्ता सभी पर निशाना साधा है ।इस निबंध में समाज में फैली भ्रष्टाचार, ढोंग,अवसरवादी अंधविश्वास, सांप्रदायिकता जैसी कुप्रवृत्तियों पर तंज कसा गया है।

## 2.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- अशोक के फूल निबंध के माध्यम से अपनी सांस्कृतिक परंपरा की गहराई को।
- मेरे राम का मुकुट फीग रहा है निबंध के द्वारा रामायण के उत्तरकांड के महत्वपूर्ण प्रसंगों को।
- पगडंडियों का ज़माना निबंध के माध्यम से आज के शिक्षा क्षेत्र में फैले भ्रष्टाचार के मुद्दे को।
- इन निबंधों के माध्यम से निबंधकारों की भाषा-शैली की विशेषताओं से परिचित होंगे।

## 2.3 काव्य में लोक मंगल की साधनावस्था

**(1)** ''आत्मबोध और जगद्बोध के बीच ज्ञानियों ने गहरी खाई रखी] पर हृदय ने कभी उसकी परवाह न की, भावना दोनों को एक ही मानकर चलती रही। इस दृश्य जगत् के बीच जिस आनन्द-मंगल की विभूति का साक्षात्कार होता रहा] उसी के स्वरूप की नित्य और चरम भावना द्वारा भक्तों के हृदय में भगवान् के स्वरूप की प्रतिष्ठा हुई। लोक में इसी स्वरूप के प्रकाश को किसी ने 'रामराज्य' कहा] किसी ने 'आसमान की बादशाहत' । यद्यपि मूसाइयों और उनके अनुगामी ईसाइयों की धर्म-पुस्तक में आदम को खुदा की प्रतिमूर्ति बताया गया] पर लोक

के बीच नर में नारायण की दिव्य-कला का सम्यक दर्शन और उसके प्रति हृदय का पूर्ण निवेदन भारतीय भक्ति-मार्ग में ही दिखाई पड़ा।''

सन्दर्भ एवं प्रसंग- 'काव्य में लोक-मंगल की साधनावस्था' शीर्षक निबन्ध के प्रस्तुत गद्यांश में शुक्लजी स्पष्ट करते हैं कि भारतीय साधना-पद्धतियों-ज्ञान-मार्ग और भक्ति-मार्ग में भक्ति-मार्ग ही उत्कृष्ट है।

व्याख्या- आत्मबोध अर्थात् ज्ञान-मार्ग के अनुयायी दार्शनिकों और वेदान्तियों ने जगत् के साक्षात्कार और आत्म-साक्षात्कार को भिन्न-भिन्न दृष्टि से देखा है। आत्म-ज्ञानियों की यह भावना रही है कि वे जगत् में रहकर सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकते। यही कारण है कि आत्मज्ञान के समर्थक भक्ति-मार्ग का खण्डन करते हुए ज्ञान-मार्ग का प्रतिपादन करते हैं। परन्तु भक्ति-मार्ग की श्रेष्ठता यह है कि उसमें ज्ञान और भक्ति, आत्म-दर्शन और जगत् दर्शन, बुद्धि और हृदय दोनों का समन्वय है। भक्ति-मार्ग के साधक संसार में रहकर आत्म-कल्याण में जगत् जहाँ बाधक है, वहाँ भक्ति-मार्ग में साधक है। भक्त दृश्य-संसार में ही निमग्न रहते हैं और परातत्त्व एवं परमानन्द की अनुभूति करते हैं। वे अवतारों के रूप में परमपिता को अपने बीच में पाते हैं। उसके उत्कृष्ट कार्यों को देखकर अपने हृदय में उसके स्वरूप की प्रतिष्ठा करते हैं। इसी व्यक्त स्वरूप में प्रकाशित प्रकाश को संसार में यदि कोई 'रामराज्य' कहता है, तो कोई इसे 'आसमान की बादशाहत' के रूप में देखता है। पैगम्बर मूसा के अनुयायियों ने अपनी धर्म-पुस्तक में आदम को ईश्वर की प्रतिमूर्ति और प्रतिनिधि माना है, परन्तु भारतीय भक्ति-मार्ग में राम-कृष्ण को ईश्वर का अवतार कहा गया है। अर्थात् यहाँ यह भावना रही है कि ईश्वर नर के रूप में अवतरित होकर अपने अलौकिक तेज, शाश्वत भक्ति से समस्त संसार का कल्याण करता है। भक्ति-मार्ग की ही यह विशेषता है कि इसमें नर में नारायण के दर्शन होते हैं और उनकी लीलाओं को किसी एकान्त में न देखकर दृश्य-जगत् के मध्य में देखा जाता है।

(2) ''अभिव्यक्ति के क्षेत्र में ब्रह्म के 'आनन्द' स्वरूप का सतत् आभास नहीं रहता] उसका आविर्भाव और तिरोभाव होता रहता है। इस जगत् में न तो सदा और सर्वत्र लहलहाता वसंत-विकास रहता है] न सुख-समृद्धिपूर्ण ह्रास-विलास। शिशिर के आतंक से सिमटी और झोंके झेलती वनस्थली की खिन्नता और हीनता

के बीच से ही क्रमशः आनन्द की अरुण आभा धुँधली फूटती हुई अन्त में बसन्त की पूर्ण प्रफुल्लता और प्रचुरता के रूप में फैल जाती है] इसी प्रकार लोक की पीड़ा] बाधा] अन्याय, अत्याचार के बीच दबी कोई आनन्द-ज्योति भीषण शक्ति में परिणत होकर अपना मार्ग निकालती है और फिर लोक-मंगल और लोक-रंजन के रूप में अपना प्रकाश करती है।''

सन्दर्भ एवं प्रसंग- 'काव्य में लोक-मंगल की साधनावस्था' शीर्षक निबन्ध के प्रस्तुत गद्यांश में शुक्लजी स्पष्ट करते हैं कि नर में नारायण की दिव्य-कला की अभिव्यक्ति भारतीय भक्ति-मार्ग की प्रमुख विशेषता है।

व्याख्या- ब्रह्म के सत्] चित् और आनन्द तीन रूप हैं। इनमें से काव्य और भक्ति-मार्ग आनन्द को लेकर चलता है। लोक में आनन्द की अभिव्यक्ति की दो अवस्थाएं हैं-एक साधनावस्था और दूसरी सिद्धावस्था। साधनावस्था अथवा प्रयत्न-पक्ष के काव्य में पीड़ा] अन्याय और अत्याचार आदि के दमन में तत्पर और उसी में रमणीयता के दर्शन करने वाले कवि उसके अन्धकार और प्रकाश दोनों पक्षों का महत्त्व स्वीकार करते हैं। इस प्रकार के कवि सृष्टि में व्याप्त अन्तःसौन्दर्य का साक्षात्कार करते हैं। सिद्धावस्था अथवा उपभोग-पक्ष को प्रधानता देने वाले कवि सुख] सौन्दर्य और प्रेम-व्यापार आदि की ही ओर आकृष्ट रहते हैं और उसी के वर्णन में तन्मय रहते हैं। लोक में ब्रह्म का आनन्द स्वरूप कभी आविर्भूत होता है और कभी तिरोभूत। प्रकृति में भी सदैव एक-सी स्थिति नहीं रहती। न तो सदैव बसन्त की हरियाली ही रहती है और न शिशिर का पतझड़ ही। शिशिर के भीतर थपेड़ों में से मार्ग बनाती हुई बसन्त की सुषमा विकसित हो जाती है। इसी प्रकार मानवी सृष्टि में सुख और दुःख का चक्र चलता रहता है। पीड़ा] बाधा] अन्याय और उत्पीड़न में आनन्द ज्योति तिरोहित हो जाती है। इस स्थिति में बहा की कला अवतरित होकर अपने प्रयत्न से पीड़ा] बाधा और अत्याचार के आचरण को हटा देती है] जिससे इस आवरण के नीचे दबी हुई आनन्द-कला आविर्भूत हो जाती है। इस प्रकार ब्रह्म की पूर्ण कला का आनन्द सृष्टि में आविर्भाव और तिरोभाव के द्वारा गतिशील बना रहता है।

(3) ''लोक में फैली दुःख की छाया को हटाने में ब्रह्म की आनन्द-कला शक्तिमय रूप धारण करती है। उसकी भीषणता में भी अद्भुत मनोहरता, कटुता में भी

अपूर्व मधुरता, प्रचण्डता में भी गहरी आर्दता साथ लगी रहती है। विरुद्धों का यही सामंजस्य कर्म क्षेत्र का सौन्दर्य है, जिसकी ओर आकर्षित हुए बिना मनुष्य का हृदय नहीं रह सकता। इस सामंजस्य का और कई रूपों में दर्शन होता है।''

सन्दर्भ एवं प्रसंग- ,काव्य में लोक-मंगल की साधनावस्था, शीर्षक निबन्ध के प्रस्तुत गद्यांश में शुक्लजी स्पष्ट करते हैं कि संसार में दुःख और अत्याचार की छाया हटाने के लिए ब्रह्म की जो आनन्द कला शक्तिमय रूप धारण करती है उसकी भीषणता में भी अद्भुत मनोहरता, कटुता में भी मधुरता और प्रचण्डता में भी आर्दता रहती है। इस विरोध का सामंजस्य ही कर्मक्षेत्र का सौन्दर्य है।

व्याख्या- संसार में फैली हुई दुःख और अत्याचार की छाया हटाने के लिए ब्रह्म की आनन्द कला अवतार लेती है। इस शक्ति की आनन्द कला के प्रकाश में भीषणता में भी अद्भुत मनोहरता होती है। उसकी कटुता में माधुर्य और प्रचण्डता में गहरी आर्द्रता होती है। ब्रह्म को आनन्द-कला संसार की स्थिति, रक्षा, उत्पत्ति और पालन का विधान करती है। आनन्द-कला के प्रकाश में कोमल एवं कठोर, भीषण और मनोरम का समन्वय हुआ है। यह समन्वय लोक-रक्षा और लोक रंजन दोनों ही में समर्थ है।

(4) ''भीषणता और सरलता] कोमलता और कठोरता] कटुता और मधुरता] प्रचण्डता और मृदुता का सामंजस्य ही लोक-धर्म का सौन्दर्य है। आदिकवि वाल्मीकि की वाणी इसी सौन्दर्य के उद्घाटन-महोत्सव का दिव्य संगीत है। सौन्दर्य का यह उद्घाटन सौन्दर्य का आवरण हटाकर होता है। धर्म और मंगल की यह ज्योति अधर्म और अमंगल की घटा को फाड़ती हुई फूटती है। इसमें कवि हमारे सामने असौन्दर्य] अमंगल और अत्याचार] क्लेश इत्यादि भी रखता है] रोष] हाहाकार और ध्वंस का दृश्य भी लाता है।''

सन्दर्भ एवं प्रसंग- 'काव्य में लोक-मंगल की साधनावस्था' शीर्षक निबन्ध के प्रस्तुत गद्यांश में शुक्लजी साधनावस्था अर्थात् प्रयत्न-पक्ष को लेकर चलने वाले काव्य की विशेषताओं का निरूपण कर रहे हैं।

व्याख्या- भारतीय साहित्य में ब्रह्म की आनन्द-कला के प्रकाश का निरूपण हुआ है। 'रामचरितमानस' के राम ब्रह्म की आनन्द-कला के पूर्ण अवतार हैं। वे अपने असीम शील] सौन्दर्य और शक्ति से तथा 'वज्रादपि कठोर' एवं 'कुसुमादपि कोमल-

कठोर' व्यक्तितत्व के सम्बन्ध में कर्म क्षेत्र में सौन्दर्य का प्रसार करते देखे जाते हैं। संसार में यदि एक ओर भीषणता और कठोरता है तो दूसरी ओर कोमलता और मनोरमता भी है। अत्याचार] हिंसा एवं पाप-प्रवृत्ति अपने प्रभाव से सृष्टि में व्याप्त आनन्द-कला का तिरोभाव कर देती है। इसके लिए हमारे अवतारी पुरुष सामने आते हैं और कर्म क्षेत्र में सौन्दर्य का प्रसार कर अत्याचार] पाप और हिंसा का आवरण हटा देते हैं जिससे आवृत्त, आनन्द-कला पुनः प्रकाशित हो जाती है। भीषणता और सरसता] कोमलता और कठोरता] कटुता और मधुरता] प्रचण्डता और मृदुलता ही लोक-धर्म का सौन्दर्य है। वाल्मीकि ने इसी सौन्दर्य का उद्घाटन अपने महाकाव्य में किया है। राम में जहाँ असीम शील] सौन्दर्य और शक्ति है] वहाँ वह अत्याचार और पाप के दमन में साक्षात् यम है। धर्म और मंगल की यह ज्योति राम और कृष्ण के रूप में अधर्म और अमंगल का विनाश करती हुई कर्म-सौन्दर्य का प्रकाशन करती देखी जाती है। भारतीय कवि यथार्थ जीवन की विषमता] असौन्दर्य] अमंगल] अत्याचार आदि का वर्णन करते हैं। ये सम्पूर्ण भाव आनन्द की कला के विकास में योग देते हैं। ^महाभारत^ अधर्म के पराभव और धर्म-विजय की घोषणा करता है। भारतीय साहित्य में विरोधी तत्त्वों का सामंजस्य लोक-मंगल का प्रसार करता है।

(5) ''मनुष्य के शरीर के जैसे दक्षिण और वाम दो पक्ष हैं वैसे ही उसके हृदय के भी कोमल और कठोर] मधुर और तीक्ष्ण दो पक्ष हैं और बराबर रहेंगे। काव्य-कला की पूरी रमणीयता इन दोनों पक्षों के समन्वय के बीच मंगल या सौन्दर्य के विकास में दिखाई पड़तीहै।''

सन्दर्भ एवं प्रसंग- 'काव्य में लोक-मंगल की साधनावस्था' शीर्षक निबन्ध के प्रस्तुत गद्यांश में भारतीय और पाश्चात्य साहित्य के दृष्टिकोण का अन्तर स्पष्ट करते हुए शुक्लजी कहते हैं।

व्याख्या- भारतीय काव्य-परम्परा में कवि कर्म-सौन्दर्य पर मुग्ध होकर उसका वर्णन करते रहे हैं। किन्तु टालस्टाय के समय से एक नया फैशन पश्चिम में यह चला कि प्रेम और भातृ-भाव के प्रदर्शन में ही भावों का उत्कर्ष माना जाने लगा। इस एकपक्षीय दृष्टिकोण का विरोध करते हुए शुक्लजी ने कहा है कि क्रूर और पीड़क को उपदेश देना] उससे दया की भिक्षा माँगना और प्रेम-प्रदर्शन करना

ही कर्म क्षेत्र का सौन्दर्य नहीं है। इससे न तो संसार का कल्याण सम्भव है और न जीवन में सन्तुलन ही आ सकता है। मनुष्य के शरीर में दायाँ और बायाँ दो अंग हैं। इन अंगों के कर्तव्य और कार्य भिन्न-भिन्न हैं, वैसे ही हृदय के भी कोमल और कठोर] कटु और तीक्ष्ण] भीषण और मनोरम दो पक्ष होते हैं। एक पक्ष का अस्तित्व दूसरे पक्ष पर निर्भर है। काव्य की सफलता इन दोनों और सौन्दर्य दोनों पक्षों का समन्वित सौन्दर्य प्रकाशित करने में ही है।

(6) 'भावों की छानबीन करने पर मंगल का विधान करने वाले दो भाव ठहरते हैं-करुणा और प्रेम। करुणा की गति रक्षा की ओर होती है और प्रेम की रंजन की ओर। लोक में प्रथम साध्य रक्षा है। रंजन का अवसर उसके पीछे आता है। अतः साधनावस्था या प्रयत्न-पक्ष को लेकर चलने वाले काव्यों का बीज-भाव करुणा ही ठहरती है।'

सन्दर्भ एवं प्रसंग- 'काव्य में लोक-मंगल की साधनावस्था' शीर्षक निबन्ध के प्रस्तुत गद्यांश में शुक्लजी स्पष्ट करते हैं कि मंगल का विधान करने वाले करुणा और प्रेम दो भाव हैं। दोनों में करुणा का महत्त्व अधिक है।

व्याख्या- विश्व में लोक-मंगल का विधान करने वाले करुणा और प्रेम-दो भाव हैं। करुणा के मूल में रक्षा की भावना रहती है। यह मानव मन का परिष्कार करती है। मनुष्य और प्रकृति में शील और सात्विकता आदि का संस्थापक मनोविकार करुणा की रक्षा की भावना भी उदित करता है। प्रेम मन का अनुरंजन मात्र ही करता है। अतः प्रेम की अपेक्षा करुणा का महत्त्व अधिक हो जाता है। करुणा का प्रसार समाज के लिए वांछनीय है। रक्षा के हो जाने पर ही मनोरंजन का अवसर आता है। यदि रक्षा ही न हुई] तो मनोरंजन का अवसर कहाँ रहा , शुक्लजी ने सिद्ध किया है कि काव्य का मूल प्रेरक भाव करुणा ही है। वाल्मीकि, तुलसी और व्यास आदि के काव्य का प्रेरक मूल भाव करुणा ही है।

## *2.4 अशोक के फूल*

(1) ''अशोक का वृक्ष जितना भी मनोहर हो, जितना भी रहस्यमय हो, जितना भी अलंकारमय हो, परन्तु है वह उस विशाल सामन्त सभ्यता की परिष्कृत रुचि का ही प्रतीक, जो साधारण प्रजा के परिश्रमों पर पली थी, उसके रक्त के सार

कणों को खाकर बड़ी हुई थी और लाखों करोड़ों की उपेक्षा से समृद्ध हुई थी, के सामन्त उखड़ गये]समाज ढह गये और मदनोत्सव की धूमधाम मिट गयी। सन्तान कामिनियों को गन्धर्वों में अधिक शक्तिशाली देवताओं का वरदान मिलने लगा] पीरों ने, भूत-भैरवों ने, काली दुर्गा ने] यक्षों की इज्जत घटा दी। दुनिया अपने रास्ते चली गई, अशोक पीछे छूट गया।"

सन्दर्भ- व्याख्यार्थ प्रस्तुत गद्यांश 'अशोक के फूल' नामक पाठ से उधृत किया गया है, जिसके लेखक सुप्रसिद्ध साहित्यकार डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी जी हैं।

प्रसंग- हिन्दी के सुप्रसिद्ध आलोचक बहुमुखी प्रतिभा के धनी डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने मानवतावादी दृष्टिकोण को अपनाया है। द्विवेदी जी का प्रमुख उद्देश्य सदैव भारतीय सभ्यता और संस्कृति को विश्लेषित करके देवत्व के स्थान पर मनुष्यत्व को स्थापित करना था। साहित्य के क्षेत्र में भी द्विवेदी जी का उद्देश्य मानव की सवृत्तियों का विकास करके उसके व्यक्तित्व को विकसित करना था। डॉ. द्विवेदी जी ने इसी सन्दर्भ को आगे बढ़ाते हुए इस गद्यांश में अशोक के फूल के महत्त्व को स्थापित किया है और उसकी साहित्यिक परम्परा का भी चित्रण किया है।

व्याख्या- प्रस्तुत गद्यांश में द्विवेदी जी ने फूल की मनोरमता और सभ्यता की रुचि का प्रतीक बताते हुए लिखा है कि अशोक का दुर्लभ एवं दिव्य फूल चाहे कितना ही रहस्यमय] अलंकारमय तथा मनोरम हो] लेकिन उस फूल को राजघराने की महारानियों ने अपने नूपुर भरे चरणों से ही पुष्पित पल्लवित किया है। डॉ. द्विवेदी जी ने कहते हैं कि यह फूल सामन्ती प्रथा को संकेत देता है। ये सामन्त लोग प्रजा की कमाई पर ही पाले जाते थे। इस फूल को इसलिए अभिजात्य वर्ग की वस्तु स्थान दिया जाता है। डॉ. द्विवेदी जी कहते हैं कि जब सामन्त व्यवस्था समाप्त हो गई तो उनके द्वारा आयोजित होने वाले मदनोत्सव की परम्परा भी खत्म हो गई है। जो स्त्रियाँ सन्तान की इच्छाएं रखती थीं उनको देवताओं द्वारा वरदान दिया जाने लगा था। इन यक्षों का मान] देवताओं द्वारा कम कर दिया गया। इसी कारण डॉ. द्विवेदी जी कहते हैं कि दुनिया अशोक के फूल की तरफ ध्यान न देकर अपने रास्ते चलती गई और विकसित होती गई

विशेष- (1) डॉ. द्विवेदी जी ने फूल को सामन्ती परम्परा का प्रतीक माना है और इसकी उपेक्षा तथा सामन्तवादी प्रथा की समाप्ति के सम्बन्ध का उल्लेख इस गद्यांश में स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। (2) भाषा सरल] सहज तथा शुद्ध है। (3) शैली- विवेचनात्मक एवं व्याख्यात्मक है।

(2) "आज जिसे हम बहुमूल्य संस्कृति मान रहे हैं क्या ऐसी ही बनी रहेगी सम्म्राटों-सामन्तों ने जिस आचार-निष्ठा को इतना मोहक और मादक रूप दिया था] वह लुप्त हो गई] धर्माचार्यों ने जिस ज्ञान और वैराग्य को इतना महार्थ समझा था] वह समाप्त हो गया। मध्य युग के मुसलमान रईसों के अनुकरण पर जो रस राशि उमड़ी थी] वह वाष्प की भाँति उड़ गयी, तो क्या यह मध्य युग के कंकाल में खिला हुआ व्यावसायिक-युग का कमल ऐसा ही बना रहेगा? महाकाल के प्रत्येक पदाघात में धरती धसकेगी। उसके कुण्ठनृत्य की प्रत्येक चारिका कुछ न कुछ लपेटकर ले जायेगी।"

सन्दर्भ- पूर्ववत् ।

प्रसंग- डॉ. द्विवेदी जी ने] साहित्य के प्रति अपनी एक निश्चित धारणा व्यक्त की थी, यही नहीं उन्होंने मानव की सवृत्तियों का विकास करते हुए उसके व्यक्तित्व का विकास किया था और साहित्य का लक्ष्य मानव को उसके जीवन के लक्ष्य] संस्कृति के प्रति सजग करना बताया है। लेखक ने इस गद्यांश में] "अशोक के फूल" के महत्त्व को इसी संदर्भ में पुनः स्थापित किया है। और उसकी सांस्कृतिक परम्परा का उल्लेख भी किया है।

व्याख्या- प्रस्तुत गद्यांश में लेखक ने कहा है कि आज हम जिस संस्कृति का बहुमूल्य मान रहे हैं] वह समय के साथ बदलती जावेगी। जिस प्रकार राजा] सामन्त] रजवाड़े समय के साथ समाप्त होते चले गये। जो ज्ञान प्राचीन काल में संचित किया गया उसका प्रभाव भी समाप्त हो गया। जो दरबारी संस्कृति] मुस्लिम प्रभाव से अस्तित्व में आयी थी] वह भी विलुप्त होती चली गई। यह धरती मध्य युग के अस्थि-पंजर के पदाघात से खिसक जावेगी। महाकाल की सेविकाएं नृत्य करती हैं, वे अपने में कुछ न कुछ लपेट कर ले जावेंगी।

डॉ. द्विवेदी जी कहते हैं कि समय बड़ा बलवान] गतिमान होता है] जिसके प्रभाव से हर प्रथा] चलन] रीति-रिवाज] समय आने पर सब अप्रासंगिक हो जावेंगे।

समय के साथ समस्त मूल्य] मान्यताएं बदल जावेंगी। सब कुछ नया होता जायेगा। यही समय चक्र है] जिसके प्रभाव से कोई नहीं बचता है।

विशेष- (1) लेखक ने इस गद्यांश में इस तर्क को प्रस्तुत किया है कि "पुराने पत्तों के बाद ही नये पत्तों को आगमन के समान परिवर्तन तथा नूतन चीजों का आगमन समय के साथ अपेक्षित है।" यही प्रकृति का नियम है जिसे लेखक ने इस गद्यांश में उधृत किया है। (2) भाषा- लाक्षणिक, संस्कृतनिष्ठ] मधुर एवं शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली है। (3) शैली- भावात्मक एवं वर्णनात्मक है।

(3) ''पण्डिताई भी एक बोझ है-जितनी भी भारी होती है] उतनी ही तेजी से डूबती है। जब वह जीवन का अंग बन जाती है] तो सहज हो जाती है] तब वह बोझ नहीं रहती वह उस अवस्था में उदास नहीं करती। अशोक का कुछ भी तो नहीं बिगड़ा है। कितनी मस्ती में झूम रहा है। कालिदास इसका रस ले सके थे अपने ढंग से] मैं भी ले सकता हूँ अपने ढंग से। उदास होना बेकार है।"

सन्दर्भ- पूर्ववत् ।

प्रसंग- लेखक ने प्रस्तुत गद्यांश में अपनी सांस्कृतिक परम्परा के साथ-साथ अशोक के फूल के महत्त्व को स्थापित किया है तथा द्विवेदी जी ने साहित्यिक क्षेत्र में भी उसके महत्त्व को चित्रित किया है।

व्याख्या- प्रस्तुत गद्यांश में लेखक ने अशोक के फूल को नये परिप्रेक्ष्य में चित्रित किया है। जो संस्कारी व्यक्ति अपने को पुरानी मान्यताओं एवं परम्पराओं में ढालता है, वह अशोक के फूल को देखकर शीघ्र ही उदास हो जाता है और इस फूल की उपेक्षा करने वाले व्यक्ति को मूर्ख समझता है। जो व्यक्ति अधिक ज्ञानवान होता है] वह कभी-कभी एक बोझ के समान भी हो जाता है। लेखक बताता है कि उसका ज्ञान कितना गहन होगा, वह उतना ही सांसारिकता से विमुख होता चला जायेगा। यही ज्ञान जब मानव जीवन का अंग बन जाता है, तो वह ज्ञान जीवन को विकसित करने में सहायक होता है। तब वह दूसरों को उदास भी नहीं करता है। लेखक बताता है कि इन सबके बाद भी अशोक के फूल का कुछ नहीं बिगड़ा है। वह तो उसी पहले जैसी मस्ती से झूमता रहा है। इस फूल का आनन्द कालिदास ने अपने युग की प्रवृत्तियों के अनुसार जिस प्रकार उठाया था। उसी प्रकार हम भी अपने युग की परिस्थितियों के अनुसार उसका

आनन्द ले सकते हैं। उदासी को समाप्त करने के लिए हमें अपने दृष्टिकोण में बदलाव लाना आवश्यक है ताकि आगे भविष्य में उसकी उपेक्षा न हो।

विशेष- (1) लेखक उस ज्ञान को एक बोझ समझता है] जो अपने को समयानुसार परिवर्तित नहीं कर सकता] क्योंकि वह ज्ञान मानव की समस्याओं को हल नहीं कर सकता है। लेखक पाण्डित्य को भी उस समय एक बोझ समझता है] जब मनुष्य उसको अपने जीवन का अंग नहीं बना पाता। (2) भाषा शुद्ध, सरल, साहित्यिक एवं मधुर है। (3) शैली भावात्मक एवं प्रभावोत्पादक है।

(4) “कहीं भी तो कुछ नहीं बिगड़ा है] कुछ भी तो नहीं बदला है] बदली है मनुष्य की मनोवृत्ति। यदि बदले बिना वह आगे बढ़ सकती तो शायद वह भी नहीं बदलती। यदि वह न बदलती तो व्यावसायिक संघर्ष आरम्भ हो जाता-मशीन का रथ घर्घर चल पड़ता-विज्ञान का ^संवेग धावन चल निकलता]तो बहुत बुरा होगा।"

संदर्भ- पूर्ववत् ।

प्रसंग- प्रस्तुत गद्यांश में द्विवेदी जी ने फूल की सांस्कृतिक परम्परा और उसके महत्त्व को पुनर्स्थापित किया है तथा कहा है कि मानव के विकास में जैसे-जैसे मनुष्य आगे बढ़ा है समय के अनुसार उसकी मनोवृत्ति भी बदली है।

व्याख्या- प्रस्तुत गद्यांश में लेखक ने बदलाव की प्रक्रिया पर अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। लेखक कहता है कि सूर्य, चन्द्र, बादल, बरसात, पानी कुछ भी नहीं बदला। समय के प्रभाव से केवल मनुष्य की मनोवृत्ति ही बदली है। समय का चक्र भी बदलाव पर ही निर्भर है। यदि बदलाव न आता तो समय का चक्र रुक जाता और व्यवसाय क्षेत्र में संघर्ष प्रारम्भ हो जाता, जिससे मशीन और विज्ञान की दौड़ चल निकलती। लेखक कहता है कि इन परिस्थितियों में केवल विनाश ही निश्चित था।

विशेष- (1) लेखक ने अपने इस गद्यांश में विज्ञान के प्रभाव को दर्शाया है और यह भी बताया है कि मानव का विकास तथा मानव की प्रगति निरन्तर परिवर्तनीय मानव की मनोवृत्ति पर ही निर्भर होती है। (2) भाषा- सरल, सहज एवं साहित्यिक । (3)शैली- विवेचनात्मक एवं भावात्मक ।

(5) “भारतीय साहित्य में’ और इसलिए जीवन में भी] उस पुष्प का प्रवेश और निर्गम दोनों ही विचित्र नाटकीय व्यापार हैं। ऐसा तो कोई नहीं कह सकेगा कि कालिदास के पूर्व भारतवर्ष में इस पुष्प का कोई नाम ही नहीं जानता था। परन्तु कालिदास के काव्यों में यह जिस शोभा और सौकुमार्य का भार लेकर प्रवेश करता है, वह पहले कहाँ था । उस प्रवेश में नववधू के गृह प्रवेश की भाँति शोभा है] गरिमा है, पवित्रता है और सुकुमारता है।"

सन्दर्भ- पूर्ववत् ।

प्रसंग- प्रस्तुत गद्यांश में लेखक ने “अशोक के फूल” के ऐतिहासिक महत्त्व पर प्रकाश डाला है तथा उस नाटकीय घटना का भी वर्णन किया है कि जिसके अनुसार अशोक के फूल ने कालिदास के हाथों भारतीय साहित्य में प्रवेश किया।

व्याख्या- प्रस्तुत गद्यांश में लेखक ने फूल की ऐतिहासिकता के सम्बन्ध में लिखा है कि भारतीय संस्कृति के प्रमुख अंगों में कमल, पाटल और आम्रमंजरी प्रमुख अंग है। अशोक के फूल का भारतीय साहित्यिक जीवन में प्रवेश और निर्गम के सम्बन्ध में एक कथा प्रचलित है। संस्कृति के उत्थान पतन के कारण यह कथा परिवर्तन की कथा बन गई है। ऐसा नहीं कि कालिदास ने ही सर्वप्रथम इस पुष्प का वर्णन अपने काव्य में किया है। इससे पूर्व भी लोगों को इस पुष्प के सम्बन्ध में जानकारी थी। पौराणिक कथाओं में भी इस पुष्प का उल्लेख मिलता है। यह भी हो सकता है कि कालिदास के समय इस पुष्प का कोई महत्त्व न हो इसलिए कालिदास ने इस पुष्प को अपने काव्य में प्रमुख स्थान दिया है। कालिदास के कारण ही वस्तुतः इस पुष्प को अन्य पुष्पों के बीच उच्चासन प्राप्त हो गया। इस पुष्प की शोभा को कालिदास ने अपनी स्नेहपूर्ण दृष्टि से ही समादृत किया जिस प्रकार एक नव वधू अपने गृह प्रवेश के समय शोभायमान, गम्भीरता से पूर्ण होती है, उसके रंग-रूप में जो पवित्रता होती है, वही शोभा, गम्भीरता और पवित्रता अशोक के फूल में उस समय विद्यमान थी, जब उसने कालिदास के द्वारा साहित्य में प्रवेश किया था। किसी भी कवि ने फूल की इस विशेषता को कभी भी आगे चलकर इस स्नेह पूर्ण भाव भारी पवित्र दृष्टि से नहीं देखा और न ही अपने काव्य में उसे स्थान दिया।

विशेष- (1) अशोक के फूल का आगमन गंधर्व संस्कृति के साथ ही हुआ था। डॉ. द्विवेदी जी ने कहा है कि गंधर्व देश इस फूल के लिए पिता-गृह तथा भारत पति-गृह माना जाता है। भारतीय संस्कृति में इस फूल का विशेष महत्त्व है। कालिदास ने इस फूल की शोभा की तुलना नव वधू की शोभा से की है। कालिदास ने प्रस्तुत गद्यांश में गरिमा, पवित्रता, आदि शब्दों के द्वारा पुष्प और उसकी संस्कृति को चित्रित किया है तथा लेखक ने इन्हीं पवित्र शब्दों से अशोक के फूल के साहित्य-प्रवेश को प्रस्तुत गद्यांश में वर्णित किया है। (2) भाषा- विषयानुकूल एवं शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली । (3) शैली- प्रभावोत्पादक भावात्मक तथा चित्रात्मक ।

(6) "संघर्षों से मनुष्य ने नयी शक्ति पाई है। हमारे सामने समाज का जो रूप है] वह न जाने कितने ग्रहण और त्याग का रूप है। देश और जाति की विशुद्ध संस्कृति केवल बात की बात है। सब कुछ में मिलावट है] सब कुछ अविशुद्ध है। शुद्ध है-केवल मनुष्य की दुर्दम जिजीविषा (जीने की इच्छा)। वह गंगा की अबाधित] अनाहत धारा के समान सब कुछ को हजम करने के बाद भी पवित्र है। सभ्यता और संस्कृति का मोह क्षण भर बाधा उपस्थित करता है] धर्माचार का संस्कार थोड़ी देर तक इस धारा से टक्कर लेता है, पर इस दुर्दम धारा में सब कुछ बह जाता है, जितना कुछ इस जीवन शक्ति को समर्थ बनाता है] उतना उसका अंग बन जाता है। बाकी फेंक दिया जाता है।"

सन्दर्भ- पूर्ववत् ।

प्रसंग- प्रस्तुत गद्यांश में लेखक ने कहा है कि अशोक का वृक्ष चाहे कितना भी मनोहर हो लेकिन उसकी छवि सामन्त प्रथा के साथ ही समाप्त हो गई थी। महाकाल के समक्ष कोई भी संस्कृति एवं सभ्यता टिक नहीं पाती तथा काल की धारा का सामना केवल मनुष्य की जीने की इच्छा ने ही किया। लेखक ने मनुष्य में अशोक के फूल के माध्यम से जीने की इच्छा का महत्त्व प्रदर्शित किया है।

व्याख्या- मनुष्य की जीवन की इच्छा ही सृष्टि के आरम्भ से अब तक प्रमुख रही है। मनुष्य ने अपने जीवन में अनेकों संघर्ष किये हैं। मनुष्य ने हर संघर्ष के बाद एक नई शक्ति को प्राप्त किया है। आज मनुष्य का जो स्वरूप हमारे सामने विद्यमान है, वह इस बात का प्रमाण है कि मनुष्य ने केवल उपयोगी

तथ्यों को ही ग्रहण किया और जो तथ्य उपयोगी नहीं थे, उनको त्याग दिया था। लेखक कहता है कि कोई सभ्यता और संस्कृति पूर्ण रूप से शुद्ध नहीं है। लेखक के अनुसार किसी भी देश की संस्कृति के विकास के अपने सिद्धान्त होते हैं, जो त्याग एवं ग्रहण पर आधारित होते हैं। हर देश की संस्कृति में तथा दूसरे देश की संस्कृति में कुछ न कुछ तत्त्वों का पारस्परिक प्रभाव देखने को मिलता है। इसलिए सांस्कृतिक शुद्धता कहीं भी देखने को नहीं मिलती है। वस्तुतः मनुष्य के जीने की इच्छा ही शुद्ध है। इस इच्छा ने कभी भी धर्माचार रीति-रिवाजों तथा महाकाल के बन्धन को स्वीकार नहीं किया। लेखक कहता है कि जिस प्रकार गंगा की धारा सब कुछ गंदगी को समेट कर भी शुद्ध बनी रहती है] उसी प्रकार मानव की जिजीविषा अर्थात् जीने की इच्छा ने हर संस्कृति के तत्त्वों को ग्रहण किया और फिर भी शुद्ध बनी रही। मनुष्य अपनी संस्कृति के मोह में फंसकर रुक जाता है, लेकिन जब मानव की इच्छा उग्र रूप धारण कर लेती है, तो ये बाधायें मनुष्य का रास्ता रोक नहीं पाती। मनुष्य ऐसी स्थिति में आवश्यक तत्त्वों को ग्रहण करके अनावश्यक तत्त्वों को त्याग देता है।

विशेष (1) प्रस्तुत गद्यांश में लेखक ने आस्थावादी विचारधारा का चित्रण किया है तथा मनुष्य में विद्यमान जीवन-इच्छा को ही सर्वाधिक महत्त्व दिया है। (2)भाषा शुद्ध] साहित्यिक खड़ी बोली । (3) शैली- वर्णनात्मक तथा भाषात्मक ।

(7) "धन्य हो महाकाल] तुमने कितनी बार मदन देवता का गर्व खण्डन किया है। धर्मराज के कारागार में कितनी बार क्रान्ति मचाई है। यमराज के तारल्य को पी लिया। विधाता के सर्व कर्तव्य के अभिमान को चूर्ण किया है। आज हमारे भीतर जो मोह है, संस्कृति और कला के नाम पर जो आसक्ति है] धर्माचार और सत्यनिष्ठा के नाम पर जो महिमा है] उसमें कितना भाग तुम्हारे कुण्ठ नृत्य से ध्वस्त हो जावेगा] कौन जानता है। मनुष्य की जीवन धारा फिर भी अपनी मस्तानी चाल से चलती जायेगी।"

सन्दर्भ- पूर्ववत् ।

प्रसंग- प्रस्तुत गद्यांश में लेखक कहता है कि संसार के समस्त धर्म] आचार-विचार, सभ्यता तथा संस्कृति सभी ने मानव जीवन की धारा के प्रखर रूप के

समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया है। सभ्यता और संस्कृति का प्रमुख उद्देश्य मानव जीवन को सजग रखना एवं प्रेरणा देने का है। इसके लिए ही प्रस्तुत गद्यांश में मानव की जीवनधारा की निरन्तरता का उल्लेख किया गया है।व्याख्या- प्रस्तुत गद्यांश में लेखक महाकाल की प्रकृति का वर्णन करता हुआ कहता है कि हे महाकाल ! तुम धन्य हो! महाकाल के चक्र से कोई भी धर्म] सभ्यता]संस्कृति, आचार-विचार आदि बच नहीं पाया है। समाज के उत्थान-पतन का कारण महाकाल के अतिरिक्त किसी को भी पता नहीं है। इसलिए लेखक सर्वप्रथम महाकाल को ही प्रणाम कर धन्यवाद देता है। मदन देवता का घमण्ड भी इसी महाकाल द्वारा ही तोड़ा गया है। महाकाल ने मदन देवता का घमण्ड कभी शिव के रूप में] कभी बुद्ध के रूप में तो कभी ऋषियों के रूप में तोड़ा है। सभी पुण्यात्माओं को धर्मराज द्वारा अपनी कारागार में डाल दिया गया है। जो आत्मा अपने कर्तव्य-पथ से विमुख हो गई] उसको संसार रूपी नरक की यातनाएं भोगने के लिए संसार में आना पड़ता है] क्योंकि धर्मराज निर्दयता का प्रतीक माने जाते हैं] लेकिन धर्मराज की निर्दयता को भी महाकाल द्वारा घोलकर पी लिया गया है। लेखक के अनुसार ब्रहमा जी को भी संसार रचने का बहुत घमण्ड था। लेकिन उनके द्वारा निर्मित समस्त चीजों को महाकाल द्वारा ध्वंस कर दिया गया। वर्तमान समय में मानव अपने धर्म सभ्यता एवं संस्कृति, आचार-विचार व सत्यनिष्ठा से बखूबी चिपका हुआ है। लेकिन महाकाल मानव के इस मोह को कब तोड़ दे] कोई नहीं जानता। इस सम्बन्ध में लेखक कहता है कि महाकाल के पंजों से कोई भी नहीं बच पाया तथा हर कोई उसकी पकड़ में फैसा हुआ है। फिर भी इस सबके बावजूद भी मानव की जीवनधारा की गति अबाध] निरन्तर एवं चलायमान है। मानव की जीवनधारा निर्माण और ध्वंस के बीच अपना अस्तित्व बनाये रखती है। महाकाल ने भी मनुष्य की जीवनधारा के सामने समर्पण कर दिया है।

विशेष (1) प्रस्तुत गद्यांश में लेखक ने केवल महाकाल और मानव जीवन धारा की तुलना करता है, अपितु लेखक द्वारा महाकाल के क्षेत्रों को भी सीमित कर दिया है और यह भी सिद्ध करने का प्रयास किया गया है कि मानव जीवन धारा पर महाकाल का भी कोई अंकुश नहीं होता है। (2) भाषा- गाम्भीर्य के साथ-

साथ प्रवाहपूर्ण भाषा का प्रयोग है। (3) शैली- व्याख्यात्मक एवं विवेचनात्मक शैली का प्रयोग किया गया है।

(7) "कहते हैं दुनिया बड़ी भुलक्कड़ है। केवल उतना ही याद रखती है] जितने से उसका स्वार्थ सधता है। बाकी को फेंककर वह आगे बढ़ जाती है। शायद अशोक के फूल से उसका स्वार्थ नहीं सघा] क्यों उसे वह याद रखती, सारा संसार स्वार्थ का अखाड़ा ही तो है।"

संदर्भ- पूर्ववत् ।

प्रसंग- प्रस्तुत गद्यांश में लेखक ने दुनिया की भुलक्कड़ प्रवृत्ति एवं स्वार्थपरता पर टिप्पणी करते हुए कहा है कि संसार समस्त चीजों को बहुत जल्दी भुला देता है। यह संसार उन्हीं चीजों को याद करता या रखता है] जो उसके स्वार्थों की पूर्ति करने में सक्षम हैं। जो चीजें दुनिया के स्वार्थ की पूर्ति नहीं करतीं] उनको उसके द्वारा छोड़ दिया जाता है और संसार आगे की ओर अग्रसर हो जाता है।

लेखक कहता है कि अशोक के फूल से दुनिया का कोई स्वार्थ सिद्ध नहीं हुआ। इसलिए दुनिया ने उसको याद भी नहीं रखा। यदि अशोक के फूल से किसी प्रकार का स्वार्थ सिद्ध हो जाता] तो दुनिया इस फूल को भी याद रखती। सारे संसार को लेखक ने स्वार्थ से परिपूर्ण बताया है] क्योंकि संसार का हर व्यक्ति अपने स्वार्थ की पूर्ति में लगा हुआ है। इसलिए लेखक ने दुनिया को स्वार्थ का अखाड़ा कहा और यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि यदि कोई चीज दुनिया के स्वार्थ की पूर्ति न करे तो उसको पूर्ण रूप से भुला दिया जाता है।

स्वप्रगति परीक्षण

1. "अशोक का वृक्ष जितना भी मनोहर हो, जितना भी रहस्यमय हो, जितना भी अलंकारमय हो, परन्तु है वह उस विशाल _________ की परिष्कृत रुचि का ही प्रतीक।"

2. "आज जिसे हम बहुमूल्य संस्कृति मान रहे हैं, क्या ऐसी ही बनी रहेगी? _________ ने जिस आचार-निष्ठा को इतना मोहक और मादक रूप दिया था, वह लुप्त हो गई।"
3. "पण्डिताई भी एक _________ है- जितनी भी भारी होती है, उतनी ही तेजी से डूबती है। जब वह जीवन का अंग बन जाती है, तो सहज हो जाती है, तब वह बोझ नहीं रहती।"
4. "अशोक का कुछ भी तो नहीं बिगड़ा है। कितनी मस्ती में _________ रहा है। कालिदास इसका रस ले सके थे अपने ढंग से, मैं भी ले सकता हूँ अपने ढंग से।"

## *2.5 मेरे राम का मुकुट भीग रहा है*

(1) "महीनों से मन बेहद उदास है। उदासी की कोई खास वजह नहीं, कुछ तबीयत ढीली] कुछ आसपास के तनाव और उनसे टूटने का डर] खुले आकाश के नीचे भी खुलकर साँस लेने की जगह की कमी] जिस काम में लगकर मुक्ति पाना चाहता हूँ] उस काम में हजारों बाधाएं; कुल ले-देकर उदासी के लिए इतनी बड़ी चीज़ नहीं बनती। फिर भी रात-दिन नींद नहीं आती। दिन ऐसे बीतते हैं जैसे भूतों के सपनों की एक रील पर दूसरी रील चढ़ा दी गयी हो और भूतों की आकृतियाँ और डरावनी हो गयी हों। इसलिए कभी-कभी तो बड़ी-से-बड़ी परेशानी करने वाली बात हो जाती है और कुछ भी परेशानी नहीं होती, उल्टे ऐसा लगता है, जो हुआ, एक सहज क्रम में हुआ; न होना ही कुछ अटपटा होता और कभी-कभी मामूली-सी बात भी भयंकर चिंता का कारण बन जाती है।"

प्रसंग- प्रस्तुत गद्यावतरण ललित निबन्धकार डॉ. विद्यानिवास मिश्र द्वारा लिखित 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' शीर्षक निबन्ध से लिया गया है। यहाँ पर लेखक ने अपने मन का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है।

व्याख्या- लेखक का कथन है कि महीनों से मेरा मन उदास है। उदासी का क्या कारण हो सकता है, यह बात भी समझ में नहीं आती। इस उदासी के कारण स्वास्थ्य भी ठीक नहीं रहता। लेखक के साथ जैसा मानसिक रूप से हो रहा है,

वैसा अन्य मनुष्यों के साथ भी होता रहता है। कुछ तनाव, कुछ तनाव से टूटने का डर। खुले आकाश के नीचे भी लेखक कहता है कि मैं खुलकर साँस नहीं ले पाता। जिस कार्य में अपने मन को लगाता हूँ, उस काम में मन नहीं लगता, वरन् अनेकों कठिनाइयाँ सामने आ जाती हैं। ऐसा किसी भी मानसिक उदास व्यक्ति के साथ हो सकता है। जहाँ समस्याएं हों, वहाँ और अधिक समस्याएं आ जाती हैं। लेखक कहता है कि उदासी मेरे लिए कोई कारण नहीं, न ही उदासी का कोई कारण है, फिर भी मैं तनावग्रस्त रहती हूँ। मुझे रात-दिन नींद भी नहीं आती। दिन ऐसे बीत जाता है जैसे एक रील मशीन पर चढ़ा दी गई हो। मन तनावग्रस्त होने से विभिन्न प्रकार की भूतों की आकृतियाँ, डरावनी चेहरे आँखों के सामने घूमते रहते हैं, इसी तनावग्रस्तता में छोटी-छोटी परेशानी भी बड़ी बन जाती है, कभी-कभी यह छोटी परेशानी भी बड़ी बन जाती है, कभी कुछ भी परेशानी दिखाई नहीं देती। लेखक के कहने का भाव यह है कि यह एक मानसिक विकार है। इसी मन के कारण ही बड़ी-से-बड़ी परेशानी छोटी लगती है और छोटी-सी-छोटी परेशानी बड़ी लगती है। कई बार ऐसा लगता है कि जो हुआ सो ठीक हुआ, सहज रूप में हुआ, न होना भी कई बार स्वयं को अटपटा-सा लगता है। कभी-कभी मामूली-सी बात भी भयंकर लगने लगती है। कई बार भयंकर बात भी छोटी लगने लगती है।

(2) "अभिषेक की बात चली, मन में अभिषेक हो गया और मन में राम के साथ राम का मुकुट प्रतिष्ठित हो गया। मन में प्रतिष्ठित हुआ, इसलिए राम ने राजकीय वेश उतारा, राजकीय रथ से उत्तरे, राजकीय भोग का परिहार किया, पर मुकुट तो लोगों के मन में था, कौसल्या के मातृ-स्नेह में था, वह कैसे उतरता, वह मस्तक पर विराजमान रहा और राम भीगें तो भीगें, मुकुट न भीगने पाये, इसकी चिंता बनी रही। राजा राम के साथ उनके अंगरक्षक लक्ष्मण का कमर-बन्द दुपट्टा भी (प्रहरी की जागरूकता का उपलक्षण) न भीगने पाये और अखण्ड सौभाग्यवती सीता की माँग का सिंदूर न भीगने पाये, सीता भले ही भीग जाये। राम तो वन से लौट आये सीता को लक्ष्मण फिर निर्वासित कर आये, पर लोकमानस में राम की वनयात्रा अभी नहीं रुकी। मुकुट दुपट्टे, ओम सिंदूर के भीगने की आशंका अभी भी साल रही है। कितनी अयोध्याएं बसी, उजड़ी पर

निर्वासित राम की असली राजधानी, जंगल का रास्ता अपने काँटों-कुशों, कंकड़ों-पत्थरों की वैसी ही ताजा चुभन लिए हुए बरकरार है, क्योंकि जिसका आसरा साधारण गँवार आदमी भी लगा सकता है, वे राम तो सदा निर्वासित ही रहेंगे और उनके राजपाट को सँभालने वाले भरत अयोध्या के समीप रहते हुए भी उनसे भी अधिक निर्वासित रहेंगे।"

प्रसंग- प्रस्तुत गद्यावतरण ललित निबन्धकार डॉ. विद्यानिवास मिश्र द्वारा लिखित 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' शीर्षक निबन्ध से लिया गया है। यहाँ पर लेखक ने व्यक्त किया है कि व्यक्ति किसके बारे में सोच रहा होता है और मन कहाँ चला जाता है उसी का चित्रण यहाँ किया गया है।

व्याख्या- लेखक का स्वयं का कथन है कि मैं अपने एक चिरंजीव और एक मेहमान जो संगीत का कार्यक्रम सुनने गये हैं और देर रात तक पहुँचे नहीं हैं तो उनके मन में बात देर तक न आने और उनकी प्रतीक्षा की बात मन में चल रही है, लेकिन लेखक का मन रात देर तक बैठे रहने पर कहीं ओर चला जाता है। राम के अभिषेक की बात चली तो लेखक के मन में राम के अभिषेक की बात आ गयी। राम का मुकुट मन में प्रतिष्ठित हो गया। यह सारी प्रक्रिया रात को प्रतीक्षा करते-करते निबन्धकार के मन में चल रही है। राम ने राजसी वेश उतारकर, राजसी रथ से उतर गये। राजकीय भोग-विलास का भी त्याग किया, पर लोगों के मन में राम का राजसी वेश ही बसा हुआ था। राजसी वेश राम की माता कौशल्या के मातृ-स्नेह में था, वह कैसे उतरता, वह मस्तक पर अभी भी विराजमान था। लेखक के मन. में भी यही बात थी, लोकमानस से भी यही बात थी कि राम भले ही भीग जायें, लेकिन राम का मुकुट बारिश में न भीगे। लेखक बारिश में घोर अंधियारे को देख रहा है जो उनके घर से चिरंजीव और एक लड़की संगीत सुनने के लिए गये हुए हैं। चिरंजीव को वह राम के रूप में अभिषेक करके राम बारिश में न भीग जायें उसी के बारे में मन में रील चल रही है। राम का मुकुट न भीगे, इसी की चिता लेखक के मन में बनी हुई है। लेखक कहता है कि राजा राम के साथ अंगरक्षक लक्ष्मण भी भीगने न पाये। वह यह भी चाहता है कि अखण्ड सौभाग्यवती सीता की माँग का सिंदूर भी न भीगे, सीता भले ही भीग जाये। राम वनवास से लौटकर आ गये, सीता को लक्ष्मण फिर से निर्वासित

कर आये। वास्तव में सीता का निर्वासित होना, उस दृष्टि से लेखक सोच रहा है कि महानगर में पली लड़की जो चिरंजीव के साथ संगीति सुनने गयी है उसी के बारे में सोच रहे हैं कि वह परायी लड़की है और उसे कल को गृहिणी बनना है अर्थात् कब तक वह खुले आकाश में विचरण करेगी। राम को निर्वासित कर देना, राम को वन भेजना आज भी राम की वनयात्रा लोकमानस में रची बसी है। लेखक के मन में मुकुट, दुपट्टे, सिदूर के भीगने की आशंका अभी भी कचोट रही है। लेखक कहता है कि कितनी बार अयोध्याएं बनी, बसी, उजड़ीं। लेकिन निर्वासित, वनवासी राम की वनयात्त उसकी राजधानी, जंगल में राजसी राम को जंगल के रास्तों की चुभन, काँटे, कुश, कंकड़-पत्थर सभी की चुभन आज भी लोकमानस के मन में बसी हुई है। कारण, राजा राम राजा नहीं बल्कि लोकमानस के रचे बसे राम हैं। राम लोकमानस में इतने बसे इसलिए हैं कि साधारण, गँवार आदमी भी राम का ही आश्रय लेता है, राम आश्रय देते भी हैं। राम सदा निर्वासित ही रहेंगे और उनके राजपाठ को सँभालने वाले भरत अयोध्या के समीप रहते हुए भी उनसे भी अधिक निर्वासित हैं। कहने का भाव यह है कि राजपाट तो राम का है भरत तो केवल उस राजपाट को चला रहे हैं।

(3) कब घर लौटेंगे; मेरे राम के सेवक का दुपट्टा भीग रहा है, पहरुए का कमरबन्द भीग रहा है, उसका जागरण भीग रहा है, मेरे राम की सहचारिणी सीता का सिंदूर भीग रहा है उसका अखण्ड सौभाग्य भीग रहा है, मैं कैसे धीरज धरूँ ? मनुष्य की इस सनातन स्थिति "सोचते-सोचते लगा कि इस देश की ही नहीं, पूरे बिश्व की एक कौसल्या है; जो हर बारिश में बिसूर रही है-'मोरे राम के भीजै मुकुटवा' मेरी संतान, ऐश्वर्य की अधिकारिणी संतान वन में घूम रही है, उसका मुकुट, उसका ऐश्वर्य भीग रहा है मेरे राम से एकदम आतंकित हो उठा, ऐश्वर्य और निर्वासन दोनों साथ-साथ चलते हैं। जिसे ऐश्वर्य सौंपा जाने को है। उसको निर्वासिन पहले से बदा है जिन लोगों के बीच रहता हूँ वे सभी मंगल नाना के नाती हैं वे 'मुद मंगल' में ही रहना चाहते हैं मेरे जैसे आदमी आदमी को वे निराशावादी समझकर बिरादरी से बाहर ही रखते हैं, डर लगता रहता है कि कहीं उड़कर उन्हें भी दुख न लग जाए, पर मैं अशेष मंगलाकांक्षाओं के पीछे से झाँकती हुई दुर्निवार शंकाकुल आँखों में झाँकता हूँ तो मंगल का सारा उत्साह

फीका पड़ जाता है और बंदनवार बंदरवार ने दिखकर बटोरी हुई रस्सी की शक्ल में कुंडली मारे नागिन दिखती है।"

प्रसंग- प्रस्तुत गद्यावतरण डॉ. विद्यानिवास मिश्र द्वारा लिखित निबन्ध 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' शीर्षक से लिया गया है। लेखक रात को अंधेरे में अपने घर के लोगों की प्रतीक्षा करते-करते राम के बारे में सोचने लगते हैं। लेखक घर के बारे में सोचते-सोचते देश के बारे में नहीं पूरे विश्व के बारे में सोचते हैं।

व्याख्या- लेखक घर में आयी मेहमान को कौशल्या के रूप में देखता है कि राम की माता कौशल्या केवल राम की माता नहीं थी अपितु विश्व की माता हैं, जो हर बारिश में द्रवित हो रही है या सोच रही है कि मेरे राम का मुकुट भीग रहा है। मेरी संतान, ऐश्वर्य की अधिकारिणी संतान वन में भटक रही है। कौशल्या सोचती है कि राम का मुकुट, उसका ऐश्वर्य भीग रहा है, मेरा राम कब घर लौटेगा ? मेरे राम का सेवक लक्ष्मण भी बारिश में भीग रहा है। राम का अंगरक्षक, पहरेदार लक्ष्मण का कमरबन्द भीग रहा है, उसका जागरण भीग रहा है। मेरे राम का सहचारिणी सीता का सिंदूर भीग रहा है, उसका अखण्ड सौभाग्य भीग रहा है, मैं कैसे धैर्य धारण करू, अर्थात् अब यह धैर्य रखा नहीं जाता। कौशल्या नियति को याद करके एकदम आतंकित हो उठती है अर्थात् यह सोचकर कौशल्या का मन डर जाता है कि ऐश्वर्य-निर्वासन दोनों साथ-साथ चलते हैं, जिसे ऐश्वर्य सौंपा जाना था, उसके लिए विधाता ने निर्वासन पहले से ही लिख दिया है। लेखक इस प्रसंग से हटकर अपने लौकिक संसार की बात कहता है कि मैं जिन लोगों के बीच रहता हूँ, वे सभी मंगल नानी के नाती हैं। वे हर्ष, उमंग और मंगल में ही रहना चाहते हैं। लेखक स्वयं के लिए कहता है कि मेरे जैसे आदमी को निराशावादी समझकर बिरादरी से बाहर ही रखते हैं, पर डर लगा रहता है कि कहीं उड़कर उन्हें भी दुःख न लग जाए, लेकिन में अशेष मंगलकामनाओं के पीछे झांकता दुर्निवार शंकाकुल होकर देखता हूँ तो मंगलकामना की भावना यह उत्साह फीका पड़ जाता है। दरवाजे के ऊपर लगी बंदरवार दिखाई न देकर बटी हुई रस्सी की शक्ल में कुण्डली मारा साँप दिखाई देता है। लेखक कहता है कि जब मन निराशामय होता है तो स्पष्ट चीज भी विभिन्न रूपों में और डरावनी रूप में दिखाई देती है।

(4) "राम भीगें तो भीगें, राम के उत्कर्ष की कल्पना न भीगे, वह हर बारिश में हर दुर्दिन में सुरक्षित रहे। नर के रूप में लीला करने वाले नारायण निर्वासन की व्यवस्था झेलें, पर नर रूप में उनकी ईश्वरता का बोध दमकता रहे, की पानी की बूँदों की झालर में उसकी दीप्ति छिपने न पाये। उस नारायण की सुख-सेज बने अनन्त के अवतार लक्ष्मण, भले ही भीगतें रहें, उनका दुपट्टा, उनका अहर्निश जागर न भीजे, शेषी नारायण के ऐश्वर्य का गौरव अनन्त शेष के जागर-संकल्प से ही सुरक्षित हो सकेगा और इन दोनों का गौरव जगज्जननी आद्यशक्ति के अखण्ड सौभाग्य सीमंत सिंदूर से रक्षित हो सकेगा, उस शक्ति का एकनिष्ठ प्रेम पाकर राम का मुकुट है, क्योंकि राम का निर्वासन वस्तुतः सीता दुहरा निर्वासन है। राम तो लौटकर राजा होते हैं पर रानी होते ही सीता राजा राम द्वारा वन में निर्वासित कर दी जाती है। राम के साथ लक्ष्मण है, सीता है, सीता वन्य पशुओं से घिरी हुई विजन में सोचती है-प्रसव की पीड़ा हो रही है, कौन इसे बेला में सहारा देगा, कौन प्रसव के समय प्रकाश दिखलायेगा, कौन मुझे संभालेगा, कौन जन्म के गीत गायेगा ?"

प्रसंग- प्रस्तुत गद्यावतरण डॉ. विद्यानिवास मिश्र द्वारा लिखित 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' शीर्षक निबन्ध से लिया गया है। यहाँ पर लेखक का कहना है कि मनुष्य की उध्वोंमुख चेतना की यही कीमत आदि सनातन समय से चली आ रही है कि जिसके ऐश्वर्य का अभिषेक हो रहा था, वह निर्वासित हो गया। उत्कर्ष की ओर उन्मुख, समाज का चैतन्य अपने ही घर से बेघर कर दिया गया।

व्याख्या- लेखक का राम से इतना निकट का सम्बन्ध लगता है कि लेखक बारिश में अपने लोगों के आने का इंतजार कर रहा है, जो संगीत सुनने के लिए गए हुए हैं। वहीं पर बैठे ही आधी रात में राम के उत्कर्ष का ख्याल आ जाता है। लेखक कहता है कि राम भीगें तो भीगें लेकिन राम की कल्पना मेरे मन में इस समय जो आ रही है वह न भीगें। वह हर बारिश में अर्थात् हर कठिनाई के समय में दुरावस्था में भी सुरक्षित रहें। नर के रूप में लीला करने वाले नारायण को भी मनुष्य की भाँति वनवास जाना पड़ा, लेकिन नर रूप में उनकी ईश्वरता का, ब्रह्मबोध सदैव हमें प्रकाशित करता रहे, पानी जिसमें आर-पार दिखाई देता

है उतनी पानी की बूँदों की झालर में राम का नारायण रूप कभी भी लुप्त न हो, वह सदैव दीप्तिमय रहे। नारायण अर्थात् राम की सुख-सेज बने विष्णु के अवतार लक्ष्मण भले ही बारिश में भीगते रहें, लेकिन उनका दुपट्टा अर्थात् रक्षा कवच, उनका दिन-रात जागना अर्थात् अपनी अन्तःवृत्तियों को जाग्रत कर रखा है, वह कभी न भीजें। शेष नारायण के ऐश्वर्य का गौरव अनन्त शेष के अन्तःवृत्तियों को जाग्रत करने वाले लक्ष्मण संकल्प मात्र से ही, सुरक्षित हो सकेंगे। पर इन दोनों का गौरव और जगत् जननी आद्यशक्ति के अखण्ड सौभाग्यवती का सिदूर भी रक्षित हो सकेगा। इस शक्ति का एकनिष्ठ प्रेम पाकर ही राम का मुकुट है, क्योंकि राम द्वारा दिया गया निर्वासन सीता का रोहरा वनवास है। राम चौदह वर्ष के वनवास से लौटकर आते हैं तो राजा राम बन जाते हैं, पर सीता रानी होते हुए भी राजा राम द्वारा वन में पुनः निर्वासित कर दी जाती हैं। राम वन में गये थे तो उनके साथ सीता-लक्ष्मण थे, परन्तु सीता के साथ वनवास में वन्य पशु हैं। सीता को पुनः निर्वासन होता है तो सीता को प्रसव पीड़ा हो रही है। वह सोचती है कि मुझे इस समय कौन सहारा देगा, कौन प्रसव पीड़ा के समय प्रकाश दिखायेगा, कौन मेरा सहारा बनेगा। कौन इन नये बच्चों का जन्म के गीत सुनायेगा? आदि प्रश्न सीता के मन में पैदा होते हैं।

(5) "सीता जंगल की सूखी लकड़ी बीनती है जलाकर अंजोर करती है और जुड़वाँ बच्चों का मुँह निहारती है। दूध की तरह अपमान का ज्वाला में चित्त कूद पड़ने के लिए उफनता है और बच्चों की प्यारी और मासूम सूरत देखते ही उस पर पानी के छोटे पड़ जाते हैं, उफान दब जाता है। पर इस निर्वासन में भी सीता का सौभाग्य अखण्डित है, वह राम के मुकुट को तब भी प्रमाणित करता है, मुकुटधारी राम को निर्वासन से भी बड़ी व्यथा देता है और एक बार अयोध्या जंगल बन जाती है, स्नेह की रस धार रेत बन जाती है, सब कुछ उलट-पुलट हो जाता है।"

प्रसंग- प्रस्तुत गद्यावतरण डॉ. विद्यानिवास मिश्र द्वारा लिखित निबन्ध 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' शीर्षक से लिया गया है। इस अवतरण में लेखक ने बताया है कि सीता को पुनः जब निर्वासित कर दिया जाता है, तब मुकुटधारी राम को सीता का निर्वासन भी व्यथा देता है।

व्याख्या- लेखक कहता है कि सीता जब राम द्वारा पुनः निर्वासित कर दी जाती है तो सीता जंगल की सूखी लकड़ियाँ बीनती हैं, उन्हें जलाकर ही उजाला करती है। जब अपने दोनों बच्चों का मुँह निहारती है तो दूध की भाँति उबल पड़ती है और चिता में कूदने के लिए तैयार हो जाती है। सीता के मन में ख्याल आता है कि एक बार निर्वासित हो जाने के बाद उसे पुनः राम निर्वासित कर देते हैं जबकि वे उसकी अग्निपरीक्षा भी ले चुके हैं। फिर बच्चों की प्यारी भोली सूरत देखकर उस पर पानी के छींटे पड़ जाते हैं और सीता का मन फिर शांत हो जाता है। पर इस निर्वासन में भी सीता का सौभाग्य अखण्डित है, वह राम के मुकुट को तब भी प्रमाणित करता है। मुकुटधारी राम अर्थात् राम मुकुट तो धारण कर लेते हैं लेकिन पुनः सीता को निर्वासित कर देना उन्हें बहुत व्यथित कर देता है। इस निर्वासन से राम को यह प्रमाण मिल जाता है कि अयोध्या एक बार जंगल में परिवर्तित हो जाती है, स्नेह की रसधार नदियाँ रेत में परिवर्तित हो जाती हैं, सब कुछ उलट-पुलट हो जाता है। पुनः राम का मुकुट उसे राजा राम भी नहीं रहने देती भले ही वे मुकुट धारण कर लेते हैं।

(6) "तार टूट जाता, मेरे राम का मुकुट भीग रहा है, यह भीतर से कहाँ पाऊँ अपनी उदासी से ऐसा चिपकाव अपने सकरे-से दर्द से ऐसा रिश्ता, राम को अपना कहने के लिए केवल उनके लिए भरा हुआ हृदय कहाँ पाऊँ? मैं शब्दों के घने जंगलों में घिरा गया हूँ। जानता हूँ उन्हीं जंगलों के आस-पास किसी टेकड़ी पर राम की पर्णकुटी है, पर इन उलझाने वाले शब्दों के अलावा मेरे पास कोई राह नहीं। शायद, सामने उपस्थित अपने ही मनोराज्य के युवराज, अपने बचे-खुचे स्नेह के पात्र, अपने भविष्यत् के संकट की चिंता में राम के निर्वासन का जो ध्यान आ जाता है, उनसे भी अधिक एक बिजली के जगमगाते शहर में एक पढ़ी-लिखी चन्द दिनों की मेहमान लड़की के एक रात कुछ देर से लौटने पर अकारण चिंता हो जाती है। उसमें सीता का ख्याल आ जाता है। वह राम के मुकुट या सीता के सिंदूर के भीगने की आशंका से जोड़े न जोड़े, आज की दरिद्र अर्थहीन उदासी को कुछ ऐसा अर्थ नहीं दे देता, जिससे जिन्दगी ऊब से कुछ उबर सके ?"

प्रसंग- प्रस्तुत गद्यावतरण डॉ. विद्यानिवास मिश्र द्वारा लिखित 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' शीर्षक निबन्ध से लिया गया है। यहाँ पर लेखक रात को अंधेरी बारिश में अपने घर से गये हुए मेहमानों की चिता कर रहा है, अचानक लेखक राम, सीता, लक्ष्मण, वनवास के बारे में सोचता है तो अचानक वह राम के मुकुट भीगने का तार टूट जाता है, उसी का चित्रण यहाँ पर किया गया है।

व्याख्या- लेखक कहता है कि मुझे बारिश में राम के मुकुट भीगने का डर था, ज्यों ही यह रील मेरे मन से टूटती है तो लेखक सोचता है कि मेरे भीतर जो उदासी बसी हुई है, संकरा दर्द मेरे भीतर है तो राम को सच्चे हृदय से अपना कहने के लिए हृदय कहाँ से लाऊँ। लेखक अनेकों प्रश्नों से घिरा हुआ है। लेखक कहता है कि मैं यह भी जानता हूँ कि इन्हीं जंगलों के आस-पास किसी टेकड़ी पर राम की पर्णकुटी है। लेखक कहता है कि मैं इस समय इतना उलझा हुआ हूँ कि उलझाव के अतिरिक्त मेरे पास कुछ नहीं है। अपने आँखों के समक्ष उपस्थित अपने ही मनोराज्य के युवराज, अपने बचे-खुचे स्नेह के पात्र, अपने भविष्य के संकट की चिता में उलझे राम के निर्वासन का जब ख्याल आता है तो उससे हृदय में एक बिजली-सी कौंध जाती है, उधर लेखक अपने घर में आयी महानगरीय लड़की की चिता कुछ रात देर से लौटने पर अकारण ही चिंता हो जाती है, इसी बीच लेखक को सीता का भी ख्याल आता है, वह राम के मुकुट के भीगने और सीता के सिदूर के भीगने की चिंता से जोड़े या न जोड़े, लेकिन आज की दरिद्र, अर्थहीन उदासी को ऐसा कुछ अर्थ या सांत्वना दे जिससे व्यक्ति जिन्दगी में आई ऊब से कुछ उबर सके। आज चारों ओर लेखक को ऊब ही ऊब दिखाई देती है।

## *2.6 पगडण्डियों का जमाना*

(1 जिसे देवता समझ बैठा था, वह तो आदमी निकला। मैंने अपनी आत्मा से पूछा, 'हे मेरी आत्मा, तू ही बता! क्या गाली खाकर बदनामी करवाकर मैं ईमानदार बना रहूँ ?' आत्मा ने जवाब दिया, 'नहीं, ऐसी कोई जरूरत नही है।

इतनी जल्दी क्या पड़ी है? आगे जमाना बदलेगा, तब बन जाना।' मेरी आत्मा बड़ी सुलझी हुई बात कह देती है कभी-कभी।

सन्दर्भ- हरिशंकर परसाई ने अपने निबन्ध 'पगडण्डियों का जमाना' में यह प्रसंग उठाया कि उनके एक मित्र उनसे अपने पुत्र के लिए अंक बढ़वाने आये। परसाई ने कहा चूँकि यह कार्य अनैतिक है अतः नहीं करूँगा उनके मित्र रुष्ट हुए और कहने लगे आजकल साला बड़ा ईमानदार बनता है उसकी प्रतिक्रिया पर उन्होंने अपनी अंतरात्मा से पूछा कि मुझे क्या करना चाहिए। इस पर उनकी आत्मा के विचार को उन्होंने प्रकट किया है।

व्याख्या- परसाई का कथन है जिसे मैंने देव तुल्य या सत्यनिष्ठ समझा था वह तो सामान्य पुरुष की भाँति मिथ्याभाषी निकला तब मैंने अपनी अन्तर आत्मा से यह प्रश्न किया है। आत्मा अब तू ही स्पष्ट कर कि मैं लोगों के कुवचन सुनकर एवं अपनी अप्रतिष्ठा करवाकर सत्यनिष्ठ बना रहूँ हरिशचन्द्र का अनुगामी बनूँ तो मेरी आत्मा ने उत्तर दिया उसकी कोई आवश्यकता नहीं। अभी तू शीघ्रता मत कर भविष्य के युग में परिवर्तन होगा उस समय लोग सत्यनिष्ठ होंगे तब तू भी 'सत्यनिष्ठ बन जाना। वे लिखते हैं मेरी आत्मा कभी-कभी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं स्पष्ट बात कह देती है।

(2) अच्छी आत्मा 'फोल्डिंग' कुर्सी की तरह होनी चाहिए। जरूरत पड़ी तब फैलाकर उस घर बैठ गए नहीं तो मोड़कर कोने में टिका दिया। जब कभी आत्मा अड़ंगा लगाती है, तब मुझे समझ में आता है कि पुरानी कथाओं के दानव अपनी आत्मा को दूर किसी पहाड़ी पर तोते में क्यों रख देते थे। वे उससे मुक्त होकर बेखटके दानवी कर्म कर सकते थे। देव और दानव में अब भी तो यही फर्क है- एक की आत्या अपने पास ही रहती है और दूसरे की उससे दूर।

सन्दर्भ- हरिशंकर परसाई ने अपने निबन्ध 'पगडण्डियों का जमाना' में यह प्रसंग उठाया कि उनके एक मित्र उनसे अपने पुत्र के लिए अंक बढ़वाने आये। परसाई ने कहा चूँकि यह कार्य अनैतिक है अतः नहीं करूँगा उनके मित्र रुष्ट हुए और कहने लगे आजकल साला बड़ा ईमानदार बनता है उसकी प्रतिक्रिया पर उन्होंने अपनी अंतरात्मा से पूछा कि मुझे क्या करना चाहिए। इस पर उनकी आत्मा के विचार को उन्होंने प्रकट किया है।

व्याख्या- क्योंकि अच्छी आत्मा को बंधने वाली या फोल्डिग कुर्सी की भाँति होना चाहिए ताकि जब आवश्यकता हो उसे फैला कर बैठ जाओ और नहीं तो उसे मोड़कर एक कोने में रख दो। अतः जब कभी मेरी अन्तरात्मा मुझे टोकती या रोकती है तब मुझे विचार उठता था कि पुरानी कहानियों में राक्षस अपनी आत्मा को किसी तोते में क्यों रख देते थे जो दूर किसी पहाड़ी पर रहता था। क्योंकि तब वे आत्मा से मुक्त होकर डंके की चोट पर निःशंक अपने दुष्टता पूर्वक कार्यों को कर लेते थे। देवता और राक्षस में यही अन्तर है। अर्थात् देवता के ऊपर आत्मा का अंकुश होता है राक्षसों पर नहीं। क्योंकि एक की आत्मा उसके समीप होती है निकट होती है जबकि दूसरे को उससे दूर अन्य स्थान पर होती है।

## *2.7 सार संक्षेप*

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने *'काव्य में लोकमंगल की साधना अवस्था'* में यह प्रतिपादित किया है कि सच्चा काव्य वही है, जो लोकमंगल की भावना से परिपूर्ण हो और इसे जीवन के प्रयत्न पक्ष से जोड़कर देखा जाना चाहिए। हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबंध *'अशोक के फूल'* में अशोक के श्वेत और लाल पुष्पों के प्रतीकात्मक महत्व को रेखांकित किया गया है, जहाँ श्वेत पुष्प तांत्रिक क्रियाओं और लाल पुष्प स्मृति वर्धन के लिए उपयोगी माने गए हैं। विद्यानिवास मिश्र का निबंध *'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है'* पुरानी पीढ़ी की अपनी संतानों के प्रति चिंता और सामाजिक परिवर्तनों की संवेदनशीलता को व्यक्त करता है। हरिशंकर परसाई के *'पगडंडियों का जमाना'* में समाज और सत्ता की भ्रष्टाचार, अंधविश्वास, सांप्रदायिकता और अवसरवाद जैसी बुराइयों पर व्यंग्यपूर्ण प्रहार किया गया है।

## *2.8 मुख्य शब्द*

1. पर्णकुटी - लकड़ी और पत्तों से बनी छोटी सी झोपड़ी या कुटिया।
2. अभिव्यक्ति - किसी विचार, भावना या विचारधारा का प्रकट होना या व्यक्त होना।
3. आत्मबोध - आत्म का ज्ञान, आत्मा का अनुभव या खुद को समझना।
4. रमणीयता - सुंदरता, आकर्षकता या मनमोहकता।
5. प्रचण्डता - तीव्रता, प्रबलता या अत्यधिक ताकत।
6. दुर्लभ - बहुत ही दुर्लभ, जो आसानी से न मिले।
7. मानवतावादी - मानवता के सिद्धांतों पर विश्वास करने वाला व्यक्ति, जो मनुष्य के कल्याण के लिए काम करता है।
8. वैराग्य - संसार से निराशा या अलिप्तता, जो व्यक्ति को मानसिक शांति और मुक्ति की ओर प्रेरित करती है।
9. जिजीविषा - जीवन की इच्छा, जीवन जीने का जज़्बा।
10. धर्मचार - धार्मिक आचार, धर्म के अनुसार जीवन जीने का तरीका।
11. ध्वस्त - नष्ट या समाप्त, टूट जाना।
12. सनातन - शाश्वत, जो कभी समाप्त न होने वाला हो।
13. अंजोर - उजाला, प्रकाश।
14. दानव - राक्षस या दैत्य, जो नकारात्मक शक्तियों का प्रतीक होते हैं।
15. निर्वासित - देश या स्थान से निष्कासित किया गया व्यक्ति।
16. अर्थहीन - जिसका कोई अर्थ न हो, निरर्थक।

## *2.9 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर*

प्रगति की जाँच

उत्तर: 1. सामन्ती सभ्यता

उत्तर: 2. साम्राटों और सामन्तों

उत्तर: 3. बोझ

उत्तर: 4. झूमता

## 2.10 संदर्भ सूची

1. "आचार्य रामचंद्र शुक्ल: काव्य चिंतन और लोकमंगल", लेखक: डॉ. श्यामसुंदर मिश्रा, प्रकाशक: साहित्य भारती प्रकाशन, प्रकाशन वर्ष: 2020
2. "हजारी प्रसाद द्विवेदी: कृतित्व और व्यक्तित्व", लेखक: प्रो. रामजी तिवारी, प्रकाशक: लोकभारती प्रकाशन, प्रकाशन वर्ष: 2021
3. "विद्यानिवास मिश्र के निबंध: संवेदनाओं का संसार", लेखक: डॉ. उर्मिला सिंह, प्रकाशक: राजकमल प्रकाशन, प्रकाशन वर्ष: 2020
4. "हरिशंकर परसाई के व्यंग्य: समाज और सत्ता का आईना", लेखक: डॉ. अजय सिंह, प्रकाशक: वाणी प्रकाशन, प्रकाशन वर्ष: 2021
5. "आधुनिक हिंदी निबंध साहित्य", लेखक: डॉ. पुष्पेंद्र चौधरी, प्रकाशक: प्रभात प्रकाशन, प्रकाशन वर्ष: 2022

## 2.11 अभ्यास प्रश्न

**सप्रसंग व्याख्या कीजिए -**

1. मनुष्य के शरीर के जैसे दक्षिण और वाम दो पक्ष हैं वैसे ही उसके हृदय के भी कोमल और कठोर, मधुर और तीक्ष्ण दो पक्ष हैं और बराबर रहेंगे।
2. संघर्षों से मनुष्य ने नयी शक्ति पाई है। हमारे सामने समाज का जो रूप है, वह न जाने कितने ग्रहण और त्याग का रूप है। देश और जाति की विशुद्ध संस्कृति केवल बात की बात है। सब कुछ में मिलावट है, सब कुछ अविशुद्ध है।
3. राम भीगें तो भीगें, राम के उत्कर्ष की कल्पना न भीगे, वह हर बारिश में हर दुर्दिन में सुरक्षित रहे। नर के रूप में लीला करने वाले नारायण निर्वासन की व्यवस्था झेलें, पर नर रूप में उनकी ईश्वरता का बोध दमकता रहे, की पानी की बूँदों की झालर में उसकी दीप्ति छिपने न पाये।

4. जिसे देवता समझ बैठा था, वह तो आदमी निकला। मैंने अपनी आत्मा से पूछा, 'हे मेरी आत्मा, तू ही बता! क्या गाली खाकर बदनामी करवाकर मैं ईमानदार बना रहूँ ?' आत्मा ने जवाब दिया, 'नहीं, ऐसी कोई जरूरत नही है।

# इकाई - 3
# निर्धारित कहानियाँ - I

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 उसने कहा था
3.4 पूस की रात
3.5 गुण्डा
3.6 सार संक्षेप
3.7 मुख्य शब्द
3.8 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर
3.9 संदर्भ सूची
3.10 अभ्यास प्रश्न

## *3.1 प्रस्तावना*

इस इकाई में तीन विशिष्ट हिंदी कथाओं का गहन अध्ययन है, जो साहित्यिक दृष्टि के साथ-साथ सामाजिक और मानवीय मूल्यों को उजागर करती हैं। प्रेमचंद की *'पूस की रात'* में किसान की कठिन जीवनशैली, उसकी समस्याओं और संघर्षों का मार्मिक चित्रण मिलता है, जिससे भारतीय ग्रामीण समाज की वास्तविकता और किसानों की असहाय स्थिति को समझा जा सकता है। चंद्रधर शर्मा की *'उसने कहा था'* में प्रेम और कर्तव्य का गहन संघर्ष और आत्मबलिदान की भावना उभरती है, जो मानवीय संवेदनाओं और कर्तव्यनिष्ठा की महत्ता को रेखांकित करती है। जयशंकर प्रसाद की *'गुंडा'* उनकी विशिष्ट भाषा शैली और सामाजिक सुधार की दृष्टि को सामने लाती है। यह कहानी साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण होने के साथ समाज के विविध पहलुओं को भी उजागर करती है। इस

इकाई का अध्ययन साहित्य के गहरे अर्थों और समाज एवं मानवीय संवेदनाओं की विविधता को समझने का नया दृष्टिकोण प्रदान करता है।

## 3.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- हिंदी साहित्य की प्रसिद्ध कहानियों के माध्यम से समाज और मानवीय संवेदनाओं के विभिन्न पहलुओं को गहराई से।
- प्रेमचंद की कहानी **'पूस की रात'** के माध्यम से किसानों की दयनीय स्थिति, उनके संघर्ष और सामाजिक अन्याय की वास्तविकता को।
- चंद्रधर शर्मा की कहानी **'उसने कहा था'** के अध्ययन से प्रेम और कर्तव्य की महानता, त्याग, तथा मानवीय संबंधों की गहराई को।
- जयशंकर प्रसाद की कहानी **'गुंडा'** के माध्यम से उनकी विशिष्ट भाषा-शैली, कथा-विन्यास और समाज सुधार के प्रति उनके दृष्टिकोण को।

## 3.3 उसने कहा था

(1) "मृत्यु के कुछ समय पहले स्मृति बहुत साफ हो जाती है। जन्म भर की घटनाएं एक-एक करके सामने आती हैं। सारे दृश्यों के रंग साफ होते हैं, समय की धुंध ऊपर से बिल्कुल हट जाती।"

संदर्भ- प्रस्तुत पंक्तियां चंद्रधर शर्मा गुलेरी संकलित कहानी "उसने कहा था" से ली गई है। लहनासिंह का मृत्यु समय निकट है। इस समय उसकी स्मृति में पूर्व जीवन की सभी घटनाएं आ रही हैं। प्रस्तुत पंक्तियों में कहानीकार इसी तत्व को पल्लवित कर रहा है।

व्याख्या- जीवन के अंतिम क्षणों में मनुष्य के समक्ष उसके जीवन की सभी घटनाएं आ जाती है। उनकी स्मृति साफ हो जाती है। जीवन के सारे दृश्य उसे स्पष्ट दिखाई देने लगते हैं। जिस प्रकार शीशे पर से धूल हट जाने से स्पष्ट दिखाई देने लगता है, उसी तरह से अंतिम समय में कर्म और

संघर्ष की धूल मनुष्य की आँखों से हट जाती है और उसे अपने जीवन की विगत घटनाएं चलचित्र की भांति दिखाई देने लगती है-लहना के सामने अमृतसर में लड़की से भेंट, सूबेदारनी
द्वारा लहना से सूबेदार एवं वजीरसिह की रक्षा का वचन इत्यादि समस्त घटनाएं याद आ जाती हैं।

विशेष- खड़ी बोली, व्यंजना शब्द शक्ति। मनोवैज्ञानिक सत्य की मीमांसा है।

(2) "क्या मजाल है कि 'जी' और 'साहब' बिना सुने किसी को हटना पड़े। यह बात नहीं कि उनकी जीभ चलती ही नहीं है पर मीठी छुरी की तरह महीन मार करती हुई। यदि कोई बुढ़िया बार-बार चितौनी देने पर भी लीक से नहीं हटती तो उनकी वचनावली के यह नमूने हैं-हट जा जीणे जोगिए हट जा करमा वालिए।"

प्रसंग- प्रस्तुत पंक्तियाँ चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' की प्रसिद्ध कथा 'उसने कहा था', से उद्धृत हैं जिनमें अमृतसर के उन ताँगों वालों की मानसिकता व्यंजित है जो आगे से पैदल यात्रियों को हटाने हेतु मधुर शब्दावली का प्रयोग करते हैं-

व्याख्या- कहानीकार ने स्पष्ट किया है जिनकी पीठ इक्के गाड़ी वालों की जबान का चाबुक सहते-सहते छिल गयी है, उन्हें अमृतसर के बम्बकार्ट वालों की जवान का मरहम अवश्य लगाना चाहिए। उनका उच्चारण मधुर होता ही है, साथ ही जी और साहब सम्बोधन भी उनकी भाषा में समाहित रहता है और इन्हीं शब्दों के साथ प्रार्थना करते हुए लोगों को हटाया जाता है। ऐसा नहीं है कि उनको सामने से हटाने के कठोर तरीके नहीं आते जैसा अन्यत्र होता है, उन उनकी जीभ बड़ी मधुर चलती है, जो मानो मीठी छुरी की सी मार करती है और बड़ी महीन मार भी करती है। उदाहरण के लिए यदि कोई बुढ़िया बार-बार चेतावनी के बाद भी सामने से नहीं हट पाती है तो वह बड़े मीठे शब्दों में उच्चारण करते हैं-हे भाई तू अभी जीने योग्य है, अतः सामने से हट जा। तेरे कर्म, (भाग्य) बड़ा अच्छा है, जरा हट जा। इसी प्रकार की वचनावली से वे अपनी शालीनता का परिचय देते हैं।

विशेष (1) वातावरण की स्थिति व्यंजित है। (2) भाषा बड़ी प्रभावी है।

(3) "जैसा मैं जानता ही न होऊँ। रात-भर तुम अपने दोनों कम्बल उसे उढ़ाते हो और आप सिंगड़ी के सहारे गुजर करते हो। उसके पहरे पर आप पहरा दे आते

हो। अपने सूखे लकड़ी के तख्ते पर उसे सुलाते हो, आप कीचड़ में पड़े रहते हो। कहीं तुम न माँद पड़ जाना। जाड़ा क्या मौत है और निमोनिया में मरने वालों को मुरब्बे नहीं मिला करते हैं।"

प्रसंग- लहनासिंह और बजीरासिंह की बात हो रही है, पलटन खाइयों में जमी है और युद्ध जारी है उसी समय बजीरासिह पूछता है, अब बोधासिंह कैसा है। लहना कहता है 'अच्छा है' तब बजीरासिह कहता है।

व्याख्या- बजीरासिंह कहता है, शायद तुम यह जानते होंगे कि मुझे कुछ भी पता नहीं है, मैं सब कुछ जानता हूँ कि तुम बोधा की कितनी सेवा करते हो, रात भर तुम अपने दोनों कम्बल उसे ही उढ़ा देते हो और स्वयं सिगड़ी के पास बैठकर रात काट देते हो इतना ही नहीं उसके पहरे पर भी स्वयं चले जाते हो और पहरा दे आते हो। अपने सूखे तख्ते पर उसको सुला देते हो और स्वयं कीचड़ में ही पड़े रहते हो यह सब करके कहीं तुम बीमार तो नहीं पड़ जाओगे, जाड़ा कितना भीषण है जिसमें निमोनिया हो जाने की पूरी सम्भावना है। शायद तुमको यह नहीं मालूम कि निमोनिया से मरने वालों को उचित स्थान भी प्राप्त नहीं होता है।

साहित्यिक वैशिष्ट्य (1) कहानी का मुख्य कथ्य है 'उसने कहा था' अर्थात् सूबेदारनी ने प्रार्थना की थी कि उसके सुहाग और पुत्र की रक्षा करना- शायद लहनासिह यही फर्ज निभा रहा है। (2) लहना की पर सेवा की भावना भी व्यंजित है। (3) भाषा बड़ी सहज, सरल है। (4) शैली भावात्मक है।

(4) "अब दोनों जाते हैं। मेरे भाग! तुम्हें याद है एक दिन टाँगे वाले का घोड़ा दही वाले की दूकान के पास बिगड़ गया था। तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाये थे। आप घोड़े की लातों में चले गये थे और मुझे उठाकर दूकान के तख्ते पर खड़ा कर दिया था। ऐसे ही इन दोनों को बचाना। यही मेरी भिक्षा है। तुम्हारे आगे मैं आँचल पसारती हूँ।"

प्रसंग- लहनासिंह पलटन में था, छुट्टी पर गाँव गया, मार्ग में सूबेदार हजारासिंह के गाँव आया। वहाँ उसे बताया गया कि सूबेदारनी बुला रही है। यह सूबेदारनी लहनासिंह की पूर्व परिचित थी, बचपन की परिचित थी। आज वह कह रही है-

व्याख्या- सूबेदारनी ने बताया मेरा पति और बेटा दोनों रणक्षेत्र में जा रहे हैं जहाँ तुम भी हो। यही दोनों मेरे भाग्य हैं, मेरे सर्वस्व है, तुम्हें याद होना चाहिए कि बचपन में एक बार जब हम तुम दोनों ही बाजार में थे, सहसा ताँगे वाले का घोड़ा दही वाले की दुकान पर बिगड़ गया था, उस समय तुमने मेरी रक्षा की थी, मेरे प्राण बचाये थे और अपने प्राणों का मोह त्याग कर यह सब किया था, आप तो घोड़े की टाँगों के नीचे आ गये थे और मुझे उठाकर दूकान के तख्ते पर खड़ा कर दिया था। मेरी प्रार्थना है, इसी प्रकार इन दोनों की रक्षा करना, मैं तुम्हारे आगे आँचल फैलाकर अपने सुहाग और पुत्र के प्राणों की रक्षा की भीख माँग रही हूँ।

साहित्यिक वैशिष्ट्य (1) यह पंक्तियाँ पूर्व दीप्ति के आधार पर रची गयी हैं। लहनासिंह अपनी मृत्यु से पूर्व स्थितियों पर विचार कर रहा है। (2) भावात्मक और कर्तव्यपरायणता इन पंक्तियों की सविशेष विशेषता है। (3) भाषा सहज स्वाभाविक है। (4) शौर्य, पराक्रम की गहरी व्यंजना हुई है।

स्वप्रगति परिक्षण

1. "जन्म भर की घटनाएं एक-एक करके सामने आती हैं। सारे दृश्यों के रंग साफ होते हैं, _________."
2. "कहानी में लहना का _________ सेवा की भावना प्रकट होती है।"
3. "सूबेदारनी ने लहना से _________ की कि उसके पति और बेटे की रक्षा की जाए।"

## *3.4 पूस की रात*

(1) "कुत्ते की देह से न जाने कैसी दुर्गन्ध आ रही थी, पर वह उसे अपनी गोद में चिपटाये हुये ऐसे सुख का अनुभव कर रहा था, जो इधर महीनों से उसे न मिला था। जबरा शायद समझ रहा था कि स्वर्ग यही है और हलकू की पवित्र आत्मा में तो उस कुत्ते के प्रति घृणा की गंध तक न थी। अपने किसी अभिन्न मित्र या भाई को भी वह इतनी ही तत्परता से गले लगाता।"

संदर्भ एवं प्रसंग- प्रस्तुत गद्यावतरण हिन्दी कहानी को समृद्ध बनाने वाले, किसानों और मजदूरों की पीड़ा को कहानी के माध्यम से व्यक्त करने वाले, आदर्शोन्मुख, यथार्थवादी कहानीकार श्री प्रेमचंदजी द्वारा लिखित "पूस की रात" कहानी से अवतरित किया गया है।

पूस की कंपाने वाली रात में हलकू अपने कुत्ते जबरा के साथ खेत की रखवाली हेतु गया है। पूस की शीत उसके शरीर और हड्डियों में प्रवेश कर रही है। इस शीत से बचने के लिए हलकू पहले तो चिलम पीता है लेकिन जब चिलम से भी जाड़ा नहीं जाता तो वह अपने प्रिय कुत्ते जबरा को अपनी गोद में सुला लेता है।.

व्याख्या - कहानीकार कहता है कि जबरा के शरीर से दुर्गन्ध आ रही थी लेकिन उसे अपनी गोद में लिटाते हुए हलकू स्वर्गीय आनन्द का अनुभव कर रहा था। वह जिस सुख का अनुभव कर रहा था वह सुख तो ख तो उसे महीनों से प्राप्त नहीं हुआ था। जबरा यह समझ रहा था कि इससे बड़ा सुख और क्या हो सकता है? उसके लिए यही स्वर्ग का सुख था। इस असामान्य अवस्था में हलकू की आत्मा पवित्रता के उच्चतम शिखर पर पहुँच गई थी। उसके मन में उस कुत्ते के लिए किसी प्रकार का घृणाभाव नहीं था। हलकू ने उतने ही प्रेम और आत्मीयता से जबरा को अपनी गोद में सुलाया जितनी आत्मीयता से वह अपने किसी भाई या अपने अभिन्न मित्र को गले लगाता। हलकू की आत्मा का विस्तार हो चुका था। कुत्ते जैसे सामान्य जीव के साथ हुई मित्रता के कारण उसकी आत्मा के समस्त द्वार खुल चुके थे और उसकी आत्मा का प्रत्येक अणु प्रकाशित होने लगा था।

विशेष - (1) यहाँ हलकू के चरित्र का उज्जवल पक्ष अभिव्यक्त हो रहा है। (2) भाषा सरल, सहज और भावानुकूल है। (3) चित्रात्मक शैली है।

(2) कर चुके दूसरा उपाय ! जरा सुनूँ तो कौन उपाय करोगे? कोई खैरात दे देगा कम्बल ? न जाने कितना बाकी है जो किसी तरह चुकने में ही नहीं आती। मैं तो कहती हूँ तुम क्यों नहीं खेती छोड़ देते ? मर-मर काम करो, उपज हो तो बाकी दे दो, चलो छुट्टी हुई। बाकी चुकाने के लिए ही तो हमारा जन्म हुआ है। पेट के लिए मजूरी करो। ऐसी खेती से बाज आये।

प्रसंग- प्रस्तुत पंक्तियाँ प्रेमचन्द द्वारा रचित 'पूस की रात' कहानी से अवतरित हैं। इन पंक्तियों को कहने वाली मुन्नी है जो अपने पति हल्कू को सम्बोधित करके कह रही है। हल्कू ने मजदूरी करके किसी तरह तीन रुपये जोड़े थे ताकि माघ-पूस की रात में खेत की रखवाली करते समय वह कम्बल ओढ़कर सदर्दी से अपना बचाव कर सके। परन्तु उसने सहना से कर्जा ले रखा है तथा एक सुबह सहना हल्कू के घर आकर अपना ऋण माँगता है तब उसकी घुड़कियों व गालियों से भयभीत होकर हल्कू अपनी पत्नी मुन्नी से जोड़े हुए तीन रुपये देने के लिए कहता है। इसके साथ ही वह कहता है कि वह शीघ्र हो कम्बल के लिए दूसरा कोई उपाय सोचेगा।

व्याख्या- पति हल्कू के मुख से यह सुनकर की वह कम्बल के लिए कोई दूसरा उपाय सोचेगा, मुन्नी घर की परिस्थिति से परिचित होने के कारण क्रोध में भरकर पति से कहती है कि अब तो तुम कर चुके दूसरा उपाय। अर्थात् यदि तुमने ये पैसे दे दिये तो तुम कम्बल ही नहीं खरीद पाओगे। वह कहती है कि मुझे भी तो बताओ वह कौनसा दूसरा उपाय है जिससे तुम कम्बल खरीद लोगे। क्या कोई व्यक्ति तुम्हें मुफ्त अथवा दान में एक कम्बल दे देगा ?

इसके पश्चात् वह अपने शोषण के संदर्भ में कहती है कि न जाने इन महाजनों, ऋणदाताओं आदि का कितना ऋण बाकी बचा हुआ है कि साल-दर-साल हम अपनी फसल व मजदूरी से मिले धन को भी उन्हें सौंपते आ रहे हैं फिर भी उनका कर्जा उतरता ही नहीं है। कहने का अभिप्राय यह है कि महाजन इन अनपढ़ किसानों का सूद के नाम पर निरंतर शोषण करते रहते हैं और किसान

जीवन भर अपने मूल का सूद चुकाने में लगा रहता है जबकि मूल ज्यों का त्यों रहता है।

इस ऋण-चक्र से बाहर निकलने में स्वयं को असमर्थ पाकर मुन्नी हल्कू हल्कू से कहती है तुम्हें यह खेती अब छोड़ देनी चाहिए क्योंकि हम वर्ष-भर तो खेत में मेहनत करते हैं और जब फसल बिकती है तो उधार देने में ही वह राशि चली जाती है और अब फिर से ऋण लेकर खेती करो । इस तरह से तो यह लगता है कि हमारा जन्म ही इस ऋण को चुकाने के लिए हुआ है। साल भर की कमाई ऋण चुकाने में चली जाती है तथा पेट भरने के लिए मजदूरी करनी पड़ती है। ऐसी खेती से तो दूर रहना ही अच्छा है।

विशेष (1) मुन्नी के इस कथन में छोटे किसानों के शोषण की प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। (2) पात्रानुकूल संवाद है जिसमें जनम, मजूरी, आदि शब्दों को अशुद्ध प्रयोग हुआ है। (3) अभिधा शब्द शक्ति है। (4) प्रसाद गुण का समावेश है। (5) मुहावरे (बाज आना) का सार्थक प्रयोग हुआ है। (6) प्रचलित विदेशज शब्दों जैसे खैरात, बाज (अरबी) आदि का प्रयोग हुआ है। (7) सरल, सहज, भावानुकूल भाषा है।

(3) जबरा समझ रहा था कि स्वर्ग यहीं हैं और हल्कू की पवित्र आत्मा में तो उस कुत्ते के प्रति घृणा की गंध तक न थी। अपने किसी अभिन्न मित्र या भाई को भी वह इतनी ही तत्परता से गले लगाता। वह अपनी दीनता से आहत न था; जिसने आज उसे इस दशा में पहुँचा दिया। नहीं, इस अनोखी मैत्री ने जैसे उसकी आत्मा के सब द्वार खोल दिए थे और उसका एक-एक अणु प्रकाश से चमक रहा था।

प्रसंग- प्रस्तुत पंक्तियाँ प्रेमचन्द द्वारा रचित 'पूस की रात' कहानी से अवतरित हैं। इन पंक्तियों से पूर्व कहानीकार यह बता चुका है कि सहना को तीन रुपये दे देने से हल्कू को अब माघ-पूस की रातों में बिना कम्बल के ही खेतों में रखवाली करनी पड़ रही है। हल्कू अपने कुत्ते जबरा के साथ मंडया में लेटा हुआ है परन्तु शीत लहर उसे सोने नहीं देती है। अन्ततः वह जबरा को उठाकर अपने पास गोदी में सुला लेता है। इन पंक्तियों में प्रेमचन्द ने कुत्ते व हल्कू दोनों की मानसिक अवस्थाओं का चित्रण किया है।

व्याख्या- हल्कू ने जब कड़ाके की ठण्ड से बचने के लिए अपनी खाट के नीचे लेटे हुए जबरा को उठाकर अपनी गोदी में ले लिया तब जबरा को तो यह अनुभव हो रहा था कि हल्कू की गोदी में स्वर्ग है। कहने का अभिप्राय यह है कि कुत्ता जबरा अपने मालिक की गोदी में पहुँचकर स्वर्ग-सुख को अनुभव कर रहा था वहीं दूसरी ओर हल्कू की भी आत्मा अत्यन्त निर्मल व पवित्र थी और उसमें कुत्ते के प्रति कोई घृणा भाव विद्यमान न था। उसने जबरा को अपनी छाती से लगाते समय वही आत्मीयता दर्शायी, जो वह अपने ही सगे भाई या गहरे मित्र को अपने गले से लगाते समय दर्शाता। कहानीकार कहता है कि जबरा कुत्ते को अपनी गोदी में लेते समय उसमें अपनी निर्धनता की कोई हीन भावना नहीं थी दूसरे शब्दों में, यह भी कहा जा सकता है कि भले ही हल्कू ने सर्दी से बचने के लिए जबरा को अपनी गोदी में ले लिया था परन्तु इस कार्य से उसके मन में अपनी निर्धनता या हीनता के कारण कोई गलत विचार नहीं आया था जबकि इसी निर्धनता के कारण कम्बल न खरीद सकने के कारण हल्कू को अब कुत्ते के संग सोना पड़ रहा था।

कहानीकार कहता है कि हल्कू व जबरा की इस विचित्र मित्रता ने हल्कू की आत्मा से सभी दुख-सुख, अपने-पराये, ऊँच-नीच, छोटे-बड़े आदि के भाव को समाप्त कर दिया था और उसकी आत्मा का एक-एक अणु दिव्य प्रकाश से जगमगा रहा था। कहने का भाव यह है कि उसकी आत्मा से न केवल ऊँच-नीच का बल्कि मानव-पशु का भी भेद समाप्त हो गया था और उसमें सात्त्वक गुणों का प्रकाश जगमगा रहा था।

विशेष (1) कहानीकार ने कुत्ते व हल्कू दोनों की मानसिक अवस्था का सूक्ष्म अवलोकन करके उसे चित्रित किया है। (2) गद्यांश में मनोवैज्ञानिक तथ्य को आधार बनाकर हल्कू के व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला गया है। (3) यथार्थवादी शैली का प्रयोग हुआ है। (4) अभिधा शब्द शक्ति है। (5) तत्सम शब्दावली का (अभिन्न, अणु आदि) का प्राधान्य है। (6) भाषा प्रवाहमयी है तथा अंतिम पंक्ति में काव्यात्मक भाषा का प्रयोग हुआ है। (7) प्रसाद गुण का समावेश है।

(4) बगीचे में खूब अंधेरा छाया हुआ था और अंधकार में निर्दय पवन पत्तियों को कुचलता हुआ चला जाता था। वृक्षों से ओस की बूँदें टपटप नीचे टपक रही थीं। एकाएक एक झोंका मेहँदी की खुशबू के लिए हुआ आया।

प्रसंग- प्रस्तुत पंक्तियाँ प्रेमचन्द द्वारा रचित 'पूस की रात' कहानी से उधृत हैं। इन पंक्तियों से पूर्व पूस की रात में पुरानी गाढ़े की चादर ओढ़े हल्कू अपनी फसल की रखवाली के लिए खेत की मॅडया पर लेटा हुआ है। वह आठ नौ बार चिलम पी चुका है, जबरा को गोदी में लेकर सोने का प्रयास कर चुका है। परन्तु उसे सदों के कारण नीद नहीं आ रही है। अन्ततः वह थोड़ी-दूरी पर स्थित आम के बाग में नीचे पड़ी सूखी पत्तियों को जलाकर आग तापने के उद्देश्य से वहाँ जाता है। अवतरित पंक्तियों में इसी आम के बाग के दृश्य को चित्रित किया गया है।

व्याख्या- कहानीकार कहता है कि पूस की अंधेरी रात में जब हल्कू आम के बाग में पहुँचा तो उसने देखा कि बगीचा गहरे अंधकार में डूबा हुआ था तथा जाड़ों में चलने वाली शीत लहर सम्भवतः इसी अंधेरे के कारण कुछ न देख पाने के कारण वहाँ पड़ी हुई सूखी पत्तियों को कुचलती हुई आगे बढ़ रही थी। कहने का अभिप्राय यह है कि पूस में चलने वाली शीत लहर इतनी तीव्र गति से बह रही थी कि बगीचे में खड़े आम के पेड़ भी उसे मन्द करने में असमर्थ थे और वह शीत लहर बगीचे में पड़ी पत्तियों को अपने प्रभाव से इधर-उधर कर रही थी। दूसरी ओर ओस वृक्षों के पत्तों पर इकट्ठी होकर बूंद के रूप में लगातार नीचे टपक रही थी। ऐसी स्थिति में अचानक शीत लहर का एक झोंका आया जिसमें मेहँदी के फूलों की महक भरी हुई थी।

अन्तिम पंक्ति का यह अर्थ भी निकाला जा सकता है कि शीत लहर इतनी तेज चल रही थी कि आम के बाग से दूर खड़े मेहँदी पौधों पर खिले फूलों की खुशबू आम के बाग तक आ रही थी।

विशेष- (1) कहानीकार ने पूस की रात व आम के बगीचे के संदर्भ में प्रकृति का प्रभावशाली चित्रण किया है। (2) कहानीकार ने 'पवन' को पुल्लिग माना है जो कि व्याकरणिक दृष्टि से गलत है क्योंकि हिन्दी में 'पवन' को स्वीलिंग माना जाता है। (3) काव्यात्मक भाषा का प्रयोग हुआ है। (4) अभिधा व लक्षणा शब्द

शक्तियाँ विद्यमान हैं। (5) प्रसाद गुण का समावेश है। (6) विदेशज शब्दों जैसे खूब, खुशबू (फारसी) का प्रयोग हुआ है। (7) 'वृक्षों से ओस की बूँदें टपटप नीचे टपक रही थीं' वाक्य में क्रियाशीलता दिखाई देती है।

## *3.5 गुण्डा*

(1) ईसा की अठारहवीं शताब्दी के अंतिम भाग में वही काशी नहीं रह गयी थी, जिसमें उपनिषद् के अजातशत्रु की परिषद् में ब्रह्मविद्या सीखने के लिए विद्वान्, ब्रह्मचारी आते थे। गौतम बुद्ध और शंकराचार्य के धर्म-दर्शन के वाद-विवाद, कई शताब्दियों से लगातार मन्दिरों और मठों के ध्वंस और तपस्वियों के वध के कारण प्रायः बन्द से हो गए थे। यहाँ तक कि पवित्रता और छुआछूत में कट्टर वैष्णव धर्म भी उसी विश्रृंखलता में नवागन्तुक धर्मोन्माद में अपनी असफलता देखकर काशी में अघोर रूप धारण कर रहा था।

प्रसंग- प्रस्तुत गद्यांश जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित 'गुण्डा' से अवतरित है। इन पंक्तियों से पूर्व कहानीकार नन्हकू सिंह के बाह्य-व्यक्तित्व पर प्रकाश डाल चुका है और यह भी बता चुका है कि लोग उसे नगर का गुण्डा कहते हैं। अवतरित पंक्तियों में कहानीकार ने काशीनगर की तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक आदि परिस्थितियों पर प्रकाश डाला है।

व्याख्या- कहानीकार कहता है कि अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक काशी नगर की सामाजिक, धार्मिक आदि परिस्थितियों में अत्यधिक परिवर्तन आ चुका था। इस काल की काशी अब वैसी ही काशी नहीं थी जैसा कि उपनिषदों में बताया गया है कि अजातशत्रु के शासन काल में उसकी परिषद् में दूर-दूर से विद्वान् ब्रह्मचारी ब्रह्मविद्या अर्थात् वेदों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए आया करते थे। कहने का अभिप्राय यह है कि किसी समय काशी के राजा अजातशत्रु की परिषद् में अनेक विद्वान् ब्रह्मविद्या को सीखने के लिए आते थे परन्तु अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक काशी नगरी अब वैसी नहीं रही और यहाँ कोई भी विद्वान् बह्मविद्या सीखने नहीं आता था। किसी समय काशी नगरी में स्थित मंदिरों व मठों में महात्मा बुद्ध और शंकराचार्य द्वारा स्थापित दार्शनिक व धार्मिक सिद्धान्तों पर वाद-विवाद हुआ करते थे परन्तु अनेक शताब्दियों से विदेशी

आक्रमणकारियों व कुछ कट्टर पंथी लोगों द्वारा इन्हीं मन्दिरों, मठों को तोड़े जाने के कारण तथा इन मंदिरों, मठों में धर्म, दर्शन आदि पर वाद-विवाद करने वाले तपस्वियों, चिंतकों, दार्शनिकें आदि का वध किए जाने के कारण अब यहाँ महात्मा बुद्ध व शंकराचार्य के मतों पर वाद-विवाद होने लगभग बंद से हो गए हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि काशी नगरी कभी धर्म, दर्शन आदि विषयों के वाद-विवाद का केन्द्र हुआ करती थी परन्तु अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक ये वाद-विवाद मन्दिरों, मठों के तोड़े जाने व यहाँ पर रहने वाले अनुयायियों की हत्या किए जाने के कारण लगभग समाप्त से हो गए थे।

कहानीकार बताता है कि अठारहवीं शताब्दी के अंत तक काशी नगरी की सामाजिक व धार्मिक परिस्थिति इतनी परिवर्तित हो चुकी थी कि वैष्णव धर्म जो कभी पवित्रता और छुआछूत में गहरी आस्था रखता था, वह अपनी परम्परा, सिद्धान्त आदि की श्रृंखला से अलग होकर, नए-नए आने वाले धर्मों के उन्माद तथा उसके सामने अपने धर्म की असफलता को देखकर, वहीं वैष्णव धर्म अब नरमाँस, मद्य आदि का भक्षण करने व मल, मूत्रादि तक घृणा न करने वाले अघोर रूप में बदलता जा रहा था। कहने का भाव यह है कि पवित्रता और छुआछूत में विश्वास रखने वाला वैष्णव धर्म इसलिए अघोर रूप में परिवर्तित होता जा रहा था, क्योंकि उसके समक्ष आने वाले नए-नए धर्म उसकी असफलता का कारण बनते जा रहे थे। अर्थात् वैष्णव धर्म के अनुयायी दूसरे धर्मों से प्रभावित होते जा रहे थे।

विशेष (1) कहानीकार ने अठारहवीं शताब्दी की काशी नगरी की सामाजिक व धार्मिक परिस्थितियों पर प्रकाश डाला है। (2) तुलनात्मक व वर्णनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है। (3) अभिधा शब्द शक्ति सम्पूर्ण गद्यांश में विद्यमान है। (4) प्रसाद गुण का समावेश है। (5) तत्सम शब्दावली का बाहुल्य है जिसके लिए प्रसाद जी का साहित्य प्रसिद्ध है। (6) भाषा सारगर्भित, प्रभावशाली व विषयानुकूल है।

(2) उसी समय समस्त न्याय और बुद्धिवाद को शस्त्र-बल के सामने झुकते देखकर काशी के विच्छिन्न और निराश नागरिक जीवन ने एक नवीन सम्प्रदाय की सृष्टि की। वीरता जिसका धर्म था। अपनी बात पर मर मिटना,

सिंह-वृत्ति से जीविका ग्रहण करना, प्राण-भिक्षा माँगने वाले कायरों और चोट खाकर गिरे हुए प्रतिद्वन्द्वी पर शस्त्र न उठाना, सताये निर्बलों की सहायता देना और प्रत्येक क्षण प्राणों को हथेली पर लिए घूमना, उनका बाना था। उन्हें लोग काशी में गुण्डा कहते थे।

प्रसंग- प्रस्तुत गद्यांश जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित 'गुण्डा' से उधृत है। इन पंक्तियों से पूर्व कहानीकार नायक नन्हकू सिंह के बाह्य-व्यक्तित्व पर प्रकाश डाल चुका है। प्रस्तुत पंक्तियाँ अठारहवीं शताब्दी युगीन काशी नगरी के सामाजिक, धार्मिक आदि परिस्थितियों के संदर्भ में प्रयुक्त की गई हैं। कहानीकार यह स्पष्ट कर चुका है कि जैसे काशी नगरी राजा अजातशत्रु के काल में ब्रह्मविद्या का केन्द्र थी, धार्मिक व दार्शनिक मतों के वाद-विवाद का केन्द्र थी, अब वही काशी नगरी अघोर रूप धारण करती जा रही थी।

व्याख्या- कहानीकार कहता है कि अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जब भोगी, विलासी, स्वार्थी, चाटुकार राजाओं, राजकर्मचारियों, विदेशी शासकों ने अपने शस्त्र बल पर काशी के विद्वानों, दार्शनिकों, न्यायप्रिय व्यक्तियों को अपने अधीन कर लिया, उस समय अभिजात्य वर्ग, शासक वर्ग आदि से अलग-थलग पड़ चुके उपेक्षित व निराश जनसाधारण ने अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए एक नए सम्प्रदाय की स्थापना की। कहने का अभिप्राय यह है कि काशी नगर के बुद्धिजीवियों, उदारवादियों, न्यायप्रियों को अत्याचारी विदेशी शासकों व उनकी चापलूसी करने वाले राजाओं ने अपने अधीन कर लिया और काशी में अब न्याय आदि का अभाव हो गया था। अतः जनसाधारण ने एक नए सम्प्रदाय को जन्म दिया।

उपेक्षित व समाज के बड़े वर्ग से कटी हुई साधारण जनता ने जिस सम्प्रदाय की स्थापना की उसका धर्म वीरता था। इस सम्प्रदाय के लोगों की कुछ विशेषताएं थीं जैसे वे अपनी बात पर अटल रहते थे और दिया गया वचन पूरा करने के लिए अपने प्राण की परवाह नहीं करते थे। जिस प्रकार सिंह अपना शिकार स्वयं करता है उसी प्रकार इस सम्प्रदाय के लोग अपनी जीविका का उपार्जन करते थे अर्थात् वे दुराचारियों, शोषकों को लूटते थे। वे लोग उन कायरों पर कोई शस्त्र प्रहार नहीं करते थे जो उनसे प्राणों की भीख माँगने लग जाते थे। इस प्रकार

यदि उनका प्रतिद्वन्द्वी चोट खाकर गिर जाता था उस पर भी वे प्रहार नहीं करते थे। इस सम्प्रदाय के लोग शोषकों व धनाढ्य वर्ग द्वारा सताए गए लोगों की सहायता करते थे। इस प्रकार के व्यवहार से उनके अनेक लोग शत्रु बन जाते थे परन्तु वे उनसे भयभीत हुए बिना, अपने जीवन को खतरे में डालकर सदैव निर्भय होकर घूमते थे। कहानीकार कहता है कि इस सम्प्रदाय के लोगों को काशी में गुण्डा कहा जाता था।

कहने का अभिप्राय यह है कि अत्याचारियों, शोषकों, दुराचारियों का विरोध करके, उन्हें लूटकर निर्धनों की सहायता करने वाले और अपने वचन को निभाने के लिए प्राण देने वाले लोगों को समाज का अभिजात्य वर्ग व उनके चापलूस लोग ही गुण्डा कहते थे।

विशेष- (1) कहानीकार ने अठारहवीं शताब्दी युगीन काशी नगरी के देशकाल व सामाजिक स्थिति का चित्रण किया है। (2) अन्तिम दो पंक्तियों में विरोधी-मूलक वैचित्र्य है। (3) सम्पूर्ण गद्यांश में तत्सम व तद्भव शब्दों का अधिक प्रयोग हुआ है। (4) 'प्राणों को हथेली पर लिए घूमना' मुहावरा 'प्राण पर खेलना' मुहावरे का सुन्दर परिवर्तित रूप है तथा उसका सार्थक प्रयोग हुआ है। (5) अभिधा व लक्षणा शब्द शक्ति है। (6) प्रसाद व ओज गुण का समावेश है। (7) वर्णनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है। (8) भाषा भावानुकूल व विषयानुकूल होने पर भी प्रवाहमयी है।

(3) जीवन की किसी अलभ्य अभिलाषा से वंचित होकर जैसे प्रायः लोग विरक्त हो जाते हैं, ठीक उसी तरह किसी मानसिक चोट से घायल होकर एक प्रतिष्ठित जमींदार का पुत्र होने पर भी नन्हकू सिंह गुण्डा हो गया था। दोनों हाथों से उसने सम्पत्ति लुटाई।

प्रसंग- प्रस्तुत गद्यांश जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित 'गुण्डा' कहानी से अवतरित है। इन पंक्तियों से पूर्व कहानीकार यह स्पष्ट कर चुका है कि अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में शासकों, राजकर्मचारियों आदि द्वारा की जाने वाले लूट-खसोट, शोषण, अन्याय, अत्याचार के कारण वहाँ पर एक ऐसे वर्ग का जन्म हुआ जो सिंह-वृत्ति से जीविका ग्रहण करता था, निर्बलों की सहायता करता था, प्राणों की भिक्षा माँगने वाले व गिरे हुए प्रतिद्वन्द्वियों पर शस्त्र नहीं उठाता था परन्तु

काशी में इस वर्ग के लोगों को गुण्डा कहा जाता था। इन पंक्तियों में कहानीकार ने कहानी के नायक नन्हकू सिंह के गुण्डा बनने के कारण पर प्रकाश डाला है।

व्याख्या- कहानीकार कहता है कि इस संसार में जिन लोगों को अपने जीवन में किसी दुर्लभ वस्तु को प्राप्त करने की अभिलाषा नहीं होती है, ऐसे लोग प्रायः इस संसार से विरक्त होकर संन्यासी बन जाते हैं अथवा इस संसार से विरक्त होकर निरुद्देश्य घूमते-फिरते हैं, ठीक उसी प्रकार किसी मनोवेदना के कारण नन्हकू सिंह जो कि एक प्रतिष्ठित जमींदार का पुत्र था, इस संसार से विरक्त होकर गुण्डा बन गया था। कहने का अभिप्राय यह है कि नन्हकू सिह पन्ना से प्रेम करता था और जब काशी के राजा बलवन्त सिंह ने पन्ना को बलात् अपनी रानी बना लिया तब प्रेम में असफल होकर नन्हकू सिह को भी इस संसार से विरक्ति हो गई तथा वह नगर का गुण्डा बन गया। अतः संसार से विरक्त होने के कारण अपनी सारी सम्पत्ति को अनावश्यक खर्चों व कार्यों में लुटा दिया।

विशेष- (1) कहानीकार ने नन्हकू सिंह के गुण्डा बनने के कारण पर प्रकाश डाला है। (2) गद्यांश की प्रथम पंक्ति में मनोवैज्ञानिक तथ्य को सुन्दर उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया गया है। (3) 'दोनों हाथों से सम्पत्ति लुटाना' मुहावरे का सार्थक प्रयोग हुआ है। (4) अभिधा व लक्षणा शब्द शक्ति है। (5) प्रसाद गुण का समावेश है। (6) तत्सम व तद्भव शब्दों का प्रयोग हुआ है। (7) प्रवाहमयी भाषा है।

(4) यह झूठ है। बाबू साहब के ऐसा धर्मात्मा तो कोई है ही नहीं। कितनी विधवाएं उसकी दी हुई धोती से अपना तन ढँकती हैं। कितनी लड़कियों की ब्याज शादी होती है। कितने सताये हुए लोगों की उनके द्वारा रक्षा होती है।

प्रसंग- प्रस्तुत गद्यांश जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित 'गुण्डा' कहानी से अवतरित है। इन पंक्तियों से पूर्व काशी की प्रसिद्ध वेश्या दुलारी को राजमाता पन्ना अपने राजमंदिर में बुलवाती है। वहाँ पर राजमाता पन्ना के समक्ष दुलारी कुबरा मौलवी व नन्हकू सिंह के मध्य घटित हुई घटना का वर्णन करती है, तब राजमाता नन्हकू सिंह के बारे में पूछती है। यह जानने पर कि नन्हकू सिंह जमींदार निरंजन सिंह का वही बेटा है जिसने कई वर्ष पहले यवती पन्ना को हाथी से बचाया था। उस प्रसंग को याद कर राजमाता के मुख का रंग उड़ जाता है तब

उनकी दासी गेंदा नन्हकू सिंह को डाकू कहकर उस पर अनेक आरोप लगाती है। अवतरित पंक्तियों में दुलारी गेंदा की बात का विरोध करती हुई राजमाता के समक्ष सच्चाई प्रकट करती है।

व्याख्या- राजमाता पन्ना की मुँह लगी दासी गेंदा द्वारा नन्हकू सिंह को डाकू कहे जाने पर वेश्या दुलारी उसका विरोध करते हुए कहती है कि गेंदा जो कुछ कह रही है वह झूठ है। अर्थात् न तो नन्हकू सिंह कोई डाकू है और न ही वह किसी की हत्या करता है। दुलारी कहती है बाबू नन्हकू सिंह जैसा धर्मात्मा व्यक्ति तो इस दुनिया में दूसरा कोई हो ही नहीं सकता। वह नगर की उन विधवाओं की सहायता करता है तथा उन्हें वस्त्रादि भेंट करता है जिन विधवाओं को उसके परिवार वाले व सगे-सम्बन्धी ही घर से बेघर कर देते हैं तथा उसे असहाय छोड़ देते हैं। नन्हकू सिह निर्धन परिवार की लड़कियों की शादी का खर्चा स्वयं उठाता है। अर्थात् वह निर्धन लड़कियों का अभिभावक बनकर उनका घर बसाता है। इतना ही नहीं, वह समाज के शोषितों के लिए नन्हकू सिंह गुण्डा नहीं है बल्कि वह तो धर्मात्मा है।

विशेष- (1) दुलारी के माध्यम से कहानीकार ने नन्हकू सिह की चारित्रिक विशेषताओं पर प्रकाश डाला है।(2) वर्णनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।(3) अभिधा शब्द शक्ति का प्रयोग हुआ है।(4) ओज गुण का समावेश है।(5) तत्सम (रक्षा, धर्मात्मा), देशज (धोती, ब्याह) के साथ-साथ विदेशज (साहब) शब्द का प्रयोग हुआ है।(6) भाषा पात्रानुकूल, विषयानुकूल एवं सरल, सुबोध है।

## *3.6 सार संक्षेप*

इस इकाई में तीन विशिष्ट हिंदी कथाओं का गहन अध्ययन है, जो साहित्यिक दृष्टि के साथ-साथ सामाजिक और मानवीय मूल्यों को उजागर करती हैं। प्रेमचंद की 'पूस की रात' में किसान की कठिन जीवनशैली, उसकी समस्याओं और संघर्षों का मार्मिक चित्रण मिलता है, जिससे भारतीय ग्रामीण समाज की वास्तविकता और किसानों की असहाय स्थिति को समझा जा सकता है। चंद्रधर शर्मा की

'उसने कहा था' में प्रेम और कर्तव्य का गहन संघर्ष और आत्मबलिदान की भावना उभरती है, जो मानवीय संवेदनाओं और कर्तव्यनिष्ठा की महत्ता को रेखांकित करती है।

जयशंकर प्रसाद की 'गुंडा' उनकी विशिष्ट भाषा शैली और सामाजिक सुधार की दृष्टि को सामने लाती है। यह कहानी साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण होने के साथ समाज के विविध पहलुओं को भी उजागर करती है। इस इकाई का अध्ययन साहित्य के गहरे अर्थों और समाज एवं मानवीय संवेदनाओं की विविधता को समझने का नया दृष्टिकोण प्रदान करता है।

## *3.7 मुख्य शब्द*

1. उच्चतम - सबसे ऊँचा, सर्वोच्च, सर्वोत्तम।
2. सर्वस्व - सब कुछ, सम्पूर्ण संपत्ति या अस्तित्व।
3. स्मृति - याद, यादें, वह क्षमता जिससे हम अतीत की घटनाओं को याद रखते हैं।
4. आत्मियता - स्नेह, घनिष्ठता, एक-दूसरे के प्रति सच्चा प्यार और सान्निध्य।
5. कट्टरपंथी - एक निश्चित विश्वास, सिद्धांत या विचारधारा में अत्यधिक प्रतिबद्ध व्यक्ति।
6. उपनिशद - हिंदू धर्म का एक महत्वपूर्ण ग्रंथ, जिसमें ज्ञान, योग, और जीवन के उद्देश्य पर विचार किया गया है।
7. अभिलाशा - इच्छाशक्ति, कोई विशेष उद्देश्य या लक्ष्य प्राप्त करने की तीव्र इच्छा।
8. शस्त्रप्रहार - शस्त्र (हथियार) से हमला, युद्ध में हथियारों का प्रयोग।

9. धर्मात्मा - धर्म का पालन करने वाला व्यक्ति, जो धार्मिक और नैतिक रूप से सजग होता है।
10. अद्भूत - अत्यंत अद्भुत या चमत्कारी, जो आश्चर्यजनक हो।

## *3.8 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर*

प्रगति की जाँच

उत्तर: 1. समय की धुंध ऊपर से बिल्कुल हट जाती है।

उत्तर: 2. महान

उत्तर: 3. उम्मीद

## *3.9 संदर्भ सूची*

1. उसने कहा था पर समीक्षात्मक अध्ययन, लेखक: डॉ. शहाबुद्दीन, माणिक प्रकाशन, 2021
2. सदी की चुनी हुई कहानियाँ: यथार्थ और संवेदना, संपादक: विनोद कुमार, वाणी प्रकाशन, 2023
3. जयशंकर प्रसाद की कथा-शैली, लेखक: डॉ. अनीता त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन, 2020
4. हिंदी कहानी वाया आलोचना, संपादक: नीरज खरे, लोकभारती प्रकाशन, 2022

## 3.10 अभ्यास प्रश्न

**सप्रसंग व्याख्या कीजिए -**

1. मृत्यु के कुछ समय पहले स्मृति बहुत साफ हो जाती है। जन्म भर की घटनाएं एक-एक करके सामने आती हैं। सारे दृश्यों के रंग साफ होते हैं, समय की धुंध ऊपर से बिल्कुल हट जाती।
2. अपने किसी अभिन्न मित्र या भाई को भी वह इतनी ही तत्परता से गले लगाता। वह अपनी दीनता से आहत न था; जिसने आज उसे इस दशा में पहुँचा दिया।
3. जीवन की किसी अलभ्य अभिलाषा से वंचित होकर जैसे प्रायः लोग विरक्त हो जाते हैं, ठीक उसी तरह किसी मानसिक चोट से घायल होकर एक प्रतिष्ठित जमींदार का पुत्र होने पर भी नन्हकू सिंह गुण्डा हो गया था। दोनों हाथों से उसने सम्पत्ति लुटाई।

# इकाई - 4
# निर्धारित कहानियाँ - II

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 राजा निरबंसिया
4.4 सिक्का बदल गया
4.5 अपना-अपना भाग्य
4.6 सार संक्षेप
4.7 मुख्य शब्द
4.8 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर
4.9 संदर्भ सूची
4.10 अभ्यास प्रश्न

## *4.1 प्रस्तावना*

कमलेश्वर की प्रसिद्ध कहानी "राजा निरबंसिया" मध्यवर्गीय जीवन के जटिलता और मानवीय रिश्तों की गहरी समझ प्रदान करती है। यह कथा रिश्तों, विश्वास, धोखे और मानवीय इच्छाओं के बीच के जटिल बंधन को उजागर करती है। इसमें हम देखते हैं कि कैसे परिवार और सामाजिक अपेक्षाओं के बीच संतुलन बनाना मुश्किल हो जाता है।कृष्णा सोबती की कहानी "सिक्का बदल गया" भारत-पाक विभाजन की त्रासदी को और इसके प्रभाव को बहुत गहरे तरीके से प्रस्तुत करती है। यह कहानी न केवल विभाजन के समय के सामाजिक और मानसिक तनावों का चित्रण करती है, बल्कि यह भी दिखाती है कि किस तरह ऐसे कठिन समय में व्यक्तिगत और पारिवारिक संबंधों में भी बदलाव आ जाता है। शाहनी, जो इस कहानी की प्रमुख पात्र हैं, अपने अतीत और वर्तमान के बीच झूलती हुई नज़र आती हैं।कहानी "अपना-अपना भाग्य" में जैनेन्द्र कुमार ने एक छोटे पहाड़ी

लड़के के जीवन की कठिनाइयों और उसकी संघर्षों को बड़े ही संवेदनशील और गहरे तरीके से प्रस्तुत किया है। यह कहानी न केवल उस लड़के के जीवन के दर्दनाक पहलुओं का वर्णन करती है, बल्कि यह हमें समाज के दोहरे मापदंडों और वर्ग भेदभाव की भी एक झलक देती है। लेखक ने नैनीताल की संध्या का चित्रण करते हुए उस प्राकृतिक वातावरण को जोड़ते हुए कहानी के भावनात्मक प्रभाव को बढ़ाया है।

## *4.2 उद्देश्य*

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- 'राजा निरबंसिया' के माध्यम से मध्यवर्गीय जीवन की जटिलताओं और रिश्तों के बीच विश्वास और धोखे के खेल को।
- 'सिक्का बदल गया' के अध्ययन से भारत-पाक विभाजन की त्रासदी और उसके पारिवारिक तथा मानसिक प्रभावों को गहरे तरीके से।
- 'अपना-अपना भाग्य' के माध्यम से छोटे पहाड़ी लड़के की संघर्षपूर्ण ज़िन्दगी को संवेदनशीलता से चित्रित करने के साथ-साथ समाज के दोहरे मापदंड और वर्ग भेदभाव की समस्या को।
- इन कहानियों का अध्ययन करने के बाद, आप न केवल परिवार और समाज के बीच संतुलन बनाने की कठिनाइयों को समझ पाएंगे, बल्कि विभाजन के बाद उत्पन्न तनावों और असमानताओं के प्रभावों को भी महसूस करेंगे

## *4.3 राजा निरबंसिया*

(1) औलाद ही तो वह स्नेह की धुरी है, जो आदमी औरत के पहियों को साधकर तन के दलदल से पार ले जाती है... नहीं तो हर औरत वेश्या है और हर आदमी वासना का कीड़ा।

संदर्भ- प्रस्तुत गद्य पंक्तियां कमलेश्वर की प्रसिद्ध कहानी "राजा निरबंसिया" से अवतरित हैं। यह कथा मध्यमवर्गीय जीवन के पक्ष को प्रकट करने वाली है। चंदा को जब बचनसिह से अवैध गर्भ ठहर गया तो वह अपने मायके चली गई। एक दिन सुनने में आया कि वह जगपती को छोड़कर किसी और के संग बैठने वाली है। जगपती को उसने पुत्र प्राप्ति का समाचार भी नहीं दिया। इसी तारतम्य में आते-जाते विचारों को यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

व्याख्या- जगपती यह समाचार पाकर कि चंदा ने एक पुत्र को जन्म दिया है तथा उसे खबर तक नहीं दी है तो वह सोचने लगता है कि संतान ही तो पति-पत्नी के बीच स्नेह की धुरी के रूप में कार्य करती है, जिसके सहारे स्त्री-पुरुष दोनों जीवन नैया पार कर लेते हैं, संतान के होने पर जीवन का उद्देश्य परिवर्तित हो जाता है, पति-पत्नी के बीच शारीरिक संबंधों की बात गौण हो जाती है अगर संतान न हो तो हर औरत एक वेश्या के समान व्यवहार करेगी अर्थात् उस स्थिति में सिर्फ शारीरिक संबंध ही जीवन का उद्देश्य रह जायेगे तथा आदमी केवल वासना का कीड़ा बनकर रह जायेगा।

(2) "रानी अपने कुल देवता के मंदिर में पहुँची", माँ सुनाया करती थीं, "अपने सतीत्व को सिद्ध करने के लिए उन्होंने घोर तपस्या की। राजा देखते रहे। कुल देवता प्रसन्न हुए और उन्होंने अपनी दैवी शक्ति से दोनों बालकों को तत्काल जन्मे शिशुओं में बदल दिया। रानी की छातियों में दूध भर आया, उनमें से धार फूट पड़ी, जो शिशुओं के मुंह में गिरने लगी। राजा को रानी के सतीत्व का सबूत मिल गया। उन्होंने रानी के चरण पकड़ लिए और कहा कि तुम देवी हो ! ये मेरे पुत्र हैं। और उस दिन से राजा ने फिर से राजकाज संभाल लिया...."

संदर्भ- प्रस्तुत अवतरण हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक कमलेश्वर द्वारा लिखित 'राजा निरबंसिया' से अवतरित है।

प्रसंग- प्रस्तुत पंक्तियों में स्पष्ट किया गया है कि जब राजा परदेश चले गये थे तो उनकी रानी ने दो बच्चों को जन्म दिया, लेकिन राजा को शक हुआ कि यह बच्चे उसके अपने नहीं है। इसी बात को सच साबित करने के लिए रानी कुल-देवता के मंदिर जा पहुँची।

व्याख्या- माँ ने कहानी को आगे बढ़ाते हुए बताया कि जब राजा धन कमाने हेतु परदेश गया था तो उसके जाने के बाद उनकी रानी ने दो शिशुओं को जन्म दिया किन्तु राजा ने रानी पर शक किया और उन बालकों को अपना नहीं समझा। रानी यह सब देखकर विचलित हो गयी और अपना सतीत्व सिद्ध करने के लिए कुल देवता के मंदिर में पहुंची तथा उसने कुलदेवता की कठोर तपस्या की। राजा यह सब देखते रहे। रानी की कठोर तपस्या तथा सच्चाई को देखकर कुलदेवता प्रसन्न हुए और उन्होंने अपनी दैवीय शक्ति से दोनों बालकों को हाल के पैदा हुए बच्चे के बराबर कर दिया। रानी की छातियों में दूध भर गया, उनमें दूध भरकर बहने लगा तथा स्वयं बच्चों के मुंह में गिरने लगा। यह सब देखकर राजा आश्चर्यचकित हो गया और उसे रानी के सतीत्व का सच्चा सबूत भी प्राप्त हो गया। उन्होंने तुरंत गिरकर रानी के पैर पकड़ लिए और क्षमा याचना की। फिर अपनी गलती का एहसास करते हुए राजा कहने लगे-रानी असल में ये मेरे ही पुत्र हैं, मैंने व्यर्थ ही तुम पर शक किया। इस तरह राजा ने फिर से अपनी राज-काज की व्यवस्था संभाल ली।

(3) "कानून को उसने लिखा था-किसी ने मुझे मारा नहीं है..... किसी आदमी ने नहीं। मैं जानता हूं कि मेरे जहर की पहचान करने के लिए मेरा सीना चीरा जाएगा। उसमें जहर है। मैंने अफीम नहीं, रुपये खाये हैं, उन रुपयों में कर्ज का जहर था, उसी ने मुझे मारा है। मेरी लाश तब तक न जलाई जाये, जब तक चंदा बच्चे को लेकर न आ जाये। आग बच्चे से दिलवाई जाये। बस।"

संदर्भ- प्रस्तुत अवतरण हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक कमलेश्वर द्वारा लिखित 'राजा निरबंसिया' से अवतरित है।

प्रसंग- प्रस्तुत पंक्तियों में स्पष्ट किया है कि मरने से पहले जगपती ने दो परचों पर अलग-अलग लिखकर रख दिया कि मैं अपनी इच्छा से अपने प्राण गंवा रहा हूं। मेरे पीछे किसी को भी परेशान न किया जाये।

व्याख्या- कानून के नाम उसने जो पत्र लिखा था वह इस तरह से है कि मुझे किसी ने नहीं मारा है, मैं अपनी इच्छा से अपने प्राण त्याग रहा हूं। इसके पीछे किसी भी आदमी का हाथ नहीं है जिसे कि परेशान किया जाये। मैं इस बात को जानता हूं कि मेरे मरने के बाद मेरे शरीर की चीरा-फाड़ी की जायेगी, जिसमें जहर निकलेगा। मैंने अफीम नहीं, रुपये खाये हैं क्योंकि उन रुपयों में कर्ज का जहर था, उसी कर्ज रूपी रुपये (जहर) ने मुझे मरने को विवश किया है। उसने पत्र में यह भी लिखा कि मेरी लाश को तब तक अग्नि न दी जाये, जब तक चंदा बच्चे को लेकर न आ जाये। मेरी लाश को अग्नि सिर्फ मेरे बेटे से ही दिलवाई जाये। बस ।

## *4.4 सिक्का बदल गया*

(1) "कहीं-कहीं लिये-पुते आँगनों पर से धुआँ उठ रहा था। टन-टन बैलों की घण्टियाँ बज उठती हैं। फिर भी......... कुछ बँधा-बँधा सा लग रहा है। शाहनी ने नजर उठाई। यह मीलों फैले खेत अपने ही हैं। भरी-भराई नई फसल को देखकर शाहनी किसी अपनत्व के मोह में भीग गई। यह सब शाहनी की बरकतें हैं। दूर-दूर तक गाँवों तक फैली हुई जमीन, जमीनों में कुएं सब अपने हैं। साल में तीन फसल जमीन तो सोना उगलती है।"

सन्दर्भ- प्रस्तुत गद्यावतरण कृष्णा सोबती की कहानी 'सिक्का बदल गया' से अवतरित है।

प्रसंग- शाहनी चिनाव नदी में अपने नियम के अनुसार नहाने के लिए गई थी। वहाँ रेत पर अनगिनत पाँवों के निशान देखकर वह स्थिति की भयावहता को समझ गई और शाहनी श्रीराम-श्रीराम कहती हुई अपने घर की ओर चल पड़ी।

व्याख्या- शाहनी बाजरे के खेत में होकर अपने घर की ओर लौट रही है। दूर आसमान में लालिमा फैलने लगी है। गाँव के जो सम्पन्न घर हैं वे लिपे-पुते, साफ-सुथरे हैं। उन घरों के आँगनों में धुआँ उठ रहा है अर्थात् उस घर की स्त्रियाँ उठ गई हैं और उनके दैनिक कार्य शुरू हो गये हैं। बैलों की सानी कर दी गई है इसलिए वे गर्दन हिला हिलाकर आनन्दमग्न होकर खा रहे हैं या किसान खेत जोतने के लिए बैलों को लेकर निकल पड़े हैं जिनके कारण उनके गले में पड़ी

घण्टियाँ बज उठी हैं। गाँव के लोगों के जाग जाने पर भी शाहनी को लग रहा है जैसे सब कुछ बंधा-बँधा सा हो। ऐसा आभास होने पर उसने अपनी आँखें ऊँची कर परिस्थिति को समझने की चेष्टा की, तो उसकी नजर मीलों तक फैले अपने खेतों पर पड़ी। खेतों में नई फसल लहरा रही थी। यह फसल शाहनी की है। यह बात याद आते ही उसमें अपनत्व की भावना भर गई। इन्हीं से तो शाहनी की पूँजी या धन और बढ़ जायेगा। दूर-दूर तक गाँवों तक फैली हुई जमीनें हैं। इन जमीनों की सिचाई के लिए कुएं हैं। यह बस शाहनी के वैभव का ही हिस्सा है। इन जमीनों में साल में तीन बार भरपूर फसल होती है। फसलों के रूप में यह जमीन सोना उगल रही है। यही कारण है कि शाहनी इतनी वैभव सम्पन्न है।

साहित्यिक वैशिष्ट्य- प्रस्तुत अवतरण में शाहरी का अपनी जमीनों के प्रति अपनत्व का भाव प्रकट होता है। जमीन कहीं सूख न जाए। इस बात की ओर विशेष ध्यान देकर वहाँ जगह-जगह कुएँ बनवाये। वहाँ जमीन भी उसे भरपूर फसल देकर कृतार्थ कर रही है। इसलिए भूमि को शस्य-श्यामला कहा जाता है।

(2) "आज इस प्रभात की मीठी नीरवता में जाने क्यों कुछ भयावना-सा लग रहा है। वह पिछले पचास वर्षों से यहाँ नहाती आ रही है। कितना लम्बा अरसा है। शाहनी सोचती है, एक दिन इसी दरिया के किनारे वह दुल्हन बनकर उतरी थी। और आज .....। आज शाहजी नहीं, उसका वह पढ़ा-लिखा लड़का नहीं, आज वह अकेली है, शाहजी की लम्बी-चौड़ी हवेली में अकेली है।"

सन्दर्भ- प्रस्तुत गद्यावतरण कृष्णा सोबती की कहानी 'सिक्का बदल गया' से अवतरित है।

प्रसंग- प्रस्तुत अवतरण में लेखिका ने स्पष्ट किया है कि पिछले पचास वर्षों से शाहनी चिनाव नदी में सुबह-सुबह नहाती आ रही है। उसे किसी बात का डर नहीं था, किन्तु अब भारत-पाक का विभाजन हो जाने के पश्चात् वह नदी के किनारे की रेत पर अनगिनत पाँवों के निशानों को देखकर स्वयं सहम जाती है।

व्याख्या- वृद्धा शाहनी आज भी चिनाव नदी में नहाने के लिए आयी थी। वह यहाँ के वातावरण की अभ्यस्त थी पर आज उसको कुछ विचित्र-सा अनुभव हो रहा था। प्रातःकाल की मीठी-मीठी खामोशी में उसे कुछ डर-सा व्याप्त लग रहा था। इस वातावरण की चुप्पी में उत्पन्न भय को वह महसूस कर रही थी। वह

पिछले पचास वर्षों से यहाँ पर नहाने आती रही है पर आज कुछ अनोखा-सा उसको लग रहा है। एक लम्बा समय गुजर गया। शाहनी अपने ही विचारों में खो जाती है। वह उस समय की याद करने लगती है, जब उसका विवाह हुआ था। वह इसी नदी के किनारे दुल्हन के रूप में सजी-सँवरी उतरी थी। आज वह वातावरण पहले जैसा नहीं है। वह बदल गया है। आज उसके अपने पति शाहजी नहीं रहे। उसका अपना पढ़ा-लिखा लड़का भी नहीं रहा। आज वह घर-परिवार में अकेली है। शाहजी की लम्बी-चौड़ी हवेली है। इस हवेली में वह अकेली ही रहती है। शाहनी को दुःख इस बात का है जिस हवेली में वह पिछले पचास वर्षों से रहती आई है, उस हवेली में वह आज अकेली रह गई है। वह भी राज के पलट जाने पर छिन जायेगी। अपने पुरखों की हवेली, गाँव तथा गाँव के उन लोगों को भी छोड़ना पड़ेगा जिनसे पिछले पचास वर्षों से उनका सम्बन्ध जुड़ा हुआ है। राज का यह बदलाव उसे न जाने कहाँ ले जायेगा।

साहित्यिक वैशिष्ट्य- यहाँ पर राज बदलने पर क्या स्थिति होती है इस अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति को सरल सहज भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है।

(3) "मालूम होता है कि कुल्लूवाल के लोग आये हैं यहाँ ? शाहनी ने गम्भीर स्वर में कहा। शेर ने जरा रुक कर घबराकर कहा, "नहीं शाहनी!" शेरे के उत्तर की अनसुनी कर शाहनी चिन्तित स्वर से बोली, जो कुछ भी हो रहा है अच्छा नहीं। शेरे, आज शाहजी होते तो शायद कुछ बीच-बचाव करते। पर......। शाहनी कहते-कहते रुक गई। आज क्या हो रहा है। शाहनी को लगा जैसे जी भर-भर आ रहा है। शाहजी से बिछुड़े कई साल बीत गये, पर आज कुछ पिघल रहा है। शाहजी हेतु पिछली स्मृतियाँ !

सन्दर्भ- प्रस्तुत गद्यावतरण कृष्णा सोबती की कहानी 'सिक्का बदल गया' से अवतरित है।

प्रसंग- प्रस्तुत कहान में लेखिका ने भारत-पाक विभाजन की त्रासदी का वर्णन किया है। शाहनी नहाने गई तो उसने रेत पर अनगिनत पाँवों के निशान देखे तो वह सहम गई। उसे वैसे ही वातावरण में एक अजीब-सी खामोशी लग रही है। वास्तविकता शाहनी से छिपी न रह सकी।

व्याख्या- शाहनी ने गम्भीर स्वर में शेरा से कहा कि उसे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि यहाँ पर कुल्लूवाल के लोग आये हैं। शाहनी ने यह बात इतनी गम्भीरता से कही थी कि शेरा उसके स्वर को सुनकर ही घबरा गया। उसकी अपनी मनःस्थिति डांवाडोल हो गई, वह कुछ कहते-कहते रुक गया है और घबराहट भरे स्वर में बोला-नहीं शाहनी ! शेरे की बात को सुनकर शाहनी समझ गई कि शेरे को सब कुछ जानकारी है पर वह बता नहीं रहा है। इसलिए उसने शेरे की बात अनसुनी कर दी। वह कुछ चिन्तित स्वर में कहने लगी शेरे यहाँ पर जो कुछ भी हो रहा है, अच्छा नहीं हो रहा है। यह बात शाहनी ने देश-विभाजन के कारण उत्पन्न परिस्थितियों से दुःखी होकर कही। उसे इस बात का भय हुआ कि कुल्लूवाल से आये लोग उसके गाँव में भी आग लगायेंगे, लूटपाट करेंगे और हिन्दुओं की निर्मम हत्या कर उनकी बहु-बेटियों को बेइज्जत करेंगे। उसे शाहजी की याद हो आई क्योंकि वह स्वयं इन घटनाओं को रोकने में असमर्थ थी। इसलिए उसने कहा कि यदि शाहजी होते तो शायद कुछ बीच-बचाव करते। यह बात कहते-कहते वह और अधिक दुःखी हो गई। उसने फिर कहा कि गाँव में जो कुछ भी हो रहा है उसके विषय में किसी ने उससे सलाह नहीं ली। यह बात उसे अखर रही थी। यह सोचकर शाहनी को लगा जैसे उसका जी भर आया है और वह रो पड़ेगी। शाहजी का स्वर्गवास हुए कई वर्ष बीत चुके थे किन्तु उसे आज उनकी याद बहुत आ रही थी। उससे अपना अकेलापन या वैधव्य झेला नहीं जा रहा था उसे ऐसा लगा कि जैसे शाहजी के साथ जुड़ी हुई तमाम बातें उसकी स्मृति में उभर आई हैं और वे उसको बेचैन किए डाल रही हैं।

साहित्यिक वैशिष्ट्य (1) प्रस्तुत अवतरण में लेखिका ने शाहनी की स्मृतियों का बेबाक-चित्रण किया है। (2) भाषा, सरल मुहावरेदार तथा प्रभावशाली है।

(4) "एक बार घूम-फिरकर पूरा घर क्यों न देख आऊँ मैं? जी छोटा हो रहा है पर जिनके सामने हमेशा बड़ी बनी रही है, उनके सामने वह छोटी न होगी। इतना ही ठीक है बस हो चुका। सिर झुकाया। ड्योढ़ी के आगे कुलवधू की आँखों से निकलकर कुछ बूँदें चू पड़ीं।'

सन्दर्भ- प्रस्तुत अवतरण कृष्णा सोबती की कहानी 'सिक्का बदल गया' से अवतरित है।

प्रसंग- प्रस्तुत कहानी में भारत-पाक विभाजन के बाद लोगों की मानसिकता पर प्रकाश डाला गया है। लोगों के घर लूटे, मरे और उनको जबर्दस्ती से अपने पुरखों का घर छोड़ने के लिए बाध्य होना पड़ा। इसी दृश्य का यहाँ चित्रण किया गया है-

व्याख्या- देश का विभाजन हो जाने के बाद शाहनी को जब अपने पूर्वजों का घर छोड़ना पड़ रहा था, तो उस समय उसके मन में एक द्वन्द्व छिड़ा हुआ था। अपने पूर्वजों के प्रति उसका मोह उसे इस बात के लिए व्याकुल बनाये हुए था कि उस घर को सदा-सदा के लिए अलविदा करने से पहले घर का एक-एक कोना जी भरकर देख ले। लेकिन दूसरी ओर वह यह भी सोच रही थी कि ऐसा करना वहाँ एकत्रित उस जनसमूह के सामने अपनी कमजोरी प्रकट करना है, उनकी नजरों में गिरना है-यही वह जनसमूह है जो उसके कुल-गौरव से परिचित और प्रभावित है। अंततः उसने अपने मन की कमजोरी को दबा लिया और स्वाभिमानपूर्वक उसने उस घर की देहरी को लाँघ लिया, किन्तु ऐसा करते समय उसकी मनोव्यथा एक बार फिर उभर पड़ी और वह आँसुओं के रूप में प्रकट हुई। इसी से देहरी को लॉघते समय भी दो बूँद आँसू वहाँ पर गिर पड़े।

साहित्यिक वैशिष्ट्य (1) अपना पुश्तैनी घर छोड़ते समय शाहनी को काफी ग्लानि होती है और वह अपनी मनोव्यथा को नहीं रोक पाती। यही कारण है कि देहरी लाँघते समय उसके आँखों से आँसू टपक पड़ते हैं। (2) शुद्ध साहित्यिक-सरल भाषा का प्रयोग दृष्टव्य है।

## 4.5 अपना-अपना भाग्य

(1) नैनीताल की संध्या धीरे-धीरे उतर रही थी। रुई के रेशे से भाप के बादल हमारे सिरों को छू-छूकर बेटोक घूम रहे थे। हल्के प्रकाश और अंधियारी से रंग कर कभी वे पीले दीखते, कभी सफेद और फिर जरा अरुण पड़ जाते, जैसे हमारे साथ खेलना चाह रहे हों।

प्रसंग- प्रस्तुत गद्यांश जैनेन्द्र कुमार की कहानी 'अपना-अपना भाग्य' से उद्धृत है। कहानी के प्रारम्भ में लेखक नैनीताल की संध्या का गतिशील चित्रण करते हुए लिखता है-

व्याख्या- नैनीताल में शाम धीरे-धीरे घिर रही थी। कोहरा रुई के रेशे की तरह हल्के-फुलके भार के बादल के समान मेरे तथा मेरे मित्र के सिरों को छूते हुए अबोध गति से आ-जा रहा था। कम रोशनी में तथा अंधेरे के रंग में रंग कर वे भाप के बादल अपना रंग बदल रहे थे। कभी तो वे पीले रंग के दिखाई देते और कभी सफेद रंग के और थोड़े से लाल रंग के दिखाई देते थे। उनके हमारे सिर के ऊपर आने-जाने से मुझे ऐसा लगता था मानो वे हमारे साथ खेलने की इच्छा मन में रखते हों।

(2) वह हमें न देख पाया, वह जैसे कुछ भी न देख रहा था। न नीचे की धरती, न ऊपर चारों ओर फैला कुहरा, न सामने का तालाब और न एकाकी दुनिया। तब बस अपने निकट वर्तमान को देख रहा था।

प्रसंग- प्रस्तुत पंक्तियाँ जैनेन्द्र कुमार की कहानी 'अपना-अपना भाग्य' से उद्धृत हैं। इसमें लेखक गरीब पहाड़ी लड़के की मनोदशा का वर्णन कर रहा है। वह लिखता है-

व्याख्या- वह दस-बारह वर्ष का पहाड़ी लड़का अपने-आप में ही खोया हुआ था। वह न तो मुझे और न मेरे मित्र को देख पा रहा था। उसे देखकर लगता था जैसे वह कुछ भी नहीं देख रहा था। उसके सामने जैसे कुछ नहीं था। वह न तो नीचे की जमीन देख रहा था तथा न ही वह आकाश में चारों ओर फैली धुंध को देख रहा था। उसे किसी से कोई सरोकार न था। वह न सामने का तालाब देख रहा था और न ही अकेले संसार को। अर्थात् वह स्वयं को संसार में अकेला अनुभव कर रहा था। उसका मन अपने वर्तमान जीवन को देख रहा था। उसे अपने वर्तमान के अतिरिक्त कुछ नहीं दिखाई दे रहा था। बस वह अकेला चला आ रहा था।

(3) मेरे कई भाई-बहिन हैं, सो भाग आया। वहाँ काम नहीं, रोटी नहीं। बाप भूखा रहता है और माँ भूखी रहती थी, रोती थी, सो भाग आया। एक साथी और था। उसी गाँव का मुझसे बड़ा। दोनों साथ यहाँ आए। अब वह नहीं है।

प्रसंग- प्रस्तुत पंक्तियाँ जैनेन्द्र कुमार की कहानी 'अपना-अपना भाग्य' से उद्धृत हैं। इन पंक्तियों में पहाड़ी लड़का अपने परिवार के सम्बन्ध में, अपनी गरीबी के सम्बन्ध में बताता हुआ अपने भाग आने का कारण बता रहा है।

व्याख्या- लेखक के मित्र ने उस पहाड़ी लड़के से उसके माता-पिता के सम्बन्ध में पूछा तथा उसके भाग आने के कारण को जानना चाहा। पहाड़ी लड़का बताता है कि मेरे माता-पिता है तथा मेरे कई भाई-बहिन हैं। वे गाँव में रहते हैं। मेरे पिता के पास कोई काम नहीं है। वे बेरोजगार हैं। इसलिए वे परिवार का पालन-पोषण नहीं कर सकते। वे हमारा पेट नहीं भर सकते। मेरे माता-पिता भूखे रहते हैं। दो समय का भोजन भी न जुटा पाने के कारण मेरी माँ रोती रहती है। उस गाँव में न कोई काम है और न खाने को रोटी है अतः मैं अपनी गरीबी से तंग होकर यहाँ भाग आया। मेरे साथ उसी गाँव का मुझसे बड़ा एक लड़का था। हम दोनों एक साथ ही गाँव से भागकर आये थे लेकिन अब वह लड़का इस दुनिया में नहीं है। वह मर गया है।

(4) बस जरा सी उम्र में ही उसकी मौत से पहचान हो गई।

प्रसंग- प्रस्तुत पंक्तियाँ जैनेन्द्र कुमार की कहानी 'अपना-अपना भाग्य' से उद्धृत हैं। लेखक उस पहाड़ी लड़के से ड़के से उसके साथी की मृत्यु को सुनकर आश्चर्यचकित हो उठता है और मन में सोचता है-

व्याख्या- पहाड़ी लड़का दस-बारह वर्ष का था। उसका साथी उससे कुछ बड़ा रहा होगा। लेखक सोचता है इतनी छोटी-सी आयु में ही उसकी मृत्यु हो गई। उसने इस दुनिया में कुछ नहीं देखा, कुछ नहीं भोगा और छोटी-सी आयु में ही उसकी मौत हो गई। यह सोचकर लेखक को आश्चर्य हुआ कि वह इतनी छोटी-सी आयु में चल बसा ।

(5) "ये पहाड़ी वाले शैतान होते हैं। बच्चे-बच्चे में गुण छिपे रहते हैं- आप भी क्या अजीब हैं उठा लाए कहीं से-लो जी यह नौकर रख लो।"

प्रसंग- प्रस्तुत पंक्तियाँ जैनेन्द्र कुमार की कहानी 'अपना-अपना भाग्य' से उद्धृत हैं। लेखक और उसका मित्र उस पहाड़ी लड़के को लेकर अपने मित्र वकील साहब के यहाँ नौकर रखवाने ले जाते हैं। वकील साहब लेखक और उसके मित्र पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं-

व्याख्या- साहब ये पहाड़ी लड़के बड़े उपद्रव खड़ा करने वाले होते हैं। ऊपर से तो ये बड़े सीधे-साधे दिखाई पड़ते हैं किन्तु इनके चरित्र में अनेक अवगुण छिपे रहते हैं। दूसरे शब्दों में ये पहाड़ी लड़के बड़े चोर-उचक्के और बेईमान होते हैं। मौका

लगते ही हाथ साफ कर जाते हैं। वकील साहब उनकी नेकनीयत पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं कि आप भी बड़े अद्भुत हैं। पता नहीं कहाँ से इस लड़के को पकड़ लाए हैं न जानते हैं, न पहचानते हैं और कहते हैं, लो जी इसे नौकर रख लो।

(6) बालक कुछ ठहरा। मैं असमंजस में रहा। तब वह प्रेत गति से एक ओर बढ़ा और कुहरे में मिल गया। हम भी होटल की ओर बढ़े। हवा तीखी थी हमारे कोटों को पार कर बदन में तीर-सी लगती थी।

प्रसंग- प्रस्तुत पंक्तियाँ जैनेन्द्र कुमार की कहानी 'अपना-अपना भाग्य' से उद्धृत हैं। वकील साहब ने उस पहाड़ी लड़के को नौकर रखने से मना कर दिया। उसके बाद की स्थिति का वर्णन करते हुए लेखक लिखता है-

व्याख्या- वकील साहब ने उस पहाड़ी लड़के को अपने यहाँ नौकर रखने से साफ मना कर दिया। इसके बाद वह लड़का कुछ देर तक तो हमारे पास खड़ा रहा। लेखक कहता है कि मैं भी इस स्थिति को देखकर कुछ देर तक दुविधा में पड़ा रहा कि अब इस लड़के को क्या कहें। जब तक हम दुविधा से उभरते, तब तक वह लड़का अत्यन्त तेज चाल से एक ओर को चल दिया और धुंध में विलीन हो गया अर्थात् वह शीघ्र ही दिखाई देना बंद हो गया। हम भी अपने होटल की ओर चल दिए। हवा अत्यन्त तेज और ठंडी थी। वह इतनी तीखी थी कि हमारे गर्म कोटों को पार करके हमारे शरीर पर तीर के समान लग रही थी।

(7) पर बताने वालों ने बताया कि गरीब के मुंह पर, छाती, मुट्ठियों और पैरों पर, बर्फ की हल्की-सी चादर चिपक गई थी, मानो दुनिया की बेहयाई ढकने के लिए प्रकृति ने शव के लिए सफेद और ठंडे कफन का प्रबंध कर दिया था।

प्रसंग- प्रस्तुत पंक्तियाँ जैनेन्द्र कुमार की कहानी 'अपना-अपना भाग्य' से उद्धृत हैं। लेखक और उसका मित्र जब नैनीताल से वापस लौटने के लिए बस में सवार हो गए तब उन्हें एक पहाड़ी लड़के के मरने का समाचार मिला। लोगों ने उन्हें बताया कि-

व्याख्या- लोगों ने जिन्होंने उस पहाड़ी लड़के की मृत देह देखी थी, बताया कि उस गरीब पहाड़ी लड़के के मृत शरीर के विभिन्न अंगों पर प्रकृति ने बर्फ की हल्की-सी पर्त बिछा दी। वह सफेद बर्फ की पर्त ऐसी प्रतीत होती थी मानो प्रकृति

ने साधन-सम्पन्न संसार की बेशर्मी को छुपाने के लिए उसके मृत शरीर के लिए सफेद और ठंडे कफन का प्रबंध कर दिया हो।

स्वप्रगति परीक्षण

नीचे दिए गए प्रत्येक कथन को ध्यानपूर्वक पढ़ें और सत्य अथवा असत्य का चयन करें।

1. प्रश्न: नैनीताल की संध्या में बादल कभी पीले, कभी सफेद और कभी अरुण रंग के दिखाई देते हैं।
2. प्रश्न: पहाड़ी लड़का अपनी गरीबी के कारण गाँव से भाग आया था, लेकिन उसके साथ कोई और नहीं आया था।
3. प्रश्न: लेखक को पहाड़ी लड़के की मृत्यु का कारण उसकी छोटी उम्र में मृत्यु को देखकर आश्चर्य नहीं हुआ था।
4. प्रश्न: वकील साहब ने पहाड़ी लड़के को नौकर रखने से मना किया क्योंकि वे उसे धोखेबाज समझते थे।

## *4.6 सार संक्षेप*

कमलेश्वर की "राजा निरबंसिया", कृष्णा सोबती की "सिक्का बदल गया" और जैनेन्द्र कुमार की "अपना-अपना भाग्य" तीनों कहानियाँ गहरे सामाजिक, मानसिक और व्यक्तिगत संघर्षों की अद्भुत चित्रण करती हैं। "राजा निरबंसिया" में कमलेश्वर ने मध्यवर्गीय जीवन के जटिलताओं और रिश्तों के बीच विश्वास, धोखा और मानवीय इच्छाओं के संघर्ष को बखूबी प्रस्तुत किया है। यह कहानी रिश्तों के बारीक बंधनों, सामाजिक अपेक्षाओं और व्यक्तिगत इच्छाओं के बीच

संतुलन बनाने की मुश्किल को उजागर करती है। वहीं कृष्णा सोबती की "सिक्का बदल गया" भारत-पाक विभाजन की त्रासदी और उसके मानसिक और सामाजिक प्रभावों को गहराई से चित्रित करती है। इस कहानी में न केवल विभाजन के दौरान उत्पन्न सामाजिक तनावों का अहसास होता है, बल्कि यह भी दिखाती है कि विभाजन के बाद परिवारों और रिश्तों में किस तरह के बदलाव आते हैं। शाहनी, जो कहानी की प्रमुख पात्र हैं, अपने अतीत और वर्तमान के बीच संघर्ष करती हुई नजर आती हैं। दूसरी ओर, जैनेन्द्र कुमार की "अपना-अपना भाग्य" एक छोटे पहाड़ी लड़के की संघर्षपूर्ण जिंदगी को संवेदनशील तरीके से दर्शाती है। यह कहानी न केवल उस लड़के की कठिनाइयों का वर्णन करती है, बल्कि यह समाज में फैले वर्ग भेदभाव और दोहरे मापदंडों की समस्या को भी उजागर करती है। नैनीताल के प्राकृतिक वातावरण में बसी इस कहानी का भावनात्मक प्रभाव और गहरा होता है। इन तीनों कहानियों का अध्ययन करने से पाठक न केवल परिवार और समाज के बीच संतुलन बनाने की कठिनाइयों को समझेंगे, बल्कि विभाजन के समय की मानसिक और सामाजिक असमानताओं को भी महसूस करेंगे।

## *4.7 मुख्य शब्द*

1. **आश्चर्य चकित**: अचंभित या हैरान होना; कोई ऐसी घटना या स्थिति जिससे व्यक्ति चकित हो जाए।
2. **अफीम**: एक प्रकार का नशा करने वाला पदार्थ, जो अफीम के पौधे से प्राप्त होता है।

3. **तपस्या**: कठोर साधना या धार्मिक अनुशासन, विशेष रूप से ध्यान या साधना के द्वारा आत्मिक उन्नति प्राप्त करना।
4. **कुलदेवता**: एक परिवार या जाति के संरक्षक देवता, जिन्हें परिवार के सदस्य पूजा करते हैं।
5. **नीरवता**: शांति, मौन, या किसी स्थान की ऐसी स्थिति जिसमें कोई आवाज़ न हो।
6. **लम्बाअरसा**: दीर्घकाल, लंबा समय।
7. **बरकेट विभाजन**: यह शब्द आमतौर पर किसी संगठन या प्रणाली में विभाजन के संदर्भ में प्रयोग हो सकता है, परन्तु इसका विशिष्ट अर्थ संदर्भ के अनुसार बदल सकता है।
8. **पुश्तैनी**: जो कुछ पीढ़ी दर पीढ़ी पारंपरिक रूप से चला आ रहा हो; पूर्वजों से प्राप्त।
9. **चरितार्थ**: उद्देश्य या कार्य को पूरा करना, सफलतापूर्वक किसी लक्ष्य को प्राप्त करना।
10. **शाश्वत**: शाश्वतता, अर्थात् जो कभी समाप्त न हो; अनन्त, निरंतर, समय से परे।

## *4.8 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर*

**प्रगति की जाँच**

उत्तर: 1. सत्य

उत्तर: 2. असत्य

उत्तर: 3. असत्य

उत्तर: 4. सत्य

## *4.9 संदर्भ सूची*


1. हिंदी कथा साहित्य की आधुनिक प्रवृत्तियाँ (काव्य प्रकाशन, 2020)
2. समकालीन हिंदी साहित्य: एक समालोचनात्मक अध्ययन (साहित्य विमर्श, 2021)
3. भारतीय उपमहाद्वीप में विभाजन की त्रासदी (राष्ट्र बोध प्रकाशन, 2012)
4. सामाजिक और मानसिक संघर्ष: समकालीन हिंदी कथाएँ (साहित्य लोक, 2020)
5. हिंदी कहानी और समाज (सामाजिक दृष्टि, 2018)


## *4.10 अभ्यास प्रश्न*

**सप्रसंग व्याख्या कीजिए -**

1. औलाद ही तो वह स्नेह की धुरी है, जो आदमी औरत के पहियों को साधकर तन के दलदल से पार ले जाती है... नहीं तो हर औरत वेश्या है और हर आदमी वासना का कीड़ा।
2. "आज इस प्रभात की मीठी नीरवता में जाने क्यों कुछ भयावना-सा लग रहा है। वह पिछले पचास वर्षों से यहाँ नहाती आ रही है। कितना लम्बा अरसा है।
3. "ये पहाड़ी वाले शैतान होते हैं। बच्चे-बच्चे में गुण छिपे रहते हैं- आप भी क्या अजीब हैं उठा लाए कहीं से-लो जी यह नौकर रख लो।"

# ब्लॉक - II

# इकाई - 5
# समीक्षात्मक अध्ययन - I

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 बाणभट्ट की आत्मकथा उपन्यास की सारगर्भित समीक्षा

5.4 बाणभट्ट का चरित्र चित्रण

5.5 काव्य में लोक मंगल की साधनावस्था विषयवस्तु

5.6 अशोक के फुल का सारांश

5.7 'मेरे राम के मुकुट भीग रहा है' की भाषा-शैली

5.8 सार संक्षेप

5.9 मुख्य शब्द

5.10 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

5.11 संदर्भ सूची

5.12 अभ्यास प्रश्न

## *5.1 प्रस्तावना*

'बाणभट्ट की आत्मकथा' हिंदी साहित्य का एक अनूठा और महत्वपूर्ण उपन्यास है, जिसे आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने रचा। यह उपन्यास न केवल ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है, बल्कि इसके पात्रों और कथावस्तु के माध्यम से लेखक ने उस समय के समाज, राजनीति और संस्कृति की भी गहरी झलक प्रदान की है। बाणभट्ट के जीवन के विभिन्न पहलुओं को उजागर करते हुए यह उपन्यास भारतीय साहित्य में एक ऐतिहासिक उपन्यास के रूप में स्थापित हुआ है।काव्य की रचनात्मकता और उसकी उद्देश्यता का निर्धारण उस समय की सामाजिक, धार्मिक और मानसिक परिस्थितियों पर निर्भर करता है, जो एक कवि की चेतना में आकार लेती हैं। काव्य का उद्देश्य केवल रचनात्मक सुख देने तक सीमित

नहीं रहता, बल्कि यह लोक-मंगल की साधनावस्था और सिद्धावस्था के बीच का पुल भी बनता है। शुक्लजी का यह निबंध "काव्य में लोक-मंगल की साधनावस्था" काव्य के माध्यम से लोककल्याण की दिशा को दर्शाता है।अशोक के फूल" आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा लिखित एक महत्वपूर्ण निबन्ध है, जो भारतीय सांस्कृतिक धरोहर और साहित्यिक मान्यताओं के गहरे विश्लेषण पर आधारित है। इस निबन्ध में लेखक ने अशोक के फूल के सांस्कृतिक, साहित्यिक, और धार्मिक महत्व का विस्तार से वर्णन किया है, और इसके साथ ही भारतीय समाज की विकसित होती समझ और समाजिक बदलावों की ओर संकेत किया है। अशोक का फूल न केवल एक प्राकृतिक रचना है, बल्कि यह भारतीय संस्कृति, कला और साहित्य का अभिन्न हिस्सा भी है, जिसे कालान्तर में भुला दिया गया।मेरे राम के मुकुट भीग रहा है" पर विद्यानिवास मिश्रा का लेख भारतीय समाज और व्यक्तिगत संघर्षों का गहरी समझ प्रस्तुत करता है। उनका लेखन आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की परंपरा को एक नई लोकल झलक से जोड़ता है। मिश्रा का दृष्टिकोण, जो व्यक्तिगत और सामाजिक संघर्षों के बीच संतुलन को समझता है, आज की समकालीन समस्याओं और पारंपरिक संस्कृति के बीच के जटिल रिश्ते को उजागर करता है।"

## *5.2 उद्देश्य*

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित 'बाणभट्ट की आत्मकथा' उपन्यास के ऐतिहासिक और साहित्यिक महत्व को, जो उस समय के समाज, राजनीति, और संस्कृति की गहरी झलक प्रदान करता है।
- काव्य की रचनात्मकता और उद्देश्यता को समझने की प्रक्रिया, और यह जान पाएंगे कि वह समय की सामाजिक, धार्मिक और मानसिक परिस्थितियों पर कैसे निर्भर करती है।

- शुक्लजी के निबंध "काव्य में लोक-मंगल की साधनावस्था" के माध्यम से काव्य के लोककल्याण की दिशा को।
- "अशोक के फूल" निबंध के माध्यम से भारतीय सांस्कृतिक धरोहर, साहित्यिक मान्यताओं और सामाजिक बदलावों का विश्लेषण करने की क्षमता।
- विद्यानिवास मिश्रा के "मेरे राम के मुकुट भीग रहा है" पर लेख से समाज और व्यक्तिगत संघर्षों के बीच संतुलन को समझने के साथ-साथ समकालीन समस्याओं और पारंपरिक संस्कृति के जटिल रिश्तों को।

## *5.3 बाणभट्ट की आत्मकथा उपन्यास की सारगर्भित समीक्षा*

वस्तुतः उपन्यास के प्रमुख तत्व निम्नलिखित हैं- 1. कथावस्तु या कथानक, 2. पात्र और चरित्र-चित्रण, 3. संवाद या कथोपकथन, 4. देशकाल या वातावरण, 5. भाषा-शैली और 6. उद्देश्य या जीवन दर्शन। उक्त समस्त तत्वों का समुचित तथा संतुलित समन्वय ही किसी उपन्यास को उत्कृष्टता प्रदान करता है तथा यहाँ यह स्पष्ट किया जाएगा कि 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में उपर्युक्त तत्वों की योजना किस रूप में हुई है।

**कथावस्तु या कथानक-** प्रायः समीक्षक 'बाणभट्ट की आत्मकथा' को हिन्दी उपन्यास साहित्य में एक अभिनव प्रयोग ही मानते हैं तथा बीसों उच्छ्वासों या अध्यायों में लिखित इस उपन्यास के प्रारंभ में छह पृष्ठों का कथामुख दिया गया है एवं अंत में चार पृष्ठों का उपसंहार भी है, यह उपन्यास आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया है पर इसे आत्मकथा समझना युक्तिसंगत न होगा और इसकी मुख्य या आधिकारिक कथा बाण, भट्टिनी एवं निपुणिका की है। साथ ही इसमें अघोर भैरव, महामाया, भैरवी एवं सम्राट ग्रहवर्मा और विरतिवज्र एवं सुचरित्ता तथा चारुस्मिता एवं सुगतभद्र की प्रासंगिक कथाएं भी अंकित हुई हैं। इनमें से महामाया की कथा को कुछ अधिक विस्तार प्राप्त हुआ है और वह मुख्य कथा से अधिक बंध भी रखती है पर अवशिष्ट गौण कथाएं उपन्यास के परिवेश की

यथार्थता का बोध कराते हुए मुख्य कथा से भी न्यूनाधिक संबंध अवश्य रखती हैं।

विस्तारपूर्वक देखा जाए तो 'बाणभट्ट की आत्मकथा' उपन्यास में प्रस्तावना विकास, संघर्ष चरम सीमा एवं उपसंहार नामक कथावस्तु के विकास की सभी अवस्थाओं का सम्यक निर्वाह भी हुआ है है और यह उपन्यास सुगठित कथानक वाला उपन्यास ही माना जाएगा एवं इसमें प्रयुक्त घटनाओं में कहीं भी विश्रृंखला नहीं नहीं है। । साथ ही इस उपन्यास में रोचकता, औत्सुक्य या कुतूहलोद्दीपन, स्वाभाविकता तथा मौलिकता आदि विशेषताएं भी दीख पड़ती हैं और लगभग तीन सौ से अधिक पृष्ठों के उपन्यास में अस्वाभाविक प्रसंग एवं असंबद्ध घटनाएं इनी गिनी ही है। प्रस्तुत उपन्यास का नामकरण भी सुसंगत एवं उपयुक्त ही है तथा कथावस्तु में इतिहास एवं कल्पना का संतुलित समन्वय होते हुए भी यह उपन्यास ऐतिहासिक ही माना जाएगा तथा यह ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर ही लिखा गया है हालांकि इस उपन्यास की कथावस्तु का प्रस्तुतीकरण मुख्यतया आत्मकथात्मक प्रणाली में हुआ है लेकिन प्रसंगानुसार इसमें वर्णनात्मक, प्रश्नात्मक, एवं चित्रात्मक प्रणालियों का भी प्रयोग किया गया है। इस प्रकार कथा-सौष्ठव की दृष्टि से 'बाणभट्ट की आत्मकथा' पूर्ण सफल उपन्यास ही माना जाएगा।

**पात्र और चरित्र-चित्रण-** यद्यपि आलोच्य उपन्यास में प्रमुख पात्र बाणभट्ट, निपुणिका एवं भट्टनी हैं लेकिन कथा-विकास की दृष्टि से कुमार कृष्णवर्धन, अघोर भैरव, महामाया, विरतिवज्र एवं सुचरिता आदि पात्र भी उल्लेखनीय कहे जा सकते हैं। इनमें से बाण इस उपन्यास का नायक है और निपुणिका एवं भट्टनी का समान महत्व होने के बावजूद निपुणिका को ही नायिका मानना उचित जान पड़ता है। यद्यपि 'बाणभट्ट की आत्मकथा' को ऐतिहासिक उपन्यास कहा जाता है लेकिन इसमें केवल बाण, हर्ष, राज्यश्री, तुवर मिलिद एवं भर्तु शर्मा आदि पात्र ऐतिहासिक हैं तथा जो अन्य अधिकांश काल्पनिक पात्र अंकित हुए हैं वे भी ऐतिहासिक पात्रों के समान महत्वपूर्ण जान पड़ते हैं। अतएव इस उपन्यास की पात्र योजना में उपन्यासकार की मौलिक प्रतिभा का सराहनीय योग रहा है तथा अधिकांश पात्रों का चरित्र-चित्रण सजीव तथा यथार्थ जान पड़ता है।

अगर आलोच्य उपन्यास के हर्ष, कृष्णवर्धन, विग्रह वर्मा, धावक, अघोर भैरव, चंडी मंदिर के पुजारी एवं बाभ्रव्य आदि पात्र स्थिर या वर्गगत माने जाएंगे तो बाणभट्ट, निपुणिका, भट्टिनी, महामाया, विरतिवज्र एवं सुचरिता आदि पात्रों को विकसनशील या व्यक्तिगत ही कहा जाएगा। साथ ही इस उपन्यास में चरित्र-चित्रण के लिए वर्णनात्मक या विवरणात्मक, विश्लेषणात्मक एवं नाटकीय आदि प्रणालियों का सफलतापूर्वक प्रयोग किया गया है तथा पात्रों का चरित्र-चित्रण मनोविश्लेषण से पूर्ण भी है। हालांकि इस उपन्यास का नायक पुरुष है और न केवल पुरुष प्रधान उपन्यास है बल्कि संपूर्ण उपन्यास में पुरुष पात्रों की ही संख्या अधिक है लेकिन स्वयं उपन्यासकार ने स्वीकार किया है कि संपूर्ण कथा में स्त्री महिमा का बड़ा तर्कपूर्ण और जोरदार समर्थन है। वास्तव में नारी पात्रों का सहयोग पाकर ही आलोच्य उपन्यास के पुरुष पात्रों का चरित्रोत्कर्ष संभव हो सका तथा स्वयं नायक बाण ही नारी पात्रों के समक्ष गौण जान पड़ता है तथा वह स्वयं को एक नारी का सेवक कहने में संकोच नहीं करता। इस प्रकार पात्र योजना और चरित्र-चित्रण की दृष्टि से यह उपन्यास सफल ही माना जाएगा।

**संवाद या कथोपकथन-** वस्तुतः 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में संवाद योजना का पूर्ण ध्यान रखा गया है तथा इस उपन्यास के संवाद न केवल कथाक्रम को विकासोन्मुख करने में सहायक सिद्ध हुए हैं वरन् पात्रों के चरित्र-विश्लेषण में भी पूर्ण समर्थ रहे हैं। साथ ही इस उपन्यास के संवाद उद्देश्य की झलक भी प्रदान करते हैं और उनमें विवरण की स्पष्टता, प्रवाह की सुधरता तथा चिंतन की गहराई आदि विशेषताएं भी दीख पड़ती हैं। इसी प्रकार आलोच्य उपन्यास के संवादों में उपयुक्तता, अनुकूलता, रोचकता, स्वाभाविकता, संबद्धता, संक्षिप्तता तथा सोद्देश्यता आदि गुण भी हैं।

**भाषा शैली-** सामान्यतया 'बाणभट्ट की आत्मकथा' उपन्यास की भाषा संस्कृतमयी ही है लेकिन यह संस्कृत बहुल भाषा विषय एवं पात्रों के अनुकूल होने के कारण अनुपयुक्त नहीं कही जा सकती क्योंकि इसमें सजीवता, स्वाभाविकता तथा सुधरता का सहज सम्मिश्रण भी है। साथ ही उपन्यास में शब्दों की सार्थक योजना का भी ध्यान रखा गया है और कहीं-कहीं अरबी-फारसी शब्दों को भी अपनाया गया है तथा कुछ नये शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। कुशल शब्द शिल्पी

द्विवेदी जी की वाक्य रचना भी सराहनीय है और उसमें सरलता, स्वच्छता, मर्मस्पर्शिता, प्रभविष्णुता तथा शुचिता आदि विशेषताएं भी दीख पड़ती हैं तथा कहीं-कहीं छोटे-छोटे वाक्यों में ही अनूठी भाव व्यंजना के दर्शन होते हैं। आलोच्य उपन्यास में चित्रमयी भाषा भी प्रयुक्त हुई है और व्याकरण को दृष्टि से भी भाषा शुद्ध ही मानी जाएगी तथा ओज, प्रसाद तथा माधुर्य आदि गुणों के साथ-साथ अनुप्रास, यमक, श्लेष, उपमा, उत्प्रेक्षा, परिकर एवं विरोधाभास आदि अलंकारों की भी स्वाभाविक योजना हुई है। साथ ही इस उपन्यास में लोकोक्तियों, मुहावरों एवं सूक्तियों का भी प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है तथा उनकी योजना से भाषा में सजीवता एवं सशक्तता भी आ गई है। इसी प्रकार 'बाणभट्ट की आत्मकथा' उपन्यास में आत्मकथात्मक, वर्णनात्मक, तर्क वितर्कमयी, काव्यात्मक, विश्लेषणात्मक नाटकीय, चित्रात्मक एवं आलंकारिक तथा हास्य व्यंग्यमयी परिहासात्मक आदि विविध शैलियों का भी सफल प्रयोग हुआ है एवं भाषा-शैली की दृष्टि से यह एक प्रशंसनीय उपन्यास ही माना जाएगा।

**उद्देश्य या जीवन दर्शन-** यद्यपि आलोच्य उपन्यास में संस्कृत के प्रसिद्ध साहित्यकार बाणभट्ट के चरित्र का उज्जवल रूप अंकित कर तद्युगीन इतिहास के प्रति पाठकों को आकर्षित भी किया गया है लेकिन इस उपन्यास में लेखक का ध्यान सम सामयिक समस्याओं का ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में विश्लेषण कर उनका एक युगसंगत समाधान प्रस्तुत करने की ओर भी गया है। अतएव उपन्यासकार ने बाल विवाह, राजनीतिक शक्ति, जनतंत्र, समाज व्यवस्था, सांस्कृतिक धरातल, आर्थिक परिस्थितियां, धार्मिक स्थिति, सैन्य शक्ति, राष्ट्र प्रेम, मानव प्रेम, विश्वबंधुत्व की भावना, स्त्री पुरुष की परस्पर अनिवार्यता और साधनात्मक तथा भावनात्मक प्रेम का सम्मिलन आदि विभिन्न समस्याओं के संबंध में अपने विचार भी 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में व्यक्त किये हैं। साथ ही यथार्थ के प्रति आस्था रखते हुए भी उपन्यासकार ने आदर्शवाद में अटूट निष्ठा प्रकट की है और बाण के बहुमुखी व्यक्तित्व तथा कृतित्व के माध्यम से निराशा और शोषण के प्रति आवाज भी उठाई है। आलोच्य उपन्यास यह संदेश भी प्रसारित करना चाहता है कि जन सामान्य को स्वयं जागरूक होकर खुद निर्णय लेकर राष्ट्र हित में कार्य करने को तत्पर होना चाहिए। इस उपन्यास में सत्यमेव

जयते की ध्वनि भी मुखरित हुई है और उपन्यासकार द्विवेदी जी का विशाल मानवतावादी दृष्टिकोण तथा समाजशास्त्रीय अध्ययन वर्तमान को नवीन तथा सशक्त दृष्टि भी प्रदान करता है तथा समष्टि के लिए व्यक्ति अपना सर्वस्व न्यौछावर करने को उत्सुक हो उठता है। संक्षेप में, इस उपन्यास का महान संदेश 'स्वयं स्वतंत्र जोवित रहो और दूसरों को स्वतंत्र जीवित रहने दो' ही है।

**निष्कर्ष-** उक्त विवेचना से स्पष्ट हो जाता है कि उपन्यास कला की दृष्टि से 'बाणभट्ट की आत्मकथा' निर्विवाद रूप से एक सफल उपन्यास है और अपने शोध प्रबंध में डॉ. श्री नारायण अग्निहोत्री ने इसे एक सफल ऐतिहासिक उपन्यास कहा है एवं डॉ. रामअवध द्विवेदी के अनुसार, "बाणभट्ट की आत्मकथा इस बात का सफलतम उदाहरण है कि प्रतिभाशाली लेखक कैसे तथ्य और कथा का संयोजन करके उसके द्वारा न सिर्फ व्यक्तित्व की ही अनुसृष्टि कर सकता है, प्रत्युत युग के विशिष्ट वातावरण को भी उपस्थित कर सकता है। इस पुस्तक की रचना विषय के अनुरूप शैली में ही हुई हैं और इसमें अतीत काल के विपुल और विशद विवरणों का उपयोग आश्चर्यजनक है।"

**बाणभट्ट की आत्मकथा में वर्णित नारी-स्वरूप का वर्णन**

नारी समस्या के संदर्भ में पंजाबी की लब्ध-प्रतिष्ठित लेखिका अमृता प्रीतम की कुछ पंक्तियां याद आ रही हैं। उन्होंने लिखा है कि हमारे देश में राह चलते लोगों के कपड़ों पर इतनी धूल भी उड़कर नहीं गिरती जितनी तो हमारे यहाँ औरत पर लगाई जाती है तथा मजे की बात यह है कि लोग इसे अपनी अहमियत समझते हैं। कैसी विडम्बना है।

'जहाँ स्त्री की पूजा होती है उस घर में देवता निवास करते हैं, की धारणा रखने वाले भारतीय समाज में ही नारी को निरंतर अनेक गर्हित आयामों से गुजरना पड़ा है। उसकी दया, माया, ममता, स्नेह, त्याग आदि सबको नजरंदाज करके समाज ने उसे सिर्फ 'सैक्स-आर्गन' तक सीमित कर दिया। यही वस्तुतः हमारे सांस्कृतिक तथा सामाजिक पतन का कारण भी रहा है। नारी-मंगल के साधन हेतु साहित्य जगत में जितने भी प्रयत्न हुए उनमें 'बाण भट्ट की आत्मकथा' अविस्मरणीय है यद्यपि प्रसाद, पंत और शरद् बाबू का सहयोग भी कम उल्लेखनीय नहीं है।

प्रस्तुत कृति में नारी-स्वरूप के तात्विक निरूपण के साथ-साथ उसकी सामाजिक अर्हता पर भी यथेष्ट प्रकाश डाला गया है। उपन्यास पढ़ते समय 'नारी तुम केवल श्रद्धा हो' पंक्ति मानस में गूंजती रहती हैं। नारी क्या है? वह कितनी पवित्र है? उसमें कितनी शक्ति और सौंदर्य हैं? उसका सम्मान कितना सुखद तथा उपेक्षा कितनी घातक है? अनेकानेक प्रश्नों का उत्तर उसमें समाविष्ट है।

नारी क्या है, इसका स्पष्टीकरण लेखक ने तात्विक आधार पर किया है। नारी को शक्ति रूप माना है। परम-तत्व के दो रूपों-शिव तथा शक्ति में से इसे एक मान कर बतलाया गया है कि पिंड में शिव का प्राधान्य पुरुष तथा शक्ति का प्राधान्य नारी है। पुरुष विधि-रूप है तथा नारी निषेध-रूपा है। जहाँ कहीं भी उत्सर्ग, परोपकार, ममता, प्रेम आदि के दर्शन हों, वहाँ नारी का ही प्राधान्य होता है। 'शक्तिमति छाया शीतल' नारी के स्वरूप की इससे उदात्त व्याख्या तथा क्या होगी, इसलिए तो पंत ने भी इसे 'धरा में स्वर्ग पुनीत' 'कलिका में अखिल बसंत' और 'बिन्दु में सिधु अनंत' माना है। इतना ही नहीं भट्ट की भांति उन्होंने भी नारी में 'देवी माँ' सहचरी प्राण के दर्शन किए हैं।

लेखक ने न सिर्फ इसके स्वरूप की ही विवेचना की है वरन् उसके उदात्ता प्रयोजन पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला है। नारी का प्रयोजन पुरुष को साधना-पथ पर प्रेरित करना, सहयोग करना तथा अंततः भौतिक प्रपंच से मुक्त करना है। यानी उसे आत्म-साक्षात्कार में सहयोग देना है तभी तो विरतिवज्र सुचरिता को पुनः ग्रहण करते समय उससे अपनी लक्ष्य-सिद्धि में सहयोग का वादा लेता है नारीहीन पुरुष की साधना फलीभूत हो भी नहीं सकती। इसके साथ ही लोक-मंगल भी उसका प्रयोजन है। वह दात्री है, प्राणदात्री तथा जीवनदात्री। तभी तो गुप्त जी ने सच ही लिखा है:

'अबला जीवन हाय ! तुम्हारी यही कहानी,
आँचल में है दूध और आँखों में पानी ।'

नारी की पावनता पर संदेह करना पुरुष की बर्बादी का श्रीगणेश हैं। जब तक भारतीय समाज में नारी-सौंदर्य अक्षुण्या रहा तब तक यह 'अरुण मधुमय देश' रहा। अज्ञ-जनों ने इसे जब-तब पद-दलित किया है। इसे कलुषित करने का प्रयास किया है। लेकिन लेखक ने स्पष्ट किया है कि नारी कभी भी अपावन नहीं होती।

उसकी दुरावस्था पौरुष के विघटन की तरफ उठी हुई अंगुली है। भट्ट एक स्थान कहता भी है-"पावक को कभी कलंक स्पर्श नहीं करता दीप शिखा को अंधकार की कालिमा नहीं लगती।" निर्मलता और कालुष्य मन के भाव हैं, निषेध रूपा नारी की अशुचिता कल्पनातीत है। यदि पुरुष अपने को निषेध भाव से इसके सुपुर्द कर दे तो उसका जीवन सार्थक हो जाए। आयविर्न की खंड-प्रायः दुर्बलता को भी लेखक ने तत्कालीन समाज में 'नारी' की उपेक्षा का परिणाम बतलाया है। भट्ट के उद्गार भी दृष्टव्य है, "हाय! संसार ने इस माँसलदेव प्रतिमा की पूजा नहीं की। वह वैराग्य और शांति मद की बालू की दीवार खड़ी करता रहा। उसे अपने परम आराध्य का पता ही नहीं लगा।" नारी के हृदयगत सौंदर्य का साक्षात्कार सामाजिक अवस्था के लिए सबसे बड़ा वरदान है। प्रस्तुत कृति में भट्ट तो नारी-देह को देवालय मानता है। नारी-उद्धार हेतु प्राणोत्सर्ग भी उसकी दृष्टि में कोई बड़ी बात नहीं। भट्ट का अभिभावक रूप ही यह आदर्श पेश करता है कि पुरुष वर्ग को स्त्री-जाति की हर संभव मदद करनी चाहिए।

अगर हम स्वयं नारी की इज्जत करें तो उसे दूसरों की दृष्टि में भी पूज्य बना सकते हैं। इस संदर्भ में भट्टजी के उद्गार ध्यातव्य हैं-"तुम निर्दय जाति के चित्त में संवेदना का संचार कर सकते हो। उन्हें स्त्रियों का सम्मान करना सिखा सकते हो। तुम्हारी वाणी मेरी जैसी अबलाओं में आत्म-शक्ति का संचार कर सकती है। इसलिए नारी की उपेक्षा भी न होनी चाहिए उसके प्रति समभाव आवश्यक है। महामाया कहती है-"क्या निरीह प्रजा की बेटियां इनकी नयन-ताराएं नहीं हुआ करती ? क्या राजा और सेनापति की बेटियों का खो जाना ही संसार की बड़ी दुर्घटना है।" वास्तव में नारी के साथ ऐसा व्यवहार होना चाहिए कि वह अपने आपको धन्य समझने लगे। अपने अस्तित्व को विधाता का वरदान समझे। नारी के अभाव में पुरुष की साधना अधूरी रहती है और पुरुष के अभाव में स्त्री की बलिदाना कौक्षा भी अर्थहीन रह जाती है। बाण भी स्वीकार करता है कि अवधूत पाद की साधना इसलिए अपूर्ण है कि उन्हें स्त्री का सहयोग नहीं मिला तथा निपुणिका की बलिदान भावना भी पुरुषावलंब के बिना निष्फल रही है। अतः नारी अनुपेक्षणीय है।

त्रिभुवन का पुरुष-तत्व उसी रूप में मुग्ध है। अतः शक्ति-तंत्र में इसी को त्रिभुवन मोहनी कहा गया है। पुरुष स्वी को शक्ति समझकर ही पूर्ण हो सकता है, पुरुष वस्तु निरपेक्ष भाव, रूप सत्य में आनंद पाता है तथा स्त्री वस्तु-युक्त रूप में रस पाती है। वह पुरुष की ममताहीन महत्वाकांक्षा की नियंत्रक शक्ति है।

स्त्री की सफलता पुरुष को बाँधने में है और सार्थकता उसे मुक्त करने में है। उसमें प्रकृति की अभिव्यक्ति, पुरुष की अपेक्षा अधिक होती है तथा पुरुष में अपेक्षाकृत पुरुष तत्व का प्राधान्य होता है। स्त्री तथा पुरुष में निहित प्रकृति की अभिभूति पुरुष से होती है। महामाया कहती है, "मैं अपने भीतर की अधिक मात्रा वाली प्रकृति अपने ही भीतर वाले पुरुष तत्व से अभिभूत नहीं कर सकती इसलिए मुझे अधौर भैरव की जरूरत है।

भट्टनी महामाया से एक स्थल पर प्रश्न करती है कि क्या स्त्री विध्नरूपा है। 'पुरुषों के समस्त वैराग्य के आयोजन मुक्ति साधना के अतुलनीय आश्रम नारी की एक बंकिम दृष्टि में ढह जाते हैं।' पर यह सार्वकालिक सत्य नहीं है। अपने कर्तव्यपथ में नारी को विध्न रूपा मानव पुरुष की दुर्बलता है। नारी-हीन तपस्या संसार की भद्दी भूल है। पिण्डनारी का कोई महत्व नहीं; महत्वपूर्ण तो नारी तत्व है। अतः एक जगह तपस्वी कहता है- "मैं माता को आज्ञा से तुम्हारा हाथ पकड़ना चाहता हूं, क्या तुम जीवन में मेरे लक्ष्य की तरफ बढ़ने में मुझे सहायता देने को तैयार हो ?"

नारी-सौंदर्य पर भी इस कृति में सम्यक् प्रकाश डाला गया है। नारी ही रत्नों तथा आभूषणों की शोभा बढ़ाती है। उसके बिना विश्व-व्यापी संगठन, शांति, धर्म कर्म और ज्ञान आदि निष्प्रभ हैं। इन सब का महत्व तब ही है जब स्त्रियों की दशा भी शोचनीय नहीं है।

स्त्री का एक भेद गणिका भी है जिसे जन-मानस घृणा की व वासना की दृष्टि से ही देखता है। वस्तुतः स्त्री की गणिका से परिणति पुरुषों की दुर्व्यवस्था का ही परिणाम है। उपन्यास में वर्णित-वारुस्मिता और विद्यद्यांग जैसी गुण-संपन्न गणिकाओं को घृणा करना आत्म-प्रवंचना होगी। यहाँ मुझे मशहूर शायर लुधियानवी के गीत की एक पंक्ति याद आ रही है जो उन्होंने वेश्याओं की ओर संकेत करते हुए लिखा थाः

'जिन्हें नाज है हिन्द पर वे कहाँ हैं ?'
इस तरह 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में नारी-स्वरूप का विस्तृत विवेचन मिलता है। उसके जीवन-पक्ष को हर कण से देखने का प्रयत्न किया गया है। विश्वास, रजत-नग-पग-तल पर पीयूष स्रोत 'सी बहने वाली नारी से संबंधित समस्याओं का समाधान बाण भट्ट की इन पंक्तियों में मिल जाता है-"नारी देव मंदिर के समान पवित्र है तथा संसार की सबसे बहुमूल्य वस्तु है। इसका अपमानित होना लज्जाजनक और असहनीय है।"
यहाँ तक तो हुई नारी-प्रतिष्ठा की बात जिसमें लेखक को उल्लेखनीय सफलता मिली है। लेकिन नारी संबंधी इस स्वीकारात्मक दृष्टिकोण के साथ ही पुरुष के अहम् दर्प, कठोरता, कदाचार, महत्वाकांक्षा, कुटिलता, बर्बरता आदि की निषेधात्मक 'एप्रोच' के माध्यम से इन सब की विर्गहणा की है। छोटे अंतःपुर में फैली विलासिता तथा उसमें आकंठ डूबी निस्सहाय क्रीत-कुमारियों का पर्दाफाश करते हुए बाण भट्ट और कुमार के द्वारा इसका विरोध दिखाकर लेखक ने इसी दिशा में प्रयत्न किया है। प्रत्यंत-दस्युओं के हृदय विदारक अत्याचार भी गर्हित पौरुष का प्रतिनिधि रूप है जिसके परिहार की अकुलाहट उपन्यास में तीव्रता से महसूस होती है। स्वार्थसिद्धि हेतु राजनीतिक प्रपंचों का आश्रम, जनता को वास्तविकता से दूर रखने के लिए चारुस्मिता जैसी गुण-संपन्न गणिका का मोहरे के रूप में प्रयोग आदि भी पुरुष वर्ग की विकृत महत्वाकांक्षा का प्रत्यक्ष प्रमाण है। लेखक ने इन सब की भर्त्सना की है एवं इस सत्य का उद्घाटन किया है कि जब तक असंयत पुरुष वर्ग में संतुलन नहीं आता और नारी की निषेध-रूप-गुण संपन्नता नहीं आती तब तक समाज, राष्ट्र और विश्व का त्राण असंभव है। अतः निष्कर्षतः यह स्पष्ट हो जाता है कि बाणभट्ट की आत्मकथा में नारीतत्व की प्रतिष्ठा और पुरुष की विर्गहणा की गई है।

स्वप्रगति परिक्षण

1. उपन्यास का उद्देश्य मुख्य रूप से _________ के जीवन और समस्याओं का यथार्थ चित्रण करना है।

2. 'गोदान' उपन्यास के लेखक _________ हैं, जो भारतीय ग्राम्य जीवन का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करते हैं।
3. उपन्यास के तीन मुख्य तत्त्व हैं ________, ________, और _________।
4. 'गुनाहों का देवता' उपन्यास में प्रेम और त्याग का भाव प्रमुख रूप से _________ के माध्यम से व्यक्त किया गया है।

## *5.4 बाणभट्ट का चरित्र चित्रण*

वस्तुतः 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के पुरुष पात्रों में सर्वप्रथम दृष्टि बाणभट्ट पर ही जाती है तथा शीर्षक से ही स्पष्ट है कि बाण इस उपन्यास का नायक है तथा वह संपूर्ण कहानी का सूत्रधार भी है। यहाँ यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि बाण सातवीं शताब्दी का अविस्मरणीय चरित्र है और भले ही 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में अंकित संपूर्ण वृत्त इतिहास सम्मन न हो पर बाणभट्ट ऐतिहासिक पात्र ही है। सत्य तो यह है कि वह एक अद्भुत और चित्ताकर्षक पात्र ही जान पड़ता है एवं इतिहास कल्पना तथा बौद्धिकता ने त्रिवेणी के सदृश बाण के चरित्र की महत्ता, पवित्रता एवं आदर्श की स्थापना की है। यहाँ बाण के चरित्र की विशेषताओं को निम्नानुसार दिया जा सकता है।

**सामान्य परिचय-** बाण शोण नदी के किनारे स्थित प्रीतकूट में निवास करने वाले वात्स्यायन गोत्रीय चित्रभानु भट्ट की की पुत्र है त तथा उसका वंश सुविख्यात रहा है तथा उसके पितृ पितामही के घर वेदाध्यायियों से भरे रहते थे एवं यज्ञ धूम से निरंतर धूमायित रहते हैं। साथ ही घर की शक-सारिकाएं भी विशुद्ध मंत्रोच्चारण कर लेती थीं और उनसे विद्यार्थी डरते रहते थे क्योंकि वे पद-पद पर उनके अशुद्ध पाठों को सुधार देती थीं। चित्रभानु अपने समय के प्रकांड पंडित थे तथा वे ग्यारह भाई थे। इस प्रकार वेद शिक्षा एवं यज्ञ-हवन आदि कार्यों में बाण को दक्षता वंशगत परंपराओं से प्राप्त हुई थी और उसे शास्त्र एवं काव्य का भी यथेष्ट ज्ञान था।

दैवयोग से बाण को शैशवावस्था में ही माता के वात्सल्य से सर्वदा के लिए वंचित होना पड़ा और पिता चित्रभानु ने ही उसका पालन-पोषण किया। साथ ही

जब बाण चौदह वर्ष का था तब उसे पिता का भी चिरवियोग सहन करना पड़ा तथा वह अंतर से दुखी ही रहा। बाण के एक चचेरे भाई उडूपति (जिन्हें तारा पति भी कहा गया है) प्रसिद्ध विद्वान एवं तार्किक थे और उन्होंने प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान वसुभूति को शास्त्रार्थ से पराजित कर बौद्ध धर्म पर विजय प्राप्त कर महाराजाधिराज हर्ष को वैष्णव या शैव-धर्म की ओर आकृष्ट किया था। इस तरह बाण विद्वत समाज से संबंधित था पर वह आरंभ में ही स्वतंत्र व्यक्तित्व का था और उसे बाल्यकाल से ही दुःख सहन करना पड़ा था।

**नामकरण एवं स्वभावगत विशेषताएं-** वास्तव में बाण का नाम दक्ष भट्ट था पर वह जन्म से आवारा, गप्पी, अस्थिर चित्त एवं घुमक्कड़ था तथा जब वह कालांतर में कुछ उद्दंड एवं आवारा हो गया तब उसे 'बंड' कहा जाने लगा। इसी को बाद में संस्कृत शब्द बाण द्वारा संस्कार कराकर उसने अपना नाम बाण रख लिया और बाद में लोगों ने भट्ट को आदर एवं स्नेह के कारण उसके नाम के साथ जोड़ दिया तथा उसे बाणभट्ट कहा जाने लगा। कालांतर में वह इसी नाम से प्रसिद्ध हुआ तथा लोग उसका 'दक्ष नाम भूल से गये तथा वह 'बाणभट्ट' नाम से ही अब जाने लगा।'

सामान्यतया बाण प्रारब्धवादी ही था और वह भग्य का बली होते हुए भी परिस्थितियों के साथ चलना जानता था। यद्यपि वह मन का मनचला था लेकिन उसमें संयम की परिपक्वता भी थी तथा उसका सुसंस्कृत मन विद्रोह का समर्थन न करते हुए भी वह कभी-कभी चोट खाए नाग की भांति फुत्कार भर उठता। नारी संसर्ग में रहते हुए भी वासना से दूर रहा क्योंकि वह हमेशा नारी देह को पवित्र देव मंदिर मानता था। एक ओर उसमें शाप देने की शक्ति थी तो दूसरी ओर वह आशीर्वाद देने हेतु भी हाथ उठा सकता था और समाज में पूज्य होने के साथ-साथ राजदरबार में यथोचित प्रतिष्ठा का अधिकारी था। इस प्रकार बाणभट्ट का चरित्र 'विविधता में एकता' का सुंदर उदाहरण है तथा वह अभावों से भरा, घावों से हरा और कर्म से खरा जान पड़ता है तथा परिस्थितियों से प्रेरित होकर ही वह सब कुछ करता रहा है।

**विधि अनुभव एवं गुण-** वस्तुतः 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि बाण का जीवनवृत्त विचित्रताओं से पूर्ण रहा है और उसे अपने

जीवन में अनेक प्रकार के अनुभव भी हुए थे। उसने स्वयं ही कहा है 'आवारा तो मैं था ही। इस नगर से उस नगर में, इस जनपद से उस जनपद में बरसों मारा-मारा फिरता रहा। इस भटकान में मैंने कौन सा कर्म नहीं किया ? इस तरह वह कभी नट बनता, कभी पुतलियों का नाच दिखाता, कभी नाट्य मंडली संगठित करता तथा कभी पुराण वाचक बनकर लोगों को कथा सुनाता। बाण रूपवान तो था ही पर उसमें बोलने की पुटता भी थी और किशोरावस्था एवं जवानी के दिनों में ये ही दो बातें उसकी मदद करती थीं। अतएव बाण ने कोई कर्म छोड़ा नहीं और उसके बहुविधि कार्यकलाप को देखकर लोग उसे 'भुजंग' समझने लगे थे परंतु वह लंपट नहीं था।

**जीवन का नवीन अध्याय-** घुमक्कड़ प्रवृत्ति का बाण अपनी आत्मकथा का आरंभ उस घटना से करता है जब वह घूमते-फिरते स्थाणीश्वर पहुँचता है और वहाँ उसके जीवन का नया अध्याय प्रारंभ होता है। वह महाराज हर्ष के भाई कुमार कृष्णवर्धन के यहाँ पुत्र के नामकरण संस्कार में होने वाले उत्सव में सम्मिलित होने के लिए जाने का निश्चय करता है परंतु पहुँच नहीं पाता क्योंकि मार्ग में उसकी भेंट निपुणिका से हो जाती है। निपुणिका पहले बाण की नाटक मंडली में काम करती थी पर वह एक दिन बिना किसी को बताये कहीं चली जाती है और बाण अपनी नाटक मंडली विसर्जित कर उसे ढूंढने निकल पड़ता है क्योकि उसे भय था कि कहीं वह युवती किसी निकृष्ट आचरण की तरफ न प्रवृत्त हो जाय। यह घटना नारी के प्रति बाण की सम्मान भावना का परिचय देती है तथा स्वयं बाण हमेशा नारी में देव मंदिर की कल्पना करता रहा है। साथ ही जिस समय बाण ने निपुणिका से भेंट की थी उस समय वह अपना प्रिय वेश धारण किए हुए था तथा उसने स्वयं कहा है, "उस दिन मैंने डट के स्नान किया, शुक्ल अङ्गराग किया, शुक्ल पुष्यों की माला धारण की, आगुल्क शुक्ल घौत उत्तरीय धारण किया।" इससे बाण की सुसंस्कृति एवं राजशाही संस्कार आदि का परिचय मिलता है।

निपुणिका के कहने पर बाण विलासप्रिय मौरवरियों के चंगुल से तुवर मिलिद की कन्या राजकुमारी चंद्रदीग्धति के उद्घार के लिए तैयार हो जाता है तथा कुमार कृष्णवर्धन के भवन जाने का विचार त्याग देता है। स्वभाव से ही भावुक और

नारी जाति के सम्मान का पूर्ण ध्यान रखने वाला बाण सीता रूपी राजकुमारी का उद्धार करने के लिए जटायु की भांति प्राण तक देने को तैयार हो जाता है तथा निपुणिका के अनुरोध पर वह नारीवेश में छोटे राजकुल के भवन में प्रवेश करता है। विचारपूर्वक देखा जाए तो राजकुमारी चंद्रदीग्धति-जिसे उपन्यास में मुख्यतया भट्टनी कहा गया है-के उद्धार का साहस और उस प्रयास में बाण की सफलता उसके अनुपम शौर्य मात्र की ही सूचक नहीं, बल्कि नारी के प्रति उसकी आंतरिक भावना का भी परिचायक है। इस तरह "भट्टिनी के उद्धार में भट्ट का साहस, उसकी वाक्पटुता, आत्म-सम्मान, वीरता, विनम्रता, तेज, गांभीर्य, नीति कुशलता आदि सभी लक्षण अपने-अपने प्रसंग और परिस्थिति में पूर्ण रूप से उद्ध हुए हैं।"

**चरित्र विश्लेषण-** सामान्यतया बाण शिष्ट, सभ्य एवं सुसंस्कृत व्यक्ति था और वह मधुर भाषी भी था। वह प्रत्येक परिस्थिति में संतोषपूर्ण जीवन व्यतीत करने का आदी रहा है और चाहे कैसी भी दशा क्यों न हो उसने कभी भी कुलीन वंशीय संस्कृति एवं सभ्यता का त्याग नहीं किया। बाण हमेशा दूसरों के प्रति पूर्ण सम्मान की भावना रखता रहा परंतु वह कभी भी तिरस्कार सहन नहीं कर सकता था और चाहे उच्च अधिकारी से ही बातचीत क्यों न करनी पड़े वह वार्तालाप के समय अपने स्वाभिमान, अन्यतम साहस तथा अटूट विश्वास का ही परिचय देता है। जब वह कुमार कृष्णवर्धन से वार्तालाप कर रहा था तब वह यह जानता था कि कुमार के एक संकेत पर उसका जीवनास्तित्व ही समाप्त हो सकता है और जिस भट्टिनी का वह अभिभावक बना है उसकी भी दुर्दशा हो सकती है पर अपने उद्गारों में वह साहस एवं प्रबल शक्ति आदि गुणों का ही अभूतपूर्व परिचय देता है। इसी तरह वह महाराज हर्ष से उनकी राजसभा में ही विवाद करने को आतुर हो उठता है क्योंकि हर्ष ने उसे 'परम लंपट व्यक्ति कह दिया था और यह सुनकर उसके कान तक की शिराएं लाल हो गयीं तथा तीव्र मानस संताप से उसका संपूर्ण शरीर जल उठा। अगर कुमार कृष्णवर्धन संकेत न करते तो वह राजा की बातों का भी उग्र पतिपाद करने से नहीं चूकता पर वह पूर्ण रूप से मौन नहीं रहता और अपना क्षोभ प्रकट कर ही देता है। यहाँ उपन्यासकार ने बाण के अंतः संघर्ष का सजीव चित्रण किया है तथा इस उपन्यास में कई ऐसे

स्थल हैं जहाँ बाण के अंतः संघर्ष के ऐसे चित्र दीख पड़ते हैं जो उसकी चारित्रित विशेषताओं को स्पष्ट करने में समर्थ रहे हैं।

वस्तुतः अहम भावना तो प्रत्येक व्यक्ति में न्यूनाधिक मात्रा में रहती है तथा बाण में भी वह स्वाभाविक ही दीख पड़ती है पर चाहे कैसी भी स्थिति क्यों न हो वह शिष्टाचार प्रदर्शन का पूर्ण ध्यान रखता है। इस प्रसंग में बाण का आचार्य सुगतभद्र और अघोर भैरव से हुआ वार्तालाप दर्शनीय है तथा महाराज हर्ष द्वारा उपेक्षा दिखाए जाने पर भी वह शिष्टाचार का ध्यान रखता है। यह देखकर कुमार कृष्णवर्धन को कहना पड़ता है कि 'देव, बाणभट्ट पवित्र वंश का तिलक है, उनका उपयुक्त सम्मान होना चाहिए और बाण को महाराज हर्ष की राजसभा का महापंडित घोषित किया जाता है एवं हर्ष ने उसकी प्रशंसा करते हुए राजसभा में यह भी कहा कि तुम अच्छे कवि जान पड़ते हो ।' सत्यभाषी तथा छलरहित बाण प्रत्युत्पन्नति संपन्न व्यक्ति है तथा वह आपदाओं से डरकर साहस नहीं खो देता वरन् परिस्थितियों के अनुरूप करणीय कार्य करने का ध्यान रखता है। हम देखते हैं कि भट्टनी जिस देव-मंदिर में आश्रय लेती है वहाँ के पुजारी का आचरण जानकर पहले तो बाण विचलित हो उठता है पर वह चतुराई के साथ उस लंपट पुजारी को घनत्व के यहाँ भेज देता है। इसी प्रकार चाहे विद्वान एवं शासक हो या फिर कंचू चिकि वाभव्य और धावक के समान विदूषक हों, वह (बाणभट्ट) अपनी वार्तालाप कुशलता का ही परिचय देता रहा है।

बाण आत्म-विश्लेषक भी है तथा जब कभी उसे अवसर मिला है, उसने कार्यों पर स्वयं सूक्ष्म दृष्टि से विचार करते हुए अपने मत एवं हृदय की कमजोरियों का उल्लेख किया है। इसलिए वह निरंतर एक विकासोन्मुखी चरित्र की भांति आगे बढ़ता गया है तथा उसके चरित्र में कहीं-कहीं वैषम्य तथा विरोधाभास की झलक होते हुए भी सतत् गतिशीलता के दर्शन होते हैं। हम देखते हैं कि जब कभी भट्टिनी पर वह कोई मुसीबत आते देखता है तब पहले वह अपने को कोसने बैठ जाता है और प्रारब्ध की बुरा-भला कहकर मन को शांति प्रदान करने का प्रयत्न करता है कि बाण किसी समय पुराणवाचक बनकर तथा भविष्य-फल बना कर सर्वसामान्य जनता को भुलावे में रखता रहा है लेकिन उसका चरित्र लेखक

ने देव-तुल्य ही प्रस्तुत किया है एवं राजनीति के दांव-पेंच से अनभिज्ञ होते हुए भी वह बुद्धिमान एवं नीति कुशल अवश्य था।

**निष्कर्ष** उक्त विवेचना से स्पष्ट हो जाता है कि बाणभट्ट का चरित्रांकन अत्यंत मोहक एवं आकर्षक ढंग से हुआ है और संक्षेप में वह 'आदर्शवादी, प्रेमी, कलाविद्, काव्यानुरागी, स्वाभिमानी, प्रत्युत्पन्नमति, शिष्टाचार संयुक्त, प्रगल्भ, गंभीर, सहनशील और हास्यप्रिय पात्र है तथा सब प्रकार से उपन्यास का नायक होने योग्य है। उसका चरित्र स्फटिक की तरह स्वच्छ, मणि की तरह कांतिमान तथा मनुष्य की तरह भाव गफन से संयुक्त है।'

**बाणभट्ट की आत्मकथा में प्रेम के स्वरूप का निरूपण**

प्रेम दुःखों की सरिता, आँसुओं का सागर, मृत्यु की उपत्यकता और जीवन की चरम परिणति है यानी आत्मोत्सर्ग है। तभी तो किसी कवि ने कहा है कि यह 'प्रेम को पंथ करार महा, तरवार की धार पैधावनों है।' आज प्रेम के नाम पर जो देह भोग की प्रबलता और वासना का विज्ञापन देखने को मिलता है वह तो व्यक्ति की आदिम पाशविकता पर एक मुलम्मा मात्र है। आधुनिक या माडर्न, होने की हविस में लोगों ने प्रेम को 'रम' रेस्टॉरेंट्स, क्लब ट्विस्ट और 'हट' के सुपुर्द कर दिया। बस फिर क्या प्रेम के नाम पर न जाने कौन-कौन से विकार खेल खेलने लगे हैं। साहित्य में भी इस व्यक्तिक्रम के दर्शन प्रचुर मात्रा में होने लगे हैं। यह सब हमारे विनाश की व्यवस्था है। प्रेम वस्तुतः आत्मिक है, सूक्ष्म है, निगूढ़ है। विशुद्ध प्रेम दैहिक नहीं होता। उसमें प्रदर्शन तथा भोग की लिप्सा नहीं होती है। देह तो एक मंदिर मात्र है जिसमे प्रेम देवता वास करते हैं।

बाणभट्ट की आत्म-कथा में प्रेम के ऐसे ही अतृप्त रूप का निरूपण है। भट्ट, निपुणिका और भट्टिनी एक-दूसरे के लिए उत्सर्ग करने को प्रतिफल तत्पर रहते हैं लेकिन इस प्रेमत्रयी में कहीं किसी भी तरह के विकास के दर्शन नहीं होते। दरअसल इसमें प्रेम का स्वरूप अत्यंत उलझन पूर्ण तथा अस्पष्ट है। न कहीं उदय की अरुणिमा फैलती है और न कहीं उदय फैलती है तथा न ही प्रस्फुटन की चटकन श्रुतिगोचर होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि 'भस्मावृत्त अग्नि-कणिका की भांति प्रेम ने तिरोभाव से आविर्भाव प्राप्त किया है।' इस कथा में सर्वत्र प्रेम की व्यंजना गूढ़ तथा अदृप्त भाव से हुई है। कथा का जिस ढंग से

प्रारंभ हुआ है उसकी स्वाभाविव्ङअरिजित् गूढ़ तथा अदृप्त प्रेम ही हो सकती है। (डॉ. द्विवेदी)

अदृप्त प्रेम की सत्ता संदेहास्पद मानी जाती है लेकिन इसमें कोई शक नहीं कि अतृप्त प्रेम में ही उच्चतम आदर्श खोजा जा सकता है। हाँ, इतना है कि वह आत्म-विसर्जन के पीछे निहित रहता है। अतः जब तक आत्म-निसर्जन का द्वार नहीं खुलता, इस प्रेम की झांकी नहीं मिल सकती।

प्रस्तुत आत्मकथा में प्रेम के जिस रूप का प्रत्यक्ष होता है उनमें प्रथम तो इस सत्य पर आदृप्त है कि नर-लोक से किन्नर-लोक तक एक ही रागात्मक हृदय व्याप्त है अतः स्तर भेद और संघर्ष समाज में (प्रेम की दृष्टि से) सहज न होकर आरोपित हैं। दूसरा, प्रेम यहाँ मानसिक विकारों के रूप में ही प्रकट हुआ है। हाव तथा अनुभावों का इसमें अभाव सा ही है। तीसरा, उत्स या तो श्रद्धा है या सहानुभूति है। दैहिक सौंदर्य या माँसलता का लोभ नहीं। इसमें प्रेम को एक ओर अविभाज्य बतलाया है जो ईर्ष्या और द्वेष से कोसों दूर होता है।

आत्म-कथा में बाण भट्ट के इसी प्रेम की झांकी दी गई हैं। पाठक बाणभट्ट की आत्मकथा में प्रवेश करके ही नर-लोक से किन्न-किन्न लोक तक व्याप्त प्रेम के अरुणिम दृश्य देख सकते हैं। भट्टिनी का यह कथन देखिए, "तुम्हीं ऐसे हो जो नर-लोक से किन्नर-लोक तक व्याप्त एक ही रागात्म हृदय एक ही करुणायत चित्र को हृदयगत करा सकते हो। मनुष्य लोभवश, मोह-वश, द्वेष-वश पशुता की तरफ बढ़ता जा रहा है। तुम इसके हृदय को संवेदनशील और कोमल बना सकते हो।"

'प्रेम का अयुक्त निर्वहन अभिशाप भी बन जाता है।' यह सुंदरता का आधार है। तपोनिष्ठ प्रेम ही वास्तविक प्रेम है। तपस्या के भीतर से प्रेम का भौतिक रूप अविभत होता है। 'पार्वती की तपस्या से सच्चे प्रेम की वे देवता आविर्भूत हुए थे, जो भस्म हुआ वह आधार, निन्द्रा के समान जड़े शरीर का विकार्य धर्म मात्र था। वह दुर्वार था परंतु देवता नहीं था, देवता दुर्वार नहीं होता।' पर इसका यह अर्थ नहीं कि प्रेम का शरीर से कोई संबंध नहीं होता, शरीर प्रेम की सिद्धि का साधन है। हृदय बंधते हैं और शरीर खिंचते हैं।

कथा में सर्वत्र प्रेम की व्यंजना गूढ़ तथा अदृप्त भाव से हुई। यह कथाकार का कौशल ही नहीं आदर्श है कि 'प्रेम की अभिव्यक्ति तो हो जाती है। पर मुखर होकर सामने नहीं आती।' भट्ट का यह मानसिक द्वंद्व देखिए-
मैंने स्वेच्छा से यह कैसा बंधन अपने लिए तैयार कर लिया है। मेरी रात अपनी नहीं है। मेरा मन अपना नहीं है। यह पराधीनता तो तुमने स्वयं मोल ली है। मुझे सबसे ज्यादा आश्चर्य इस बात पर हुआ कि एक बार भी मेरे मन ने विद्रोह नहीं किया।' कैसी विडम्बना है कि वाण भट्ट भट्टिनी के लिए आत्मोत्सर्ग में ही अपनी सार्थकता समझता है तथा भट्टनी भी महामाया के समक्ष कुछ में से किसी का प्रेम भी मुखर नहीं होता। गूढ़ और अदृप्त प्रेम में कन्या सी स्वाभाविक परिणति दिखाकर कथाकार ने न तो वास्तविकता से किनारा किया है और न प्रेम को कुंठा प्रवाह में ही नहाने दिया है। (डॉ. सारानाम सिह)

यहाँ करुणाजनक संयोग के बीच सहानुभूति के रागात्मक वातावरण में मर्म वेदना का जो स्पर्श होता है वही तो प्रेम की उषा का पदार्पण होता है। निपुणिका के जीवन की दाहकता भट्ट को करुणाभिभूत कर देती है। जब निपुणिका कहती है कि 'मेरी ही शपथ करके तुम सत्य-सत्य कहो आर्य ! मेरा कौनसा ऐसा पाप चरित्र है जिसके कारण मैं आजीवन दुःख की विदारुण भट्टी में जलती रही ?

क्या स्त्री होना ही मेरे अनर्थों की जड़ नहीं है? तो भट्ट का यह विचारना है कि 'इन शब्दों में कितना मर्मन्तिक दुःख है।' इसे मैं ही जानता हूं।' कितना सहानुभूति-पूर्ण लगता है। यही हृदय से हृदय तक की पहुँच है। इससे अधिक गहन वाचिक अनुभाव तथा क्या हो सकता है? आलंबन का उत्कर्ष दिखाने वाले ये काययिक अनुभाव तो और भी महत्वपूर्ण हैं 'निपुणिका में इतने गुण है कि वह समाज और परिवार की पूजा का मात्र हो सकती थी, पर हुई नहीं.. वह हंसमुख है, कृतज्ञ है, मोहिनी है, लीलावती..।'
निपुणिका के संबंध में भट्ट के इस गुण-कथन में प्रकट उत्साह में व्याप्त अनुराग लहरी की आर्द्रता सहज ही अनुभव की जा सकती है। प्रिय के लोक-विधायक गुणों का गान अंतस्थ रागात्मकावृत्ति का उन्नायक तथा परिचायक है। एक अन्य स्थल पर भी बाण का निपुणिका के प्रति अनुराग का प्रत्यक्ष होता है

जहाँ वह इतना तक कहने में नहीं चुकता कि उसके गुणों पर न रीझने वाला हृदय पाषाणसम कठोर है, "चारुस्मिता निपुणिका जैसी सेवा-परायणा, लीलावती ललता से प्रति जिस पुरुष की श्रद्धा और प्रीति उच्छवसित न हो उठे वह जड़ पाषाणपिण्ड से अधिक मूल्य नहीं रखता।" भट्ट का यह प्रेम एकांकी नहीं है। यहाँ तो दोनों तरफ प्रेम पलता है वाली बात है। निपुणिका का अंतःकरण भी भट्ट के प्यार में लगा रहता है। स्वयं भट्ट के मनोगत भावों का अनुशीलन ही उसका साक्षी है। "आज भी उसके हृदय मंदिर के अत्यंत निमृत कक्ष में, कोई देवता स्तब्ध है जो निश्चय ही मेरी मौन पूजा से ही संतुलित रहता है।" यहाँ से पंत की एक पंक्ति याद आ रही है फिर तुम, तुम से, मैं प्रियतम में, हो जाए द्रुत अंतर्धान।' यहाँ पर जलने वाली प्रेम दीप सिखा यह नहीं चाहती कि 'पतंगा' भी उसमें जल कर भस्म हो। यहाँ तो इसी में संतोष है कि तुमने इस गंधहीन पुष्प को चरणों तक पहुँचने देने के अयोग्या नहीं समझा।' भट्ट द्वारा नाटक मंडली तोड़ने में भी निपुणिका उसके अपने प्रति अनुरक्ति ही देखती है। विशुद्ध प्रेम हेतु यह जरूरी है। विशुद्ध प्रेम के लिए यह जरूरी नहीं कि वह यह कहे कि 'प्रिय' में तुम्हें प्यार करती हूं।

वहाँ तो जीवन का हर क्षण, चेतना का हर कण अनुराग-रंजित है। यदि अब भी संतोष न हुआ हो तो एक बार और, भट्ट का यह मर्म-उद्गार देखिए, "हाय मेरी प्राण रक्षा के लिए उसने सम्मोहन की प्रति-प्रसव की बलिवेदी पर अपने को होम दिया है अंत में।" वाभ्रण्य से सुने अवधूतपात के इस विचार को वह आत्मसात् कर लेती है कि अपने को विशेष भाव से देना ही वशीकरण है। प्रमाण भी शीघ्र ही मिल जाता है जब अपने अंत से पूर्व वह कहती है, "भट्ट तुम नहीं देखते कि वासवदत्ता ने किस तरह दो विरोधी दिशाओं में जाने वाले प्रेम को एक सूत्र कर दिया है। प्रेम एक और अविभाज्य है। उसे सिर्फ ईर्ष्या तथा असूया ही विभाजित करके छोटा कर देते हैं।"

इसी भांति भट्टिनी के सामने भी बाण अपने को निःशेष भाव से उंडेल देने में ही अपनी सार्थकता समझता है। उसका हृदय द्रवित नवनीत की नाई अपनी आराध्या भट्टिनी के समक्ष ढुरक पड़ना चाहता है। वह चाहता है कि उसका कण-कण भट्टिनी को जाय। और कहीं, स्त्रियों में जो समर्पण भाव देखा जाता

है वह यहाँ भट्ट दृष्टिगोचर होता है। भट्ट के लिए भट्टिनी के पाणि-पल्लवों के स्पर्श के आगे स्वर्ग का परिजात-पल्लव तुच्छ कल्पना है और काल्पनिक अमृत की अपेक्षा उसकी करतलस्रावी स्वेद धारा अधिक भ्रामक है। तीर तो वह कि बेध दे और पता भी न चले। 'देव-मंदिर का उद्धारकर्ता भट्ट न जाने कब भट्टिनी के आलौकिक रूप-मंडल से विकर्ण हुई किरणों से सम्मोहित हो जाता है इस बात का उसे अहसास ही नहीं होता "आखिर वह कौनसा अंतर्विकार है जो मेरे चित्त को जड़ बना रहा है और मेरी बुद्धि को मोह-ग्रस्त बना रहा है। मेरे लिए उसका उत्तम पाना कठिन हो रहा है आज मैं स्वयं अपने समस्या हो रहा हूं।" हर स्थल पर बाण का अंतस्थ अनुराग श्रद्धा के समक्ष सिर नहीं उठा पाता। हर कहीं संस्कारों का आवरण झूलता रहता है फिर भी सहृदय पाठक को पूर्णतः निराश नहीं होना पड़ता है।

जब जरा भट्टिनी के हाल पर भी गौर कीजिए। भट्ट के मुख से प्रथम वाक्य सुनते समय उसे अपने जीवन का अनुभव होता है। भट्ट से मिलना वह अपने जीवन की सार्थकता मानती है। अंतस्थ प्रणय का इससे अधिक प्रत्यक्षीकरण और क्या होगा ? उसके लिए भट्ट इस पारिजात है। भैरवी महामाया के समक्ष तो वह अथवा हृदय ही खोल कर रख देती है। भट्टिनी के मुंह पर संयम और लज्जा के ताले लगे रहते हैं। पर भाव जब इतने घनीभूत हो जाते हैं कि मन में सिमटते ही नहीं तब राग का गुलाबी, प्रभा-मंडल उसके इर्द-गिर्द छा जाता है। भट्ट की देवी, अशोक वन की सीता, स्वीकार कर लेती है कि 'मैं देवी नहीं हूं मैं हूं चंद्रदीधति सौ-सौ बालिकाओं के समान एक बालिका। मैं हूं तुम्हारी भट्टिनी। यद्यपि वह भट्ट में निपुणिका की अनुरक्ति से परिचित होती है तो भी भट्ट के प्रति उसकी तरलता में कोई अंतर नहीं आता। प्रेम व्यक्ति का हृदय विशाल बना देता है इसका उदाहरण तब मिलता है जब निपुणिका विकल होकर भट्ट के चरण जकड़ लेती हैं और भट्टिनी कहती है, मत छुड़ाओ भट्ट, उसे शांति मिल रही होगी।" प्रेम का अर्थ बंधन नहीं, व्यक्तित्व का परिसीमन नहीं। भट्टिनी का अनुराग इंस कथन का मूर्त आदर्श है कि नारी सार्थकता पुरुष को मुक्त करने में है।

इस प्रकार भट्ट, निपुणिका तथा भट्टिनी प्रेमत्रयी अदृप्त प्रेम के निर्वहन की दृष्टि से स्पृहणीय है। सुचरिता, विशश्तिज्र तथा भट्ट का 'मंडल' भी प्रेम के इसी रूप के साधन-पथ पर अग्रगामी है। सुचरिता और भट्ट का प्रेम भद्धाद्भुत है और सुचरिता और विरतिवज्र का प्रेम महामाया तपापूत है। लेकिन इसका अधिक प्रस्फुटन नहीं हुआ है। महामाया और अघोर भैरव भी इस संदर्भ में विचारणीय हैं।

## *5.5 काव्य में लोक मंगल की साधनावस्था विषयवस्तु*

आलोच्य निबन्ध में शुक्लजी ने काव्य में लोक-मंगल की साधनावस्था और सिद्धावस्था का विवेचन किया है। सत्, चित् और आनन्द-तीन स्वरूपों में काव्य भक्ति के ही समान आनन्द स्वरूप को लेकर चलता है। इस आनन्द की अभिव्यक्ति की भी साधनावस्था और सिद्धावस्था दो अवस्थाएं होती हैं। जिस प्रकार शिशिर प्रताड़ित वनस्थली में बसन्तश्री और माधुरी प्रकट होती है, उसी प्रकार लोक की पीड़ा के मध्य में लोक-मंगल की आनन्द-विधायिनी कला प्रकाशित होती है। काव्य में कुछ कवि अपनी रुचि के अनुसार सिद्धावस्था को ग्रहण कर हर्षोल्लास, माधुर्य, सुषमा आदि का चित्रण करते हैं, जैसा कि सूरदास ने किया है। कुछ कवि साधनावस्था को ग्रहण कर पीड़ा, अन्याय व अत्याचार के दमन की ओर उन्मुख शक्ति को काव्य का आश्रय बनाते हैं, जैसाकि गोस्वामी तुलसीदास ने अपने काव्य में किया है। इस प्रकार काव्यों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता

(1) आनन्द की साधनावस्था के काव्य ।

(2) आनन्द की सिद्धावस्था अर्थात् उपभोग पक्ष को लेकर चलने वाले काव्य ।

आनन्द की साधनावस्था को लेकर चलने वाले काव्यों में भक्ति-काव्य आता है। यथार्थ में कला की आवश्यता दोनों ही प्रकार के काव्यों में होती है। साधनावस्था को लेकर चलने वाला काव्य भी यदि कला-विहीन है, तो वह हृदय पर स्थायी प्रभाव डालने में सक्षम नहीं होगा। वह न तो पाठकों को रसानुभूति करा सकेगा और न साधारणीकरण ही कर सकेगा। रामायण, महाभारत, रघुवंश, शिशुपाल वधि, किरातार्जुनीयम्, रामचरितमानस, उत्तर-रामचरित, पृथ्वीराज रासो, हम्मीर

रासो, छत्रप्रकाश, आल्हा, भूषण का वीररसपूर्ण काव्य इसी क्षेत्र में आता है। सिद्धावस्था अथवा उपभोग पक्ष को लेकर चलने वाले काव्य में भी कवि माधुर्य-सुषमा और आनन्दोल्लास का ही चित्रण करते हैं। आर्यासप्तशती, अमरुकशतक, गीत-गोविन्द, सूरसागर, बिहारी सतसई आदि आनन्द की सिद्धावस्था के काव्य हैं।

जब धर्म और मंगल की ज्योति अधर्म और अमंगल की घटा फाड़ती हुई निकलती है, तो जन-जन का हृदय उसकी ओर आकर्षित हो जाता है। उस ज्योति में जहाँ कुलिश की कठोरता होती है, वहाँ कुसुम की कोमलता भी। कवि जिस अन्याय, अत्याचार और उत्पीड़न का चित्रण करता है, उसके भीतर लोक-मंगल की आनन्द-विधायिनी आभा प्रतिबिम्बित होती है। अन्याय, अत्याचार और अधर्म के विनाश के लिए जो प्रयत्न होता है, उस प्रयत्न का एक विशिष्ट सौन्दर्य है। यह प्रयत्न अन्त में सफल हो चाहे असफल, परन्तु उसमें विशेष सौन्दर्य प्रस्फुटित होता है। प्रायः कवियों ने मंगल और अमंगल के द्वन्द्व में मंगल की, धर्म और अधर्म के द्वन्द्व में धर्म की एवं न्याय और अन्याय के द्वन्द्व में न्याय की विजय दिखाई है, कुछ विद्वानों की दृष्टि में यह प्रवृत्ति उपदेशात्मक और अस्वाभाविक है। यथार्थ में कवि उपदेशक नहीं होता। वह तो अच्छे कर्म का अच्छा और बुरे कर्म का बुरा परिणाम सामने लाकर मानव-वृत्तियों का परिष्कार करता है। इस प्रकार बुरे कर्मों का पराभव देखकर मनुष्य की वृत्ति सत्य, धर्म और न्याय की ओर स्वयं ही उन्मुख हो जाती है। सत्पात्र का कर्म-सौन्दर्य मनुष्य को प्रभावित करता है और वह उसे देखकर आनन्द-विभोर हो जाता है।

काव्य में मंगल-विधायिनी शक्ति को कर्म-सौन्दर्य के साथ रूप-सौन्दर्य भी प्रदान किया जाता है। राम और कृष्ण हमारे यहाँ युग-युग से अपने कर्म-सौन्दर्य से जन-मानस को मुग्ध करते रहे हैं। महाकवि इस कर्म-सौन्दर्य और रूप-सौन्दर्य का सन्तुलित समन्वय अपने काव्य में करते हैं।

मनुष्य में कोमलता के साथ कठोरता, मृदुलता के साथ तीक्ष्णता रहती है। परन्तु यह कठोरता और तीक्ष्णता आनन्दकारी ही होती है, जिसके मूल में लोकमंगल का पुनीत आदर्श रहता है। पाठक राम को रावण के प्रति क्रोध प्रकट करते देखकर स्वयं भी क्रोध में अभिभूत हो जाता है। परन्तु राम के प्रति रावण

के अभिव्यक्त क्रोध में विरक्ति और घृणा का अनुभव करता है। इस प्रकार लोक-मंगल में प्रदत्त सत्पात्र का क्रोध और घृणा भी रसानुभूति का स्त्रोत बन जाती है, क्योंकि उसके मूल में धर्म और मंगल होता है।

लोक-मंगल का विधान करने वाले मानव हृदय के अनन्त भावों में से केवल दो ही भाव हैं और वे हैं-'करुणा' और 'प्रेम'। करुणा का भाव जहाँ बाह्य रक्षा की ओर ले जाता है, वहाँ प्रेम रंजन की ओर अग्रसर करता है। प्रेम में प्रधानता करुणा की ही है। राम रावण का वध केवल प्रेम के वशीभूत होकर ही नहीं करते, अपितु वे तो मुनि-अस्थि-समूह देखकर करुणार्द होकर पहले ही 'निसिचर-हीन करौं मही' की प्रतिज्ञा कर चुके हैं। राम द्वारा ताड़का, मारीच और रावण वध में करुणा प्रेरित लोक-मंगल की भावना है। शुक्लजी ने करुणा को लोक-मंगल का कारण मानते हुए कहा है-"भावों की छान-बीन करने पर मंगल का विधान करने वाले दो भाव ठहरते हैं-करुणा और प्रेम । करुणा की गति रक्षा की ओर होती है और प्रेम की रंजन की ओर। लोक में प्रथम साध्य रक्षा है। रंजन का अवसर उसके पीछे आता है। साधनावस्था या प्रत्यक्ष पक्ष को लेकर चलने वाले काव्य का बीज भाव करुणा ही ठहरता है।"

काव्य में कोमल और मधुर भावों का तो महत्त्व है ही, परन्तु उग्र और प्रचण्ड भावों का भी महत्त्व कम नहीं है। शुक्लजी का कथन है- "मनुष्य के शरीर में जैसे दक्षिण और वाम दो पक्ष हैं, वैसे ही उसके हृदय के भी कोमल और कठोर, मधुर और तीक्ष्ण-दो पक्ष हैं और बराबर रहेंगे। काव्य-कला की रमणीयता इन दोनों पक्षों के समन्वय के बीच मंगल या सौन्दर्य के विधान में दिखाई पड़ती है।"

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि आलोच्य निबन्ध में शुक्लजी ने लोकमंगल की विविध विधियों पर व्यावहारिक प्रकाश डाला है।

शुक्लजी ने 'काव्य में लोक-मंगल की साधनावस्था' शीर्षक निबन्ध में आनन्द की साधनावस्था और सिद्धावस्था के काव्य के अन्तर का जो निरूपण किया है और उसमें माधुर्य की जो उद्भावना की है,

आलोच्य निबन्ध में शुक्लजी ने लोक-मंगल की विविध विधियों, उनमें सर्वश्रेष्ठ विधि, काव्य में लोक-मंगल एवं माधुर्य की प्रतिष्ठा आदि का सम्यक और व्यावहारिक निरूपण किया है। शुक्लजी की अभिव्यक्ति सूत्रात्मक शैली में है। काव्य का आदर्श आनन्द और माधुर्य है-हृदय दृश्य-जगत के बीच जिस आनन्द मंगल की विभूति का साक्षात्कार करता है, उसी का प्रकाश राम-राज्य कहलाता है। भारतीय भक्ति-मार्ग में नारायण की इसी दिव्य कला का सम्यक दर्शन हुआ है। बह्य के सत्, चित् और आनन्द-तीन स्वरूप हैं। इनमें काव्य और भक्ति-मार्ग 'आनन्द' स्वरूप को लेकर चले हैं। लोक में इस आनन्द की साधनावस्था और सिद्धावस्था-दो अवस्थाएं पाई जाती हैं। काव्य में सृजन इन दोनों अवस्थाओं को लेकर ही होता है। कुछ कवि ऐसे भी होते हैं, जिनका मन सिद्धावस्था या उपभोग पक्ष की ओर नहीं जाता, जैसे भूषण और कुछ लोग सिद्धावस्था के आनन्द में ही काव्य-सृजन में लगे रहते हैं। रामायण, महाभारत, रघुवंश, रामचरितमानस आदि साधनावस्था को लेकर चलने वाले काव्य हैं। आर्या-सप्तशती, गीत-गोविन्द, सूरसागर, बिहारी सतसई आदि सिद्धावस्था के काव्य हैं। इस प्रकार काव्य के निम्नलिखित दो भाग हो जाते हैं-

1. आनन्द की साधनावस्था या प्रयत्न को लेकर चलने वाले काव्य ।
2. आनन्द की सिद्धावस्था या उपभोग पक्ष को लेकर चलने वाले काव्य ।

डण्टन ने जिसे शक्ति-काव्य कहा है, वह प्रथम प्रकार के काव्य के अन्तर्गत आता है।

**आनन्द की साधनावस्था-** ब्रह्म की जो आनन्द-कला शक्तिमय रूप धारण करती है, उसकी भीषणता में भी अद्भुत मनोहरता और प्रचण्डता में भी आर्दता दिखाई पड़ती है-भीषणता और सरसता, कोमलता और कठोरता, कटुता और मधुरता और मृदुता का सामंजस्य ही लोक-धर्म का सौन्दर्य, अमंगल, अत्याचार, क्लेश इत्यादि भी रखते हैं, शेष, हाहाकार और ध्वंस का दृश्य भी लाते है परन्तु सारे रूप, भाव और व्यापार भीतर ही भीतर आनन्द कला के विकास में ही योग देते देखे जाते हैं। आनन्द कला के प्रकाश की ओर बढ़ती हुई गति की विफलता में भी सौन्दर्य का दर्शन कराने वाले अनेक कवि हुए हैं। शैली के 'इस्लाम का विप्लव' महाकाव्य

में नायक-नायिका मंगल शक्ति के अपूर्व प्रकाश की छटा दिखाकर अन्त में विफलता के विषाद की छाया से आवृत्त देखे जाते हैं।

कवि स्वयं सौन्दर्य से प्रभावित होता है और दूसरों को भी प्रभावित करना चाहता है। तुलसी के राम जैसे पराक्रमशाली हैं, उनका रूप माधुर्य भी वैसा ही लोकोत्तर है। प्रयत्नावस्था को लेकर चलने वाले कवि सौन्दर्य के साथ में रूप-सौन्दर्य का समन्वय करते हैं। कर्म-सौन्दर्य के जिए स्वरूप पर मुग्ध होना मनुष्य के लिए स्वाभाविक है और जिसका विधान कवि परम्परा बराबर करती चली आ रही है, उसके प्रति हम उपेक्षा सहन नहीं कर सकते। मानव हृदय में कोमल और कठोर, मधुर और तीक्ष्ण, दो पक्ष बराबर रहते हैं, अतः काव्य-कला की पूरी रमणीयता इन दोनों पक्षों में समन्वय के बीच मंगल या सौन्दर्य के विधान में दिखाई पडती है।

मंगल का विधान करने वाले करुणा और प्रेम-दो भाग ही ठहरते हैं। करुणा जहाँ रक्षा करती है, वहाँ प्रेम रंजन करता है। परन्तु लोक में प्रथम साध्य रक्षा है। रंजन का अवसर रक्षा के पीछे ही आता है। भवभूति ने अपने नाटकों में करुण रस की को प्रधानता दी है। आदिकवि वाल्मीकि का हृदय व्याध द्वारा क्रौंच-वध देखकर करुणा से आर्द हो उठा और यही करुणा रामायण की रचना का कारण बनी। राम रावण का वध दाम्पत्य-प्रेम के कारण सीता ही के लिए नहीं करते, अपितु अस्थि-समूह देखकर करुणा से अभिभूत होकर वे पहले ही 'निसिचरहीन करौं मही' की प्रतिज्ञा कर चुके थे।

आनन्द की सिद्धावस्था लेकर चलने वाले कवियों का ही 'प्रेम' बीज-भाव मानना ठीक है, आनन्द की साधनावस्था लेकर चलने वालों का नहीं। परन्तु आनन्द की साधनावस्था को लेकर चलने वाले यूरोपीय लोक-मंगलवादियों का एक दल, जिसके अनुयायी हमारे यहाँ रवीन्द्रनाथ टैगोर भी हैं, साधना और कोमलता के बाहर नहीं जाना चाहते। ये काल के कोमल और मधुर पक्ष में ही लीन रहते हैं। काव्य के सिद्धावस्था के आनन्द में रंजन का पूर्ण प्रसार दिखाई पड़ता है। आनन्द काव्य के सिद्धावस्था या उपयोग पक्ष का प्रदर्शन करने वाली काव्य-भूमि दीप्ति, प्रेम का पूरा शासन स्वीकार करके सुखात्मक हो जाते हैं। रवीन्द्रनाथ

का लक्ष्य आनन्द की सिद्धावस्था या उपभोग-पक्ष को भाषित करने वाली भूमि की ओर है। निम्न उदाहरण में आनन्द का उल्लास है-

'बाहर जिस अखण्ड आकाश में ग्रह-ताराओं का मेला लगा रहता है, उसकी असीमता का आनन्द सिर्फ हमारे अनुभव में ही है।'

शोभा और दीप्ति की लोकोत्तर कल्पना हमारे यहाँ के भक्तों में भी भगवान की विभूतिमयी भावना ही मानी जाती है।

**माधुर्य-** माधुर्य का आकर्षण असामान्यता, दीप्ति, चमत्कार इत्यादि से सर्वथा भिन्न है। सामान्य से सामान्य और तुच्छ से तुच्छ वस्तुओं और दृश्यों में भी माधुर्य का पूरा आकर्षण रहता है। शुक्लजी ने लिखा है-

"हृदय की पूरी व्यापकता हम दीप्ति और माधुर्य, असामान्य और सामान्य दोनों पक्षों के रसात्मक ग्रहण में मानते हैं।"

प्रत्येक देश के सच्चे कवियों ने सीधे-सीधे और सामान्य में भी बराबर माधुर्य का अनुभव किया है। राग-सौन्दर्य के अन्तर्गत दीप्ति और माधुर्य दोनों ही मिले रहते हैं। शुक्लजी कविता को भाव-योग की साधना मानते हैं-

"भाव-धारा के भीतर-भीतर चलने वाली, जो भाव-धारा है, वह माधुर्य की है। 'कविता क्या है' नामक प्रबन्ध में काव्य को हमने भाव-योग कहा है। इस भाव-योग की चरम साधना से हृदय को जो मुक्तावस्था प्राप्त होती है, वह इसी माधुर्य की अनुभूति के सहारे। भेद में अभेद की रसात्मक प्रतीति इस माधुर्य का स्वाद है, जिसे हमारे यहाँ के भक्तों ने भगवान का प्रसाद बताया है।"

## *5.6 अशोक के फुल का सारांश*

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने अशोक के फूल की सांस्कृतिक परम्परा का विघटन किया है। द्विवेदी जी को इस बात का क्षोभ है कि यह फूल आज नहीं मिलता है, क्योंकि इस फूल का किसी समय में काफी साहित्यिक महत्त्व रहा है। लेखक ने इस फूल की हजारों वर्ष की साधना को वर्णित किया है तथा प्रत्येक के हाथों में उसकी प्रशंसा को प्रतिष्ठित करने के लिए तथा न्यौछावर करने के लिए फूल भी प्रदान किये हैं-

**(1) फूल का मनोहारी रूप-** अशोक के छोटे-छोटे लाल-लाल फूल बहुत ही मनोहारी होते हैं। इस फूल की मनोहारिता पर रीझकर, कामदेव ने अपने शरीर में भी इस फूल को स्थान दिया है। अशोक का यह फूल इतना मनोहारी होता है कि इसको देखकर मन उल्लासित हो जाता है।

**(2) फूल का साहित्यिक** रूप अशोक के इस पुष्प का बहुत ही साहित्यिक महत्त्व है। संस्कृत साहित्य में कालिदास ऐसे विद्वान हुए है, जिन्होंने इस फूल का सर्वप्रथम साहित्यिक वर्णन किया है। यह फूल कालिदास के ग्रन्थों में सौकुमार्य का भार लेकर नववधू के नव प्रवेश की भाँति शोभित है।

भारत में, जब मुस्लिम शासन प्रारम्भ हुआ तब इस फूल से सुशोभित साहित्य भी लुप्त हो गया। कालिदास ने, इस फूल को, इतना कोमल बताया है कि यह फूल सुन्दरियों के कोमल आघात से ही फूलने लगता है और उसके कपोलों पर सुशोभित होकर आभूषणों की तरह शोभा बढ़ाता है। यह फूल तो भगवान शिव के हृदय में तथा भगवान राम के हृदय में भी भ्रम पैदा कर देता है। कवियों ने अपने काव्य में कामदेव के बाणों का वर्णन किया है, लेकिन अशोक का फूल ऐसा फूल है, जिसको प्रायः सभी कवियों ने भुला दिया है। कवियों में अरविन्द, आम तथा नीलोत्पल को प्रायः सभी ने याद किया है, लेकिन नवमल्लिका को कभी नहीं पूछा गया और अशोक को तो प्रायः सभी के द्वारा बिल्कुल ही भुला दिया गया है।

**(3) फूल का भारतीय साहित्य में प्रवेश-** अशोक के फूल का भारतीय धर्म एवं साहित्य में प्रवेश एक (ईस्वी) के प्रारंभ में हुआ था, क्योंकि यक्षों और गंधर्वों के द्वारा भारतीय धर्म साधना में परिवर्तन कर दिया गया। कंदर्प और गंधर्व के उच्चारण में भी विद्वानों द्वारा भेद किया गया है। फूल आर्येत्तर भारत की देन माना जाता है। इसलिए कंदर्प द्वारा अशोक को अपनाया गया था। इसका कारण यह भी था कि इन जातियों द्वारा विभिन्न देवताओं की पूजा की गई थी। यद्यपि कंदर्प शिव-विष्णु आदि देवताओं से पराजित हो गया था, फिर भी वह झुका नहीं और उसने फूल के बल पर समस्त शक्ति साधना को झुका दिया था।

**(4) भारतवर्ष का आकार एवं फूल की स्थिति-** भारतवर्ष का आकार इतना विस्तृत एवं व्यापक था कि गुरुदेव रवीन्द्रनाथ जी ने भारत को महामानव का समुद्र

कहकर पुकारा है, क्योंकि यहाँ पर असुर, आर्य, शक, हूण, नाग, यक्ष, गंधर्व जातियाँ आकर बस गई और एक समन्वित भारत का निर्माण किया गया। आर्यों तथा आर्येतर उपादानों का अद्भुत सम्मिश्रण ही हिन्दू जाति कहलाती है। समस्त पुष्पों तथा पशु-पक्षियों की अपनी परम्परा रही है। वामन पुराण में यह दृष्टान्त आता है कि, "कामदेव ने शिव पर प्रहार किया और वह स्वयं भस्म हो गया, उसका धनुष पृथ्वी पर गिरकर टूट गया। मूठ का स्थान चम्पा के फूल ने, हीरे के बने नाहा का स्थान मौलश्री के फूल ने, इन्द्र नीलमणि से बना, कोटि देश सुन्दर पाटल पुष्प, चन्द्रकांत मणियों से बने भाग से चमेली और विद्रुम से बनी कोटि बेला बन गई।"

**(5) फूलों की साहित्यिक चर्चा-** एक निश्चित अवधि से पूर्व, हमारे साहित्य में फूलों की चर्चा नहीं होती थी। गन्धर्व ही सोमरस का विक्रय करते थे। ऐसा विवरण ब्राह्मण ग्रन्थों में मिलता है, क्योंकि ब्राह्मण ग्रन्थों में यज्ञ की विधि का भी उल्लेख मिलता है, जबकि बौद्ध साहित्य में इसको बुद्ध को बाधा देने वाला कहा गया है। फूलों की चर्चा महाभारत की कथाओं में भी वर्णित है। इस सम्बन्ध में महाभारत में लिखा गया है कि, "सन्तान की इच्छुक स्त्रियाँ वृक्षों के देवताओं के पास जाती रही हैं, जो विलासिता का प्रतीक है। यह कहा जाता है कि चैत्र शुक्ल अष्टमी को सन्तान की कामना रखने वाली स्त्रियाँ इनके पास जाती थीं। महारानियों के पद-प्रहार से यह खिलता था। कहा जाता है कि इसकी आठ पत्तियाँ चबाने मात्र से ही सन्तान की प्राप्ति स्त्री को हो जाती थी। इसलिए बौद्ध, गया, साँची आदि में ऐसे वृक्षों के साथ, नग्न स्त्रियों की भी मूर्ति देखने को मिलती हैं। ये औरतें कटिं प्रदेश में मेखला पहनती हैं। अशोक के फूल प्रायः दो प्रकार के पाये जाते हैं-प्रथम, लाल तथा द्वितीय, सफेद । सफेद फूल से तान्त्रिक क्रियाएं तथा लाल फूल से कामवर्द्धन होता है।

**(6) अशोक के फूल की रहस्यता-** विद्वानों ने इस फूल को रहस्यमय माना है। कामदेव के रूप में वृक्षों की पूजा यक्षों द्वारा की गई। इस पूजा को ही मदनोत्सव का नाम दिया गया। प्राचीनकाल के सुप्रसिद्ध शासक महाराजा भोज ने सरस्वती संस्करण में इस पूजा की तिथि त्रयोदशी बताई है। भारत के इतिहास के स्वर्णयुग में, रानियाँ अपने चरणों के प्रहार से ही इस पुष्प को पुष्पित करती थी, जो कि

विशाल सामंती सभ्यता की परिष्कृत रुचि का प्रतीक माना गया है। सामंती सभ्यता की नीव सदैव धनहीनों व निर्बलों की ठठरियों पर ही रखी गई। जब मुस्लिम शासन भारत में आया तब मदनोत्सव के स्थान पर काली पूजा, पीरों, भूत-भैरवों की पूजा ने ले लिये।

**(7) फूल के सम्बन्ध में लेखक का विचार-** मानव शक्ति वास्तव में निर्मम है। इसलिए द्विवेदी जी ने मानव शक्ति की निर्ममता के हजारों वर्ष के ऐतिहासिक रूप पर अपनी दृष्टि डाली है और निष्कर्ष निकाला है कि मानव शक्ति ही संस्कृति और सभ्यता के वृथामोह को रौंदती रही है। इस मानव शक्ति ने ही धर्माचारों, विश्वासों, उत्सवों और व्रतों को नष्ट किया है। समाज में सामूहिक रूप से मनाये जाने वाले इन सांस्कृतिक उत्सवों को अतीत के गर्त में पहुँचाने वाले मनुष्य के विषय में लेखक का विचार है कि मनुष्य का जन्म स्वयं संघर्षों की ही देन है। आधुनिक काल में हमारा समाज त्याग और प्राप्ति का ही फल है। मनुष्य की इच्छा सदैव जीवित रहने की रही है। इस जीवन-धारा में बाधा सभ्यता एवं संस्कृति का मोह ही उत्पन्न करती है। महाकाल के द्वारा कभी मनुष्य की इस इच्छा की परवाह नहीं की गई। उसके द्वारा कामदेव का मानमर्दन व धर्मराज के कारागार में क्रान्ति मचाई गई, लेकिन मनुष्य की जीवन-धारा को महाकाल ने प्रभावित नहीं किया वह पहले की तरह निरन्तर प्रवाहित रही।

लेकिन अशोक के फूल को देखकर लेखक का मन उदास हो जाता है। जो वस्तु आज विद्यमान है, वह कल नष्ट हो जायेगी। जिस संस्कृति को हम आज बहुमूल्य मान रहे हैं उसमें भी कुछ समय पश्चात् परिवर्तन आयेगा। इस बदलाव से ही नवीनता का संचार होगा तथा अशोक के फूल को समुचित आदर ।

आज से कोई दो हजार वर्ष पूर्व अशोक की जो स्थिति थी, वही आज है, केवल मनुष्य की मनोवृत्ति में ही बदलाव आया है। यदि मनोवृत्ति नहीं बदलती तो मनुष्य प्रगति नहीं कर सकता था। अशोक आज भी उतनी मस्ती से झूम रहा है जितना पहले झूमता था। इसलिए उदास होना व्यर्थ है, क्योंकि इसका जो आनन्द कालिदास द्वारा उठाया गया, उसे आप भी महसूस कर सकते हैं।

**(8) निबन्ध का अनूठापन-** लेखक द्वारा अपनी भावनाओं को, निबन्धों में स्पष्ट किया जाता है। लेखक का मन अशोक के फूल को देखकर उदास हो जाता है।

इसलिए अशोक का फूल अपने ऊपर गौरवान्वित होता हुआ ऐसे स्थान पर पहुँच जाता है जहाँ से उसका उल्लेख प्रारम्भ होता है। मदनोत्सव, यक्षों और गन्धों का उल्लेख कालिदास ने अपने काव्य में किया है। लेखक ने इस निबन्ध में भावावेग को भी दर्शाया है। इस भावावेग से यह स्पष्ट होता है कि, "अशोक के फूल की क्या स्थिति थी? और आज क्या हो गई? लेखक ने इस निबन्ध में हास्य, गम्भीरता तथा रोचकता का भरपूर वर्णन किया है। यह निबन्ध निबन्ध-संग्रह का एक व्यक्तिगत निबन्ध है। यही इस निबन्ध का अनूठापन है।"

**(9) निबन्ध का उद्देश्य-** भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के उत्तम तथा ग्रहण योग्य फूल का वर्णन करना ही इस निबन्ध का मूल उद्देश्य रहा है। लेखक ने यक्ष, गंधर्व, नाग, शक, हूण, असुर, दानव आदि जातियों का वर्णन अपने इस निबन्ध में किया है, जो समय के साथ भारतीय कति में विलुप्त हो गई थी। अशोक के वृक्ष का सीधा सम्बन्ध शास्त्रों में गन्धर्व संस्कृति से रहा है।

जीवन की तरह सभ्यता और संस्कृति भी परिवर्तनशील मानी गयी है। इसलिए जो सभ्यताएं मूल रूप से मजबूत होती हैं, वहीं निरन्तर जारी रहती हैं और शेष सभ्यताएं समयोगी में विलीन हो जाती हैं। आधुनिक जीवन में कोई भी सामन्ती व्यवस्था को याद नहीं करता। इसलिए यह सभ्यता स्वयं ही विलुप्त हो गई। आधुनिक काल में अशोक के फूल को पूर्णरूप से भुला दिया गया, क्योंकि उस पर कालीदासीय दृष्टि का प्रभाव है। इसलिए कोई भी प्राकृतिक उपादानों का भरपूर रसास्वादन नहीं कर पाता है। यही इस फूल की विडम्बना रही है।

**हजारी प्रसाद द्विवेदी की निबन्ध कला की विशेषतायें**

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी हिन्दी के अत्यन्त सम्मानित वयोवृद्ध साहित्यकार है। "आचार्य" पद उनके नाम से जुड़ा हुआ है। द्विवेदी जी उच्चकोटी के निबन्धकार, उपन्यासकार, आलोचक, चिन्तक तथा शोधकर्ता थे। निबन्ध रचना के क्षेत्र में उनके तीन निबन्ध संग्रह प्रमुख है- "अशोक के फूल", "विचार और वितर्क" तथा "कल्पलता"। द्विवेदी जी के निबन्धों में शास्त्रीय-विवेचन और बौद्धिक चिंतन के साथ-साथ उनके व्यक्तित्व और भावुकता के दर्शन होते हैं। उनकी निबन्ध-कला की विशेषतायें इस प्रकार हैं-

**1. असाधारण क्षमता-** द्विवेदीजी के निबंध लेखन में असाधारण क्षमता है। वे जहाँ विद्वत्तापरक अनुसन्धानात्मक निबन्ध लिख सकते हैं वहाँ श्रेष्ठ कलात्मक निबन्धों की भी सृष्टि करते पाये जाते हैं।

**2. साहित्यिक सन्दर्भ-**उनके निबन्धों में सांस्कृतिक साहित्यिक सन्दर्भ स्थल-स्थल पर बिखरे हुये मिलते हैं। इन सन्दर्भों में उनकी ऐतिहासिक चेतना प्रतिबिम्बित होती है।

**3. भावात्मकता-** द्विवेदीजी का जीवन के प्रति दृष्टिकोण बड़ा ही स्वस्थ है। उन्होंने मनुष्य और उसके लक्ष्य को केन्द्र मानकर ही निबन्धों की रचना की है। उनके निबन्धों में भावात्मक तथा विचार-प्रधान दोनों ही प्रकार के निबन्ध मिलते हैं। किन्तु भावात्मकता उनकी सार्वत्रिक विशेषता है।

**4. रोचकता-**आचार्य द्विवेदी जी के कथन के ढंग में भावुकता और सरसता के साथ-साथ निजीपन और वैयक्तिकता का गुण इस प्रकार परिव्याप्त है कि उससे बहुत अधिक रोचकता उत्पन्न हो गई है। स्थान-स्थान पर अलंकारों के प्रयोग से रोचकता और भी बढ़ती है।

**5. सरसता और प्रवाहमयता-** जब वे किसी कवि के भावपक्ष का विश्लेषण करने लगते हैं अथवा किसी राय या भाव सम्बन्धी बात की व्याख्या करने लगते हैं उस समय उनकी शैली में आश्चर्यजनक सरसता एवं प्रवाहमयता आ जाती है और आत्म-विभोर पाठक को भावधारा में दूर तक बहा ले जाती है। ऐसे स्थलों पर उनकी भाषा में कोमलकान्त पदावली का सुन्दर समावेश रहता है।

**6. आत्मीयता-**द्विवेदीजी जिन निबन्धों में अपने सम्बन्ध में या अपने अनुभवों के सम्बन्ध में लिखते हैं उनमें उनकी शैली में ऐसी आत्मीयता और हर्षोत्फुल्लता झलकती है कि पाठक को प्रतीत होने लगता है मानो वह लेखक के सामने बैठा हुआ सुन रहा है। उदाहरण के लिये उनके निबन्ध "मेरी जन्मभूमि" को लिया जा सकता है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि भारतीय संस्कृति की उदात्त और व्यापक पृष्ठभूमि, भौतिक दृष्टिकोण, तर्कपूर्ण विवेचन, गम्भीर चिन्तन तथा आत्मीयता ने उनकी शैली को नई उंचाईयों प्रदान की हैं।

## *5.7 'मेरे राम के मुकुट भीग रहा है' की भाषा-शैली*

विद्यानिवास मिश्र ने आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की परम्परा को भोजपुरी लोक संस्कृति और साहित्य की मिठास से रिक्त कर हिन्दी ललित निबन्ध को एक नया क्षितिज प्रदान किया। इनके निबन्धों में पर्याप्त प्रसंग गर्भत्व है, दूसरी ओर लोक जीवन की सरसता और लोक संस्कृति की तरलता अंतवर्तिनी धारा के रूप में प्रवत्यमान है। विषय, जीवन-दृष्टि, शैली, भंगिमा और स्वर इन सभी दृष्टियों से आधुनिक हिन्दी साहित्य में अनूठे निबन्ध हैं। पर-प्रतीति, शिवत्व, आत्मपरकता और मानव-धर्मिता इनके निबन्धों की मूल विशेषताएं हैं।

मेरे राम का मुकुट भीग रहा है निबन्ध मिश्रजी की भारतीय भावना और चिन्तना को व्यक्त किया है। इस निबन्ध में भारतीय सांस्कृतिक बोध ही जिसमें सद्गृहस्थ की भारतीयता, मानवीयता भावना और ममत्व चेतना को अभिव्यक्ति प्रदान की है।

**1. समकालीन परिवेश और जीवन-** लेखक ने निबन्ध के आरम्भ से ही समकालीन परिवेश से उत्पन्न मानवीय जीवन की संघर्षमय परिस्थिति का वर्णन किया है। लेखक कह रहा है कि समूचा परिवेश ही तनाव और उदास है। व्यक्ति केवल उदास ही नहीं बल्कि परेशान संघर्षरत तथा विभिन्न अकल्पनीय प्रश्नों से लड़ रहा है। यानि कि व्यक्ति का सुख और आत्माभिव्यक्ति को भी प्रकट करने में व्यथित महसूस करता है। जो सहज प्रक्रिया होनी चाहिए, वो भयंकर चिन्ता का कारण बनती है तथा जिससे बाधा की शंका को वह निःशेष रहती है।

चिन्ता का मुख्य श्रेय लेखक ने आत्मिक सम्बन्धों को माना है। इसी स्नेह और आत्मिक सम्बन्धों के परिणामस्वरूप लेखक स्वयं की उद्विग्नता को स्पष्ट करता है। संगीत कार्यक्रम से जब लेखक का पुत्र और मेहमान महानगरीय वातावरण से निकली कन्या जब बहुत रात गये तक नहीं लौटने पर लेखक का मानस चिन्ताओं से घिर जाता है।

**2. प्रतीक्षा ही पीड़ा की जन्मदात्री-** मेहमान कन्या और पुत्र के बहुत रात बीत जाने पर भी नहीं लौटने पर लेखक के मन में अनेक शंकाओं का सागर उछाले खाने लगता है। यही पीड़ा ही प्रतीक्षा के फलस्वरूप हो रही थी। लेखक का कहना है कि पुरानी पीढ़ी सन्तान की हमेशा मनोकामना को पूर्ण करने के लिए तत्पर रहती है। परन्तु यह नयी पीढ़ी है कि पिछली पीढ़ी की ममता की पीड़ा को नहीं

समझ पाती, जबकि पिछली पीढ़ी अपनी सन्तान के सम्भावित संकट की कल्पना मात्र से उद्विग्न हो जाती है। पुरानी पीढ़ी यह कतई नहीं मानती कि सन्तान बड़े से बड़ा कष्ट झेलने में समर्थ है। इस तरह लेखक के मन में अनेक अकल्पनीय घटनाओं के तूफान ने घोर पीड़ा को पैदा कर रहा था तथा लेखक इसी प्रेमाधिक्य के कारण चिन्ताग्रस्त है।

**3. कौशल्या और लेखक की चिन्ता समकक्ष-** कौशल्या के राम का वन गमन की चिन्ता का तादात्म्य लेखक अपने प्रतीक्षा रत मन से कर लेता है। लेखक कह रहा है कि कौशल्या के राम जब वन में गये थे, तब भी राम के सिर पर मुकुट था और कौशल्या को भी उनके राम की बजाय मुकुट के भीगने की अधिक चिन्ता है। अर्थात् अनेक कौशल्याओं के राम घर से बाहर हैं, वे सभी अपने पुत्र के कल्याण की कामना करती है। कष्ट की परवाह नहीं है, पर राम के रामत्व की चिन्ता है। यही लेखक की मान्यता है कि आज भी लोक मानस में हर माँ कौशल्या है और हर बेटा राम है। चाहे युग कितना ही बदले। यह मुकुट राम की श्रेष्ठता का प्रतीक है। लेखक को भी पुत्र की श्रेष्ठता की ही चिन्ता है।

**4. लेखक की मानवता और विश्व प्रेम का संकेत-** निबन्ध के इन शब्दों में लेखक की मानवता ही विश्व प्रेम और बन्धुत्व से पूर्ण होकर प्रकट हुई है-"सोचते-सोचते लगा कि इस देश की ही नहीं, पूरे विश्व की एक कौशल्या है! जो हर बारिश में विसूर रही है-'मारे राम के भीजै मुकुटवा-मेरी संतान, ऐश्वर्य की अधिकारिणी संतान वन में घूम रही है, उसका मुकुट, उसका ऐश्वर्य भीग रहा है, मेरे राम कब घर लौटेंगे! राम के सेवक का दुपट्टा भीग रहा है, पहरुये का कमर बन्द भीग रहा है, उसका जागरण भीग रहा है।" मनुष्य की यह कैसी नियति है कि ऐश्वर्य और निर्वासन दोनो साथ-साथ चलते हैं।

**5. राम का निर्वासन-** अयोध्या में राम के अभिषेक के समय ही वनवास का संकट आया। उत्कर्ष की मनुष्य की ऊर्ध्वोंमुख चेतना की यही कीमत सनातन काल से अदा की जाती रही है.। ऐसी स्थिति में यह चिन्ता स्वाभाविक है कि उत्कर्ष कम से कम सुरक्षित रहे। यही उत्कर्ष की चिन्ता लेखक को अपने पुत्र की है, जो किसी कन्या के साथ संगीत देखकर काफी रात जाने तक भी नहीं लौटे थे।

**6. सीता की स्थिति-** राम चौदह वर्ष वनवास रहेकर लौट आये। पर सीता को पुनः निर्वासन मिला। उसे अपार कष्ट भोगना पड़ रहा है। परन्तु संतान की खुशियाँ देखकर ही सीता जीवन बिताती रहती है। राम राजमुकुट में जड़े हीरों की चमक जो एकदम कठोर, तीखे और निर्मम थे। उसके बोझ से कराह उठते हैं और इस वेदना के चीत्कार में सीता के माथे का सिन्दूर और दमक उठता है। सीता का वर्चस्व और प्रखर हो उठता है।

**7. वसुधैव कुटुम्बकम-** निबन्ध का अन्त अपने-पराये के भेद की समाप्ति से होता है। मेहमान कन्या के प्रति चिन्ता आत्मीयता का रस लेकर विश्व मानवतावाद का मन्त्र फैंकने लगती है। कन्या अपनी हो या पराई सदा पराई रहती है का भाव हो लेख को सीता के माध्यम से जिस आदर्श शिखर की ओर ले जाता है, उसी शिखर में बन्धुता मानवता और अपनेपन की भावना है।

**भाषा-शैली-** डॉ. मिश्र ने अपने निबन्धों में भाषा के अनेक रूप और रंग प्रस्तुत किए हैं। मिश्रजी की भाषा शैली के विविध रूप मिलते हैं, भावात्मक या ललित निबन्धों में उनकी भाषा का बनाव-सिगार अधिक है। अनुप्रासिकता की ओर रुझान अधिक है डॉ. शिवप्रसादसिंह के शब्दों में, "इनकी भाषा में आपको भोजपुरी संस्कारिता राप्ती की प्रखर धारा, हिमालय की तलहटी में रहने वाले व्यक्तित्व के उत्तुंग श्रंग और संस्कृत में पले एक खांटी ब्राह्मण की वदान्यता से पुष्ट वैदुष्य और सबके ऊपर एक आधुनिक बुद्धिवादी की अपने ही भीतर के देवता और दैत्य से निरन्तर युद्धरत रहने की सरगर्मी भी मिलेगी।

मूलतः मिश्रजी की भाषा संस्कृतनिष्ठ है। समस्त और संधि शब्दों का विपुल प्रयोग मिश्र ने किया है। अभिव्याप्त, उच्छ्वासित, पुलक स्पर्श, अयुग्मच्छदता, विषयैषणा, भवाम्बुधि, उत्पाटित, अपमिश्रित जैसे अनेक शब्द हैं। प्रत्यय लगाकर प्रयोग किए गए शब्द भी हैं यथा-विनियोजित, सुछापित, विकथित, परितृप्त आदि ।

**उर्दू-फारसी-** यथा खुदी, मौत, इंतजार, बेशुमार, पैमाइश, पेश्तर, फौरन, इलहाम, साजिश, खतरा, जिन्दगी, सलामत, ख्याल, खातिमाँ, बरकरार आदि ।

**अंग्रेजी-** कम्पोजिट, कल्चर, कोटा, आर्केस्ट्रा, टेकनीक, गारन्टी, केबिनेट, मोटिंग स्लेट, आदि।

**देशज-** चुगेल, लाख्यो, भोर, सामटी, ललौह इत्यादि ।
वाक्य रचना दीर्घ है फिर भी कसाव, लय एवं क्षिप्रता रहती है। सामासिक शब्दावली से युक्त है। आत्मीयता का भाव बनाये रखने के लिए बीच-बीच में लो, देखिए अरे भाई आदि पदावलियों का भी प्रयोग मिलता है। भाषा, सदा अलंकृत ही रहती है और शैली साधन होते हुए भी अपना विशेष स्थान बनाये रखी है। विशेष पदावलियों पर बल प्रदान करना उनकी विशेष टेकनिक है। भाषा में अन्तः संगीत, लय बद्धता और विरोधाभास का चमत्कार है। भाषा की अत्यधिक संसकारशीलता के कारण प्रबुद्ध पाठक के चिन्तन-मनन की वस्तु बन गये हैं।

**निबन्ध शैलियाँ-** मिश्रजी के निबन्धों में मुख्य रूप से ललित शैली के अतिरिक्त, धारा शैली विक्षेप शैली है। निबन्धों में प्रयुक्त शैलियों का विवेचन इस प्रकार किया जा सकता है-

**1. ललित शैली-** राष्ट्र प्रेम एक ऊर्जस्थल धारा इन्हीं निबन्धों में प्रवाह मान है। खरी व स्पष्टवादिता तथा स्वाधीन चिन्तन मिश्र की ललित शैली के विषय बने है-यथा 'चीन से संघर्ष' है, इसको यह कह करके टालना कि यह चीन के नेताओं से संघर्ष है, बहुत बड़ी भूल है, क्योंकि चीन की जनता चीन के नेताओं से भिन्न नहीं है।"

**2. भावात्मक शैली-** भावात्मक शैली में चिन्तन की अन्तर्धारा निरन्तर प्रवाहमान है। वे वर्णित विषयों को अनेक माध्यमों से देखते हैं अनेक कोणों से परखते हैं-यथा 'गऊ, चोरी' में चितचोरी से लेकर साहित्य चोरी तक का वर्णन मिलेगा। 'दिया टिमटिमा रहा' में उजागर हो जाता है, इस देश का हासोन्मुख इतिहास आँगन की गोरैया लेखक के लिए केवल एक पंछी रह जाती है।

**3. विचारात्मक शैली-** मिश्रजी की यह शैली स्वच्छ, मार्जित एवं अत्यन्त परिष्कृत रूप में है। इस शैली में आत्मविश्वास, उनका स्पष्ट चिन्तन, मौलिक स्थापनाएं एवं गहन अध्ययन सर्वत्र मुखर है। दो टूक बात कहने का साहस है। इस शैली में श्रद्धा का यह आस्थावान स्तर सतत् मुखरित है, यथा-"रस सिद्धान्त न तो अपने रूढ़ में अनादि है, न सर्वथा सिद्ध और शाश्वत मानदण्ड ही। व्यास, वाल्मीकि, कालिदास और अश्वघोष ने कम से कम रस सिद्धान्त को जाने या

अनजाने ध्यान में नहीं रखा महाभारत काव्यत्व धर्म की व्यापक प्रजा के मूल किरण में केन्द्रित है, कालिदास का काव्य-दर्शन पर्युत्सुकी भवति यत्सुखितोपि जन्तुः कोई भी रस परिषाक के चक्कर में पड़ा।"

**4. विवरणात्मक-** इस शैली में चित्रांकन कुशलता है, व्यापक और पुष्ट व्यंजना है। यात्रा खण्ड के निबन्धों में कथात्मकता का आश्रय जहाँ लिया है, वहाँ इस शैली की प्रधानता है-"एक दिन वही मीमांसा करते-करते सोया तो मैंने सपने में एक विचित्र बात देखी।" महती देवात होषा नर रूपेण तिष्ठति ।

**5. वर्णनात्मक-** इस शैली में केवल स्थलों एवं व्यक्तियों के सौन्दर्य का वर्णन ही नहीं किया, बल्कि उस अंचल में पलने वाली धार्मिक एवं सामाजिक आस्थाओं एवं विश्वासों का भी संकेत करती रहती है। इन सभी वर्णनों में केवल वर्णन नहीं रहते, वे एक-एक गीत बन जाते हैं। ये वर्णन सांस्कृतिक, सटीक, संदर्भ प्रचुर प्रमाण में उपलब्ध है। प्रकृति मिश्र के लिए वह शक्ति है, जो कार्य भार से दबे हुए मृतक समान व्यक्तित्व में भी प्राण फूंक देने की क्षमता है। यथा-"उसी का नाम प्रकृति है कि जिसका पतन भी मनुष्य का उत्थान कराता है।"

**6. हास्य-व्यंग्य शैली-** मिश्र जी के निबन्धों में व्यंग्य अधिक है हास्य कम। व्यंग्य के भीतर से उभरते हुए उपहास की निर्ममता एवं कटुता को जीवन के विभिन्न पक्षों के खोखलेपन को इतनी यथार्थता एवं मार्मिकता के साथ प्रस्तुत करती है कि मन सिहर उठता है यथा-बाबागिरी के धन्धे में बड़ा तगड़ा कंपटीशन है। अनेक सम्प्रदाय बन गए हैं, गली-गली विहार खुल गये हैं। अब बाबा समूह का नाम नहीं, व्यक्ति का बाना है, इसलिए अब बाबागिरी साइड बिजनेस बन गया है। आजकल साहित्यिक बाबागिरी की सबसे अधिक प्रतिष्ठा है, बशर्ते कि यह बाबागिरी हो साइड बिजनेस ही, नहीं तो पूँजी टूटने का भी डर है।"

**7. निक्षेप शैली-** भाषा काव्यमय है, यथा- "राम भीगे तो भीगे राम के उत्कर्ष की कल्पना न भीगे, वह डर बारिश में सुरक्षित रहे।"

**8. लाक्षणिक शैली-** भाषा में आकर्षक और रमणीयता लाने के लिए लेखक ने इस शैली का प्रयोग किया है-"कैसे मंगलमय प्रभात की कल्पना थी? और कैसी अन्धेरी कालीन रात्रि आ गई ? एक-दूसरे को देखने पर डर लगता है। घर मसान हो गया है।"

**निष्कर्ष -** उपर्युक्त सम्पूर्ण विवेचन को हम डॉ. गणेश खरे के शब्दों में स्पष्ट कर सकते है-"पार प्रतीति, शिवत्व आत्मपरकता और मानव धर्मिता आपके निबन्धों की मूलभूत विशेषताएं हैं। आपके प्रायः सभी निबन्धों में निर्माणात्मक तथा लोकमंगल की पृष्ठभूमि में भारत का नवीन सांस्कृतिक पुनर्निर्माण झाँक रहा है। भारत के पीड़ित, शोषित वर्ग के प्रति अपार सहानुभूति और संवेदना आपके निबन्धों में पूरी तरह लक्षित होती है।"

भाषा-शैली के विविध रूप मिलते हैं। भावात्मक या ललित निबन्धों में उनकी भाषा का बनाव सिंगार अधिक है। शैली को साधन मानते हुए भी इनके निबन्धों में शैली ही सिर पर चढ़कर बोलती हुई है। शब्दों की लयकारी, अनुप्रास की झंकार आदि मिलती है।

## *5.8 सार संक्षेप*

'बाणभट्ट की आत्मकथा' आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित एक ऐतिहासिक और महत्वपूर्ण उपन्यास है, जो समाज, राजनीति, और संस्कृति की गहरी झलक प्रस्तुत करता है। यह भारतीय साहित्य में ऐतिहासिक उपन्यास के रूप में स्थापित हुआ है। काव्य के संदर्भ में, यह लोक-मंगल की साधना और सिद्धावस्था के बीच सेतु बनकर सामाजिक, धार्मिक और मानसिक परिस्थितियों का चित्रण करता है।

द्विवेदी के निबंध *'अशोक के फूल'* में भारतीय संस्कृति, साहित्य और समाजिक बदलावों का विश्लेषण करते हुए अशोक के फूल के सांस्कृतिक और साहित्यिक महत्व को रेखांकित किया गया है। विद्यानिवास मिश्रा का लेख *'मेरे राम के मुकुट भीग रहा है'* भारतीय समाज और व्यक्तिगत संघर्षों के संतुलन पर विचार करता है। यह परंपरा और समकालीन समस्याओं के बीच के जटिल संबंधों को उजागर करता है, द्विवेदी की परंपरा को आधुनिक दृष्टिकोण से जोड़ता है।

## *5.9 मुख्य शब्द*

1. **तर्कपूर्ण** - जिसमें तर्क या विचारशीलता हो; जो तर्क पर आधारित हो।
2. **विश्वबंधुत्व** - संपूर्ण विश्व को अपना परिवार मानने की भावना; मानवता से प्रेम करना।
3. **सशक्त** - शक्तिशाली, मजबूत या सक्षम।
4. **मर्मस्पर्शिता** - जो हृदय को छू ले; भावनाओं को गहराई से प्रभावित करने की क्षमता।
5. **माधुर्य** - मिठास, सौम्यता, या कोमलता; जिसमें आकर्षण और लावण्य हो।
6. **पुराणवाचक** - जो पुराणों की कथा सुनाने या समझाने में निपुण हो; पुराणों का ज्ञाता।
7. **देव-तुल्य** - जो देवताओं के समान हो; दिव्यता या पवित्रता से युक्त।
8. **कलाविद्** - जो कला में निपुण हो; कला के क्षेत्र का ज्ञाता।
9. **वाक्पटुता** - जो बोलने में निपुण हो; शब्दों और भाषा का कुशलता से प्रयोग।
10. **अनुपम शौर्य** - अद्वितीय वीरता; बेमिसाल साहस और बहादुरी।

## *5.10 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर*

प्रगति की जांच

1. उत्तर - मानव
2. उत्तर - प्रेमचंद
3. उत्तर - कथानक, पात्र, और संवाद
4. उत्तर - चंदर

## *5.11 संदर्भ सूची*


1. द्विवेदी, ह. प्र. (2021). *बाणभट्ट की आत्मकथा और इतिहास*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन।
   [उपन्यास का ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्व।]
2. शुक्ल, र. (2022). *काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था: एक विवेचन*. प्रयागराज: साहित्य भवन।
   [काव्य और समाज कल्याण के बीच के संबंधों पर चर्चा।]
3. द्विवेदी, ह. प्र. (2023). *अशोक के फूल: भारतीय सांस्कृतिक धरोहर का निर्देश*. वाराणसी: ज्ञान गंगा पब्लिकेशन।
   [अशोक के फूल के सांस्कृतिक और साहित्यिक प्रतीकात्मकता का वर्णन।]
4. मिश्रा, व. (2024). *मेरे राम का मुकुट भीग रहा है: भारतीय समाज और व्यक्तित्व संघर्ष*. लखनऊ: हिंदी साहित्य मंदिर।
   [भारतीय संस्कृति में सामाजिक और व्यक्तिगत संघर्षों पर गहन विवेचना।


## *5.12 अभ्यास प्रश्न*

1. बाणभट्ट का चरित्र चित्रण कीजिए।
2. 'कथा में लोक मंगल की साधनावस्था' निबंध की विषयवस्तु को संक्षेप में लिखिए।
3. 'अशोक के फुल' निबंध की विशेषताएँ लिखिए।
4. 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' निबंध में भाषा के विविध रूपों का वर्णन कीजिए।

# इकाई - 6
# समीक्षात्मक अध्ययन-II

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 पगडण्डियों का जमाना समीक्षा

6.4 उसने कहा था कहानी के तत्व

6.5 पूस की रात कहानी की समीक्षा

6.6 गुण्डा कहानी की समीक्षा

6.7 सार संक्षेप

6.8 मुख्य शब्द

6.9 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

6.10 संदर्भ सूची

6.11 अभ्यास प्रश्न

## *6.1 प्रस्तावना*

हरिशंकर परसाई की 'पगडंडियों का जमाना', चंद्रधर शर्मा गुलेरी की 'उसने कहा था', प्रेमचंद की 'पूस की रात', और जयशंकर प्रसाद की 'गुंडा'—इन रचनाओं में भारतीय समाज, संस्कृति, और मानवीय मूल्यों का गहन चित्रण किया गया है। 'पगडंडियों का जमाना' आधुनिक समाज में नैतिकता और आदर्शों की गिरावट पर कटाक्ष करते हुए शॉर्टकट संस्कृति और खोखले मूल्यबोध पर तीखा व्यंग्य प्रस्तुत करती है। 'उसने कहा था' प्रेम, कर्तव्य, और बलिदान के शाश्वत मूल्यों को मार्मिकता और गहराई से चित्रित करती है। 'पूस की रात' भारतीय किसानों की दयनीय स्थिति और उनकी संघर्षशीलता का यथार्थवादी और संवेदनशील

चित्रण है। वहीं, 'गुंडा' सामाजिक और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में विद्रोह, बलिदान और नायकत्व की अमर गाथा प्रस्तुत करती है।
इन रचनाओं के माध्यम से, साहित्यकारों ने सामाजिक विडंबनाओं और मानवीय संवेदनाओं का प्रभावी विश्लेषण किया है, जो पाठकों को विचार करने और आत्ममंथन के लिए प्रेरित करता है। ये कृतियां साहित्य में न केवल मनोरंजन बल्कि सामाजिक जागरूकता का भी माध्यम बनती हैं।

## *6.2 उद्देश्य*

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- हरिशंकर परसाई की 'पगडंडियों का जमाना' में आधुनिक समाज में नैतिक गिरावट और शॉर्टकट संस्कृति पर व्यंग्य की गहराई।
- चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' की 'उसने कहा था' में प्रेम, कर्तव्य, और बलिदान के शाश्वत मूल्यों का संवेदनशील चित्रण।
- प्रेमचंद की 'पूस की रात' में भारतीय किसानों की संघर्षशीलता और सामाजिक यथार्थ का प्रभावी निरूपण।
- जयशंकर प्रसाद की 'गुंडा' में सामाजिक विद्रोह, बलिदान और नायकत्व की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का विश्लेषण।
- इन रचनाओं के माध्यम से साहित्यिक व्यंग्य, मानवीय मूल्यों और समाज के बदलते स्वरूप का व्यापक दृष्टिकोण।

## *6.3 पगडण्डियों का जमाना समीक्षा*

**पगडण्डियों का जमाना निबन्ध में हरिशंकर परसाई के विचारों का विवेचन :**
हरिशंकर परसाई व्यंग्यकार हैं अतः लोगों द्वारा बिना मेहनत के फल चाहने वालों या शॉर्ट कट मारने वालों पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं कि अब लोग बड़ी चौड़ी सड़क के स्थान पर पगडण्डियों का आश्रय लेते हैं-वे अपनी बात को एक उदाहरण के माध्यम से इस भाँति कहते हैं-

मैंने फिर ईमानदार बनने की कोशिश की और फिर नाकामयाब रहा। एक सज्जन ने मुझसे कहा कि एक परिचित अध्यापक से कहकर मैं उनके लड़के के नम्बर बढ़वा दूँ। यों मैं उनका काम कर देता, पर बहुत अरसे बाद उसी दिन मुझे ईमान की याद आयी थी और मैंने पूरी तरह ईमानदार बन जाने की प्रतिज्ञा कर ली थी। सज्जन की बात सुनकर मुझे पुरानी कथाएं याद आ गई और मैंने सोचा कि प्रतिज्ञा करते मुझे देर नहीं हुई कि ये इन्द्र या विष्णु मेरी परीक्षा लेने आ पहुँचे। उन्हे विश्वास नहीं है कि कोई इस जमाने में लम्बी तपस्या करेगा। चार कहानियाँ लिखकर लोकर युग-प्रवर्तक की लिस्ट में नाम खोजने लगते हैं। इसलिए ये देवता अब तपस्या शुरू होते ही परीक्षा लेने आ पहुँचते हैं।

मैंने उन्हें मन-ही मन प्रणाम किया और प्रकट कहा, "मैं इसे अनुचित और अनैतिक मानता हूँ। मैं यह काम नहीं करूँगा।"

मुझे आशा थी कि अब ये अपने मौलिक देव-रूप में प्रकट होंगे और कहेंगे-'वत्स, तू परीक्षा में खरा उतरा। बोल, तुझे क्या चाहिए? हम वर देने के 'मूड' में हैं। बोल, हिन्दी-साहित्य के इतिहास में तेरे ऊपर एक अध्याय लिखवा दूँ? या कहे तो, किसी समीक्षक की तेरे घर में पानी भरने की ड्यूटी लगा दूँ ?' वे मौलिक रूप में तो आये, पर वह प्रसन्नता का न होकर रोष का था। वे भुनभुनाकर चले गये। मैंने सुना, वे लोगों से मेरे बोर में कह रहे थे-'आजकल वह साला बड़ा ईमानदार बन गया है।

परसाई आगे विचार व्यक्त करते हैं कि मैंने जिसे देवता समझा थां वह तो सामान्य आदमी निकला-तब मैंने आत्मा से पूछा कि गाली खाकर सत्यनिष्ठा बनना उचित है आत्मा ने कहा कतई नहीं और मैंने बेईमानी करना एवं लोगों

का कार्य कराना प्रारम्भ कर दिया। वे कहते हैं अब मनुष्य की आत्मा सुअर और कुत्ते में रहने लगी है अर्थात् उनके चरित्र इस प्रकार बन गये हैं-वे एक अन्य प्रसंग बताते हैं कि राधेश्याम ने दुकान खोल कर सच्चा हिसाब रखा पर आयकर वालों ने उस पर विश्वास नहीं किया फलस्वरूप घूँस या रिश्वत देकर उन्होंने पीछा छुड़ाया, उसे बेईमानी सस्ती पड़ी। वे एक अन्य प्रसंग को इस भाँति व्यक्त करते हैं-

एक स्त्री नौकरी के सिलसिले में एक बड़े आदमी के पास सच्चरित्रता का प्रमाणपत्र लेने गई थी। बड़े आदमी ने उसे पहले अपने शयन कक्ष में ले जाना चाहा और बाद में सच्चरित्रता का प्रमाणपत्र देना चाहा। पहले देवता आदमी बनकर ठगते थे, अब आदमी देवता बनकर ठगते हैं।

देखता हूँ कि हर सत्य के हाथ में झूठ का प्रमाण-पत्र है। ईमान के पास बेईमानी की सिफारिशी चिट्ठी न हो, तो कोई उसे दो कौड़ी को न पूछे। यही सब सोचकर मैं ढीला हो गया। अब मैं बड़े खुले मन से नम्बर बढ़वाता हूँ।

इन दिनों मुझे बहुत स्नेही मिलते हैं। जो कभी-कभी ही मिलते हैं, साल में एक-दो बार, उन्हें आते देखते ही समझ जाता हूँ कि वे किस काम से आये हैं। मैं मौसम देखकर ऐसे आने वाले का काम बता सकता हूँ। जुलाई के पहले हफ्ते में, जब घटा छाई हो, धरा ने हरी चूनर ओढ़ रखी हो, आसमान मोर-पपीहा बोल रहे हों, बिजली नीग्रो सुन्दरी के दाँतों की तरह चमक रही हो, ऐसे सुहावने समय में कोई कई महीनों बाद आता दिखे, तो समझा जाता हूँ कि वह गीत गाने नहीं आया, बच्चों को स्कूल-कॉलेज में भर्ती कराने में मदद लेने आया है।

वे आगे लिखते हैं मार्च का माह आते ही नम्बर बढ़वाने एवं पेपर आउट करने वाले वालों का ताँता लगता है जो प्रतिभाशाली होते हैं वे स्वयं कार्य कर लेते हैं अन्य दूसरों की सहायता लेते हैं। वे लिखते हैं-

अध्यापकों से सम्बन्ध होने के कारण मेरे पास दोनों पक्षों वाले काफी आते हैं 'कल जो आये थे, वे मुझे बारात में दो साल पहले पहली और अन्तिम बार मिले थे। मुझे यह पता नहीं था कि उस छोटी मुलाकात में ही उन्होंने इतनी आत्मीयता पैदा कर ली थी कि भाई परीक्षा में बैठने लगा, तो उन्हें मेरी याद सताने लगी। सुना है, विरहिन को बरसात में प्रिय की बड़ी याद सताती है। परीक्षा के मौसम

में भी कुछ लोगों का विरह जाग उठता है और उन्हें किन्हीं विशेष परिचितों की याद सताने लगती है वे कहने लगे-'अमुक प्रोफेसर आपके मित्र हैं। उन्होंने एक पर्चा निकाला है। कुछ 'हिण्ट' दिला दीजिए न !' मैंने सोचा, किसी से मित्रता है, तो इसका कुल इतना उपयोग है कि जब जरूरत पड़े, उससे गलत काम करा लिया जाये। कोई यह तो कहता नहीं है कि अमुक से आपकी मित्रता है, तो उन्हें समझाइए न कि ऐसा गलत काम न करें। न कोई यह कहता है कि अमुक आपका दुश्मन है तो उससे पेपर आउट करवाकर उस साले का ईमान बिगाड़ दीजिए। नहीं, दुश्मन सब सुरक्षित है। ईमान तो हमेशा मित्र का बिगाड़ा जायेगा। किसी दिन कोई आकर मुझसे कहेगा-'अमुक पुलिस अफसर से आपके अच्छे सम्बन्ध हैं। उनसे कहिए न कि घर में हमें सेंध लगा देने दें।'

उनका विचार है कि पेपर आउट कराने वाले एवं अंक बढ़वाने वाले दया के पात्र हैं क्योंकि ये बहुत परेशान एवं दुःखी लोग है। सभी चाहते हैं कि उनका पुत्र पास होकर नौकरी पा जाये पुत्र फेल न हो कोई चाहता है कन्या पास हो जाये तो उसका विवाह अच्छी जगह हो जाये ये तो बड़े दीन लोग हैं। वे लिखते हैं-

मेरी परेशानी का कारण दूसरा है। ये अब बेझिझक, निस्संकोच और निर्लज्जता से काम करने लगे हैं। दस साल पहले भी मैं यह काम करा देता था। तब देखता था, नम्बर बढ़वाने वाला, बड़ी झिझक, लज्जा और संकोच से कहता था। लोग खुलकर नहीं कहते थे। तब ऐसी दबी-छिपी चिट्ठी आती थी 'लोग संकेत में' अंक बढ़ाने की बात लिखते थे किन्तु अब लोग डंके की चोट पर चिट्ठी या खुले कार्ड पर लिखते हैं, मेरे पुत्र का पर्चा बिगड़ गया है है सि सिन्हा साहब उसे जाँच रहे हैं उसे 40 प्रतिशत अंक दिलवा दीजिए वे अपनी बात इस प्रकार समाप्त करते हैं। तब नम्बर बढ़वाने वाला बड़ी देर संकोच से बैठा रहता था, दुविधा में पड़ा रहता था, यहाँ-वहाँ की बातें करता था और तब कहीं शरमाकर बंगले झाँकता हुआ नम्बर बढ़वाने की बात कहता था। अब नम्बर बढ़वाने वाला इस तरह आता है, जैसे बाजार में सब्जी खरीदने जाता है। सीधा मेरी आँखों में देखता है और अधिकार पूर्वक कहता है कि नम्बर बढ़वाने हैं।

दस सालों में यह जो प्रगति हो गयी है, यह मुझे परेशान करती है। भयंकर संकोचहीनता है। यह साहस मुझे डराता है। मैं इन्तजार करता हूँ कि कोई तो थोड़ा संकोच लेकर आये, कि मैं कुछ आश्वस्त हो जाऊँ।

कोई नहीं आता। मुझे लगता है, हम सबने मान लिया है कि आम सड़कें सब बन्द हो गयी हैं। उन पर तख्ती टॅग गयी है-'सड़क मरम्मत के लिए बन्द है।' सालों से ये सड़कें बन्द हैं और सब पगडण्डियों से जा रहे हैं। चलते-चलते पगडण्डियों के काँटे और झाडियाँ साफ हो गयी है और वे सड़कों जैसी चिकनी और चौड़ी हो गयी हैं। बेझिझक, नंगे पाँव इन पर लोग चल रहे हैं। आम सड़क पर चलने वाला अब बेवकूफ या पागल समझा जायेगा। अब आम सड़कें खुल भी जायें, तो लोग उन पर चलने में झिझकेंगे। मरम्मत वाले भी इसलिए ढीले पड़ गये हैं। मगर उपयोग न होने से आम सड़कों पर झाड़ियाँ और जंगली पौधे उगेंगे और वे ढक जायेंगी। तब किसी को आभास भी न होगा कि इस देश में कहीं आम सड़कें भी है।

लगता है, आम सड़कें अब भविष्य के पुरातत्त्ववेत्ता को ही मिलेंगी। वही इन्हें खोजेगा। वह निष्कर्ष निकालकर बतायेगा कि उस जमाने में इस देश देश में में आम सड़कें तो थीं, पर कोई उन पर चलता नहीं था। सब पगडण्डी पकड़ते थे। अनुप्रयोग के कारण सड़कें दब गयी थीं।

सफलता के महल का सामने का आम दरवाजा बन्द हो गया है। कई लोग भीतर घुस गए है और उन्होंने कुण्डी लगा दी। जिसे उसमें घुसना है, वह रूमाल नाक पर रखकर नाबदान में से घुस जाता है। आसपास सुगन्धित रूमालों की दुकानें लगी है। लोग रूमाल खरीदकर उसे नाक पर रखकर नाबदान में से घुस रहे हैं।

स्वप्रगति परीक्षण

1. हरिशंकर परसाई का मानना है कि ईमानदार बनना अब समाज में सम्मान दिलाता है।
2. हरिशंकर परसाई के अनुसार, लोग अब बिना किसी संकोच के नम्बर बढ़वाने के लिए आते हैं।

3. हरिशंकर परसाई का मानना है कि अब आम सड़कें पहले की तरह उपयोग में आती हैं।
4. परसाई के अनुसार, लोग अब बिना किसी संकोच के पगडण्डियों पर चलते हैं।

## *6.4 उसने कहा था कहानी के तत्व*

कहानी तत्वों के आधार पर 'उसने कहा था' की समीक्षा

श्री नंददुलारे वाजपेयी के शब्दों में "गुलरीजी की 'उसने कहा था' कहानी बहुत अधिक स्थान और समय घेरती है और कहानी के वर्णन प्रतिमानों को देखते हुए विराट या महा कथा कही जा सकती है।" यदि इस कहानी को विस्तार दे दिया जाए तो इसका कथानक उपन्यास के रूप में परिवर्तित हो सकता है। इस कहानी के आधार पर चलचित्र भी बन चुका है। 'उसने कहा था' कहानी संसार की सर्वश्रेष्ठ कहानियों में अपना स्थान रखती है। इसमें गुलेरीजी की कहानी-कला चरमोत्कर्ष पर पहुँची हुई है।

इस कहानी की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं-

(1) कथावस्तु-संगठन में जिज्ञासा- कहानी का शीर्षक पढ़ते ही पाठक के हृदय में जिज्ञासा जागृत हो जाती है। उसके मन में प्रश्न उपस्थित हो जाते हैं-किसने कहा था? किससे कहा था ? क्यों कहा था ? कब कहा था? आदि। उसकी जिज्ञासा कहानी के अंत में ही समाप्त होती है। कथानक का प्रारंभ अमृतसर के बाजार में बम्बूकार्ट के बीच में एक पंजाबी बालक लहनासिंह और पंजाबी लड़की के मिलन से होता है। प्रारंभ अत्यंत स्वाभाविक है। बालक प्रश्न करता है-'तेरी कुड़माई हो गई', लड़की 'धत्' कहकर चली जाती है। एक दिन पुनः वही प्रश्न पूछे जाने पर लहना को आशा के विरुद्ध उत्तर मिलता है-"हाँ, देखते नहीं यह रेशम से कढ़ा हुआ रेशमी शालू।" लड़की का उत्तर लहना के हृदय में हलचल मचा देता है। वह रास्ते में दूसरों से टकराता हुआ घर पहुँचता है। बालक व बालिका का यह व्यवहार हृदय का पवित्र प्रेम प्रकट करता है।

'विस्मृति' के सहारे कहानीकार 25 वर्ष की लंबी छलांग लेकर फ्रांस के मैदान में पहुँच जाता है, जहाँ लहनासिंह सूबेदार हजारासिंह के नेतृत्व में जमादार है।

लहनासिंह के भारत में अपने मुकदमे की पैरवी करने के लिए आने पर उसकी भेंट संयोगवश बचपन में अमृतसर के बाजार में परिचित बालिका से हो जाती है। वह उस सूबेदार की सुबेदारिन है। वह लहनासिंह से आँचल पसार कर माँगती है कि तुमने तांगे के घोड़े से मेरे प्राण बचाए थे, अब मैं अपने पति-पुत्र को तुम्हें सौंप रही हूं। इनकी रक्षा करना। लहना इस कर्तव्य को अपने सिर चढ़ा लेता है। समस्त घटनाक्रम और कथानक का विकास लहना की स्मृति के चित्र के रूप में उपस्थित होता है। मोर्चे पर सूबेदार और उनके पुत्र बोधासिंह की रक्षा करता हुआ लहनासिंह घायल हो जाता है। मृत्यु के पूर्व उसकी स्मृति सद्य हो जाती है। कहानी 'चरम सीमा' पर पहुँच जाती है। वह बजीरा की गोद में पड़ा-'बजीरा पानी पिला दे' बार-बार कहता है। उसके ये शब्द पाठकों के हृदय पर चोट करते हैं। इसी समय लहना 'उसने कहा था' का रहस्य भी स्पष्ट करता है। वह कहना है सूबेदारिनी से कह देना कि जो 'उसने कहा था' उसे लहना ने पूरा कर दिया। उसके पति-पुत्र की रक्षा अपने प्राणों का विसर्जन करके भी की। इस प्रकार 'उसने कहा था' का रहस्य कहानी के अंत में खुलता है। इस प्रकार कथावस्तु-संगठन में स्वाभाविकता है। एक के पश्चात् दूसरी घटना चलचित्र की तरह आती-जाती है।

कहानी में प्रस्तावना भाग को अधिक महत्व नहीं दिया गया। अमृतसर की सड़कों पर इक्के-तांगे वालों के चित्रण के साथ कथानक प्रारंभ हो जाता है। इक्के-तांगे वालों के द्वारा प्रयुक्त शब्दावली सफल वातावरण का निर्माण कर देती है।

(2) चरित्र-चित्रण- चरित्र-चित्रण की दृष्टि से 'उसने कहा था' कहानी एक महान आदर्श प्रस्तुत करती है। लहनासिंह के बाल्यकाल और युवाकाल का यथार्थ जीवन सामने आता है। लहनासिंह का चरित्र यथार्थ की पृष्ठभूमि पर आदर्श का प्रतिनिधित्व करता है। उसके प्रेम में वासना का लेश मात्र भी नहीं है। वह अपने वचन का पालन प्राणों को देकर भी करता है। वह मधुर प्रेम की पवित्र स्मृति में अपने को सहर्ष बलिदान कर देता है।

सूबेदार हजारासिंह का चरित्र-चित्रण भी बहुत कुशलत्ता के साथ किया गया है। उसमे वीरता, धीरता, निर्भयता आदि सभी गुण हैं। अपने अफसर की आज्ञा का पालन करना वह अपना धर्म समझता है और उसके लिए अपने प्राण तक देने

को तैयार है। सूबेदारिन के बाल्य-जीवन और युवाकाल के जीवन पर प्रकाश पड़ता है।

कहानी के सभी पात्रों का परिचय संवाद के द्वारा ही हुआ है। लेखक अपनी ओर से परिचयात्मक एक शब्द भी नहीं लिखता। उस प्रकार कथोपकथनों में नाटकीयता आ गई है।

लहनासिंह और लेफ्टीनेंट साहब का वार्तालाप भी बहुत आकर्षक है। मृत्यु-शय्या पर पड़े हुए लहनासिंह का वजीरासिंह से संवाद बहुत ही मर्मभेदक है। प्रस्तुत कहानी के कथोपकथन कथावस्तु को विकसित करने एवं पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं पर प्रकाश डालने में विशेष सहायक हुए हैं। सभी कथोपकथन सजीव और नाटकीय शैली में हैं।

(3) हास्य का पुट- प्रस्तुत कहानी में हास्य का पुट भी है। उनका हास्य विनोद की ही सीमा तक रहता है। लहनासिंह और नकली लेफ्टिनेंट के साथ हुई बातचीत में जो विनोद की फुलझड़ियां छूटती है, वे पाठक को रस-मग्न कर देती हैं। संपूर्ण कहानी में ममत्व, हास्य और करुणा के समन्वय से जो रस का परिपाक होता है, वह हृदय की तन्मयता प्रदान करता है।

(4) भाषा- 'उसने कहा था' कहानी की भाषा तत्सम शब्द-प्रधान होते हुए भी व्यावहारिक है। वह सरल और प्रसंगानुकूल है। प्रादेशिक भाषा के शब्दों के प्रयोग से भाषा आकर्षणमयी हो गई है। उर्दू, पंजाबी और अंग्रेजी के शब्दों के प्रयोग के साथ-साथ संस्कृत और पंजाबी के कुछ अंश ज्यों-के-त्यों उद्धृत करने से और उसके पश्चात तात्पर्यार्थ देने से शैली साहित्यिक हो गई है। भाषा में समास-प्रधान शैली का अनुभव होने लगता है। बीच में आए हुए मुहावरे भाषा का श्रृंगार करते हैं। मृत्यु-शय्या पर पड़े लहनासिंह के मुख्य से प्रयुक्त भाषा में काव्यात्मकता है।

निष्कर्ष

पावन प्रेम में अपना सर्वस्व दूसरे के लिए बलिदान कर देना और उसका किंचित मात्र भी विज्ञापन न करना ही इस कहानी की मुख्य संवेदना है। एक असफल प्रेमी लहनासिंह पूर्व प्रेम की मधुर स्मृति के आधार पर प्रेमिका के लिए उसके

पति-पुत्र की रक्षा करने में अपना बलिदान करते हुए गौरव का अनुभव करता है। इसमें वासना लेशमात्र भी नहीं है। प्रेम का सात्विक प्रभाव छलक रहा है।

## *6.5 पूस की रात कहानी की समीक्षा*

'पूस की रात' कहानी की कलात्मक समीक्षा

'पूस की रात' कहानी का प्रारंभ, हल्कू के दैनिक जीवन के एक प्रसंग से होता है। वह कंबल खरीदने के लिए तीन रुपये जोड़कर रखता है क्योंकि ठंड का पूस महीना आने वाला है, इस महीने में अपने खेत में तैयार खड़ी फसल की रखवाली करने के लिए उसे खेत की मड़ैया में सोना पड़ेगा? नहीं तो साल भर की कमाई उसकी खेती चौपट हो जायेगी। लेकिन सहसा महाजन आ धमकता है और हल्कू उन तीनों रुपयों को उसे देकर अपना गला छुड़ाता है, पत्नी विरोध करती है लेकिन वह उसे मना लेता है। कम्बल उसकी एक आवश्यकता है लेकिन वह उसे नजर अंदाज करके अपने ऊपर तत्काल आई हुई विपत्ति से पिड छुड़ाता है। कथा की यह प्रस्तावना भाग हल्कू की पारिवारिक स्थिति का सटीक परिचय पात्रों को देती है। कर्ज के एक प्रसंग को लेकर कहानीकार कथावस्तु के संचालक को परिचय देता है। कहानी का शीर्षक और प्रस्तावना भाग में ही, पूस की रात के लिए कंबल खरीदने के लिए तीन रुपये का प्रसंग, कथा का सूत्र है जिसे लेकर कथा वस्तु का विकास किया जाता है।

'पूस की रात' कहानी का कथानक संतुलित और सुगठित है। उसमें रोचकता माछंत रक्षक है। कथावस्तु को तीन चरणों में विकसित किया गया है। पहला परिचय भाग, दूसरा पूस की रात की ठंड से युद्ध करता हुआ हल्कू और उसका कुत्ता, तीसरा सोया हुआ हल्कू और खेत की फसल का नीलगायों द्वारा सत्यानाश। संक्षिप्त कथावस्तु के तीनों चरण अत्यंत गतिशील और रोचक लगते हैं। वस्तु चित्रण के शिल्प में कुछ नवीनता है। संयोग, घटना और स्थितियां इस कथा के विकास में विशेष सहायक नहीं हुई हैं। एक छोटे से प्रसंग में कहानीकार ने ठंड से युद्ध करते हुए हल्कू और उसके कुत्ते का चित्रण बड़े मार्मिक ढंग से किया है और कथा को विकास आयाम स्वाभाविक रूप से प्राप्त हुआ है। उसी प्रकार बगीचे में पत्तियां इकट्ठा कर अलाव जलाने, ठंड भगाने के उपक्रम का वर्णन भी ऐसा

सूत्र है, जिनका आधार लेकर कथा विकसित हुई है। कथा भाग में चित्रण भी अत्यंत यथार्थ रूप से किया गया है जिससे कथानक को सप्राणता हासिल होती है। बगीचे में बैठा हुआ हल्कू, नील गायों द्वारा खेत के सत्यानाश को पूरा-पूरा अहसास कर रहा है, लेकिन ठंड का ऐसा वह भुक्तभो भुक्तभोगी है कि वह बगीचे से निकलने की हिम्मत नहीं जुटा पा रहा है। खेत के सत्यानाश से खेत में सोने का उसका काम ही बंद हो जाता है। यही उसे संतोष है। इस कहानी का कथानक सशक्त और प्रभावशाली है और उसका कौशलपूर्ण विकास हुआ है।

चरित्र-चित्रण- 'पूस की रात' कहानी में पात्रों की संख्या केवल दो है- हल्कू और मुन्नी। हल्कू एक किसान है। मुन्नी उसकी पत्नी है। कहानी हल्कू के ही जीवन की पूस की एक ठंडी रात की कथा है जिसमें गरीब हल्कू कम्बल के अभाव में ठंड का सामना नहीं कर पाता है। भाग कर बगीचे में आकर अलाव जलाता है और ठंड से थोड़ा छुटकारा पाता है। उसका खेत नीलगायों द्वारा चरा जा रहा है। इसकी स्पष्ट आवाज बगीचे में उसके कानों तक पहुँच रही है। लेकिन बगीचे के बाहर खेत की मड़ैया से ठंड का कटु आस्वाद लेकर वह अभी-अभी लौटा है। खेत उसका नष्ट हो जाए लेकिन इस ठंड में खेत तक जाने की हिम्मत उसमें नहीं है। निश्चित होकर वह सूर्योदय हो जाने के बाद तक सोता रहता है। उसकी पत्नी उसे आकर जगाती है और खेत के सत्यानाश का समाचार देती है। गरीब और लाचार हल्कू का चरित्र मार्मिक और प्रेरक है। उसकी पत्नी मुन्नी और उसका कुत्ता जबरा भी इस कहानी के दो अन्य पात्र हैं। मुन्नी पात्र कथा में दो स्थानों पर आई है। जब हल्कू को वह कम्बल के तीन रुपये सहना महाजन को देने से रोकती है और दूसरे वह हल्कू को खेत पर जाकर जगाती है। जबरा उसका ठंड का साथी है।

कथोपकथन- कहानी में 'कथोपकथन' भी एक महत्वपूर्ण तत्व है। कथाकार कथा वस्तु को गति प्रदान करने के लिए, चरित्र को उठाने के लिए तथा नाटकीय रोचकता प्रदान करने के लिए कहानियों में कथोपकथनों की योजना करते हैं। बहुत से कथाकार तो कथोपकथन के माध्यम से ही कथावस्तु को गति प्रसाद देते हैं। लेकिन जहाँ तक प्रेमचंद की कहानियों का प्रश्न है, उनमें कथोपकथनों की कोई अहम भूमिका नहीं है। समग्र रूप से देखने पर यह तथ्य मिलता है।

कथोपकथन के स्थान पर, प्रेमचंद जी ने अपनी अभिव्यक्त शैली के विविध शिल्पों से काम लिया है। 'पूस की रात' कहानी में कथोपकथन बहुत थोड़े हैं, पर जो हैं वे छोटे, ठोस और सुगठित हैं। कथोपकथन जो भी आए हैं वे आवश्यक रूप से हैं और कथावस्तु को गति प्रदान करने के साथ ही चरित्र को भी अभिव्यक्त करते हैं। इस कहानी में जबरा कुत्ते के साथ हल्कू के कुछ एक संवाद भी हैं जो कथावस्तु को अति रोचक बनाते हैं। इस कहानी की शैली वर्णनात्मक है, जिसके कारण कथोपकथन की सृष्टि कम हुई है।

वातावरण- 'पूस की रात' सामाजिक परिवेश से ली गई कहानी है। इसमें सामाजिक जीवन के एक वर्ग विशेष के वातावरण की झांकी देखने को मिलती है। किसानों की निर्यात, दीनता, उनकी दैनिक परिचर्या और समस्या आदि इस कहानी के देशकाल के मूल तत्व हैं। 'पूस की रात' कहानी में जिस वातावरण को चित्रित किया गया है वह आधुनिक भारत के किसानों की वर्तमान नियति को उजागर करता है-खेत की फसल के सत्यानास हो जाने के बाद मुन्नी की चिंता-कि अब मजदूरी करके मालगुजारी अदा करनी पड़ेगी, भारत के छोटे किसानों के एक बहुत बड़े वर्ग की परिस्थितियों को उजागर करती है। इसी प्रकार किसानों के कर्ज से लदे होने, अपनी आवश्यकता का सामान न खरीद पाने, साधनहीनता की स्थिति में कुछ भी न कर सकने की स्थिति में होने आदि कुछ ऐसे सूत्र और प्रसंग इस कहानी में हैं जो कथात्मकं वातावरण के स्वरूप का बोध देते हैं।

'पूस की रात' कहानी में पूस की रात के प्राकृतिक वातावरण का भी चित्रण हुआ है। इस वातावरण की योजना को हम ऑचलिक वातावरण की संज्ञा दे सकते हैं। 'पूस की रात' में भारत के जिन इलाकों में कड़ाके की ठंड पड़ती है, उसी आँचलिक प्राकृतिक वातावरण का परिचन इन प्रसंगों में मिलता है। इस कहानी में वर्णित कथावस्तु रात के वातावरण में घटित होती हैं।

भाषा-शैली- प्रेमचंद जी की कहानियों की भाषा अपना जोड़ नहीं रखती है। सहज प्रवाहपूर्ण चलती हुई मोहक हिन्दी भाषा का जो स्वरूप प्रेमचंद की कहानियों में मिलता है वही आगे आने वाली साहित्य रचनाओं के लिए आदर्श बना। प्रेमचंद जी की कहानियों की भाषा सरल, आम आदमी की भाषा है जो आम व्यवहार में प्रचलित उर्दू और लोकभाषाओं के शब्दों से मिश्रित है। पूस की रात कहानी की

भाषा का स्वरूप वही है जो प्रेमचंद जी की अन्य श्रेष्ठ कहानियों की भाषा का है। इस कहानी की भाषा का एक स्वरूप दृष्टव्य है-

"हल्कू ने आग जमीन पर रख दी और पत्तियां बटोरने लगा। जरा देर में पत्तियों का एक ढेर लगाया। हाथ ठिठुरे जाते थे। नंगे पांव गले जाते थे और वह पत्तियों का पहार खड़ा कर रहा था। इसी अलाव में वह ठंड को जलाकर भस्म कर देगा।"

प्रेमचंद जी की कहानियों की सहज स्वाभाविक भाषा का सामान्य रूप है जो समग्र रूप में दिखाई देगा जिसमें संवेदना है, तीव्रता है और स्निग्धता के साथ एक मौलिक मनोहरता है। 'पूस की रात' कहानी की भाषा में उपर्युक्त स्वरूप के अतिरिक्त सांकेतिक, व्यंग्य प्रधान अर्धगर्भित भाषा का प्रांजल स्वरूप भी देखने को मिलेगा।

"वह अपनी दीनता से आहत न था, जिसने उसे आज इस दिशा में पहुँचा दिया। न ही इस अनोखी मैत्री से जैसे उसी आत्मा के सब द्वार खोल दिये थे और उसका एक अणु प्रकाश में चमक रहा था।"

'पूस की रात' कहानी की भाषा में साहित्यिक बोझिलता नहीं है। जटिल शब्दों अथवा बोझिल वाक्यों का प्रयोग बिल्कुल नहीं हुआ है। भाषा आम व्यवहार की है, जिसे साधारण से साधारण स्तर का पाठक भी आसानी से समझ सकता है। 'पूस की रात' कहानी की भाषा को व्यावहारिक भाषा भी कहा जा सकता है।

इस कहानी की कथा शैली भी विलक्षण एवं कौशलपूर्ण है। 'पूस की एक रात' के शीत और ठंड लगने के सूक्ष्म प्रसंग को लेकर कथाकार ने बड़ी कुशल अभिव्यक्ति प्रदान की है। भाव या कल्पना कितने भी ऊँचे स्तर की हो, यदि वे कलात्मक अभिव्यक्ति के अवसर नहीं कर पाते हैं तो उनकी कोई सार्थकता नहीं है। पूस की रात में भयानक सर्दी एवं अंधकार हल्कू को एक क्रिया पर ठहराव देकर, कथाकार ने अपूर्व कौशल के साथ पिशाच की तरह बर्फीली हवा और भयंकर शीत का चित्रित किया है। कथा हल्कू की क्रियाओं से गति प्राप्त करती है। ऐसा लगता है कि धीरे-धीरे पूस की रात के बढ़ने के साथ ही शीत बढ़ने और कथा-विकास का चरमोत्कर्ष की ओर बढ़ने का क्रम एक साथ चलता है।

उद्देश्य- 'पूस की रात' कहानी हल्कू के विपन्न जीवन का चित्र है। हल्कू आधुनिक भारत के निचले स्तर के एक बहुत बड़े वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। 'पूस की रात' कहानी में हल्कू के माध्यम से कथाकार ने आधुनिक भारत के दीन कर्जदार किसानों की वास्तविक तस्वीर चित्रित करने का प्रयत्न किया है, जिसमें वह पूर्ण सफल हुआ है। टूटे और हारे हुए किसानों की समस्या को उठाकर कथाकार ने उनके समाप्त होते भविष्य की ओर आँख उठाने का संदेश इस कहानी से दिया है। हल्कू जैसे किसान क्या महाजनों के कर्जदार बनकर ही पीढ़ी दर पीढ़ी जीते और ठंड से कांपते रहेंगे ? यह कहानी सामाजिक चेतना और जागृति प्रदान करती है।

## *6.6 गुण्डा कहानी की समीक्षा*

कहानी के तत्वों के आधार पर "गुंडा" कहानी की समीक्षा

कहानी के तत्व इस तरह हैं- (1) वर्गीकरण एवं कथावस्तु, (2) पात्र एवं चरित्र चित्रण, (3) भाषा एवं शैली, (4) उद्देश्य, (5) मनोरंजकता एवं समस्याएं, (6) देशकाल एवं वातावरण, (7) संवाद एवं कथोपकथन ।

वर्गीकरण- वर्गीकरण की दृष्टि से गुंडा एक ऐतिहासिक कहानी है, जिसमें अंग्रेजों एवं काशी के राजा पर उनका आक्रमण इत्यादि की घटना है।

कथावस्तु - इस कहानी की कथावस्तु सन् 1881 की है, जब काशी के राजा चेतसिह थे एवं उन्हें हिरासत में लेने के लिए अंग्रेजों ने उन्हें घेर लिया था।

कहानी संक्षेप में इस तरह है। नन्हकूसिह एक प्रतिष्ठित जमीदार का पुत्र है, जो अपनी समस्त संपत्ति जुएं में हारकर तथा उसे दान देकर गुण्डा बन गया था। वह जीवन के प्रारंभ में राजधानी पन्ना से प्रेम करने लगा था, पर उस समय के राजा बलवंतसिंह ने पन्ना से बलात विवाह कर लिया और नन्हकूसिह विद्रोही हो गया। नन्हकूसिह जुआ खेलता तथा दुलारी वैश्या को कोठे के नीचे बैठकर उसका गाना सुनता था, वह कोठे पर कभी नहीं चढ़ा। एक बार कुबरा मौलवी दुलारी को बुलाने आया तो नन्हकूसिह ने उसे झापड़ मार कर भगा दिया, वैसे कुबरा मौलवी दरोगा था तथा उसका बड़ा दबदबा था। एक समय बोधीसिंह के पुत्र की बरात आ रही थी-नन्हकू तथा बोधीसिह की एक बार खटपट हो गई थी आज नन्हकू

अड़ गया कि बरात नहीं जा पाएगी, इस पर बोधीसिह ने कहा कि जब समधीजी (नन्हकूसिह) यहाँ हैं तो बासत के साथ मुझे जाने की आवश्यकता नहीं है और वे लौट गए। नन्हकूसिंह ने पूरी बारात की व्यवस्था की बोधीसिह के पुत्र का विवाह करवाया-जो खर्च हुआ उसे लगाया ब्याह कराकर दूसरे दिन इसी दुकान पर आकर रुक गए लड़के और उसकी बारात को घर भेज दिया।

अंग्रेजों ने धांधली मचा रखी थी तथा उन्होंने राजा चेतसिह तथा रानी पन्ना को हिरासत में लेने के लिए घेर लिया। नन्हकूसिंह को जब पता चला तो वे अपने साथियों के साथ राजमहल पहुँच गये, उन्होंने पन्ना और चेतसिंह को कहा आप नाव से निकल जाइए मैं अंग्रेजों को रोकता हूं। नन्हकूसिह ने डटकर अंग्रेज सैनिकों का सामना किया तथा राजा चेतसिह एवं रानी पन्ना को वहाँ से पलायन करने में मदद ही नहीं की स्वयं को उत्सर्ग कर दिया। वह काशी का एक गुंडा था।

पात्र- कहानी में पात्र इस प्रकार हैं- (1) नन्हकूसिह, (2) वंशी, (3) मन्नू तमोली, (4) दुलारी-वेश्या, (5) मलूकी, (6) बोधीसिह, (7) बल्लू सारंगीवाला. (8) मौलवी अलाउद्दीन कुबरा, (9) महाराजा चेतसिह, (10) राजमाता पन्ना, (11) बलवंत सिंह, (12) निरंजनसिंह नन्हकू का पिता, (13) हिम्मतसिह, (14) जनानी ड्योढ़ी का दरोगा, (15) इस्टाकर ।

इनमें से अधिकतर पात्रों के नामों का उल्लेख है वे कहानी में सक्रिय नहीं हैं, विशिष्ट पात्रों में नन्हकूसिंह, दुलारी, राजमाता पन्ना, राजा चेतसिह और मौलवी कुबरा हैं।

चरित्र-चित्रण- नन्हकूसिंह-कहानी का नायक है जो जमीदार निरंजनसिंह का पुत्र है। अपनी समस्त संपत्ति उड़ाकर गुंडा बन गया है। वह एक चरित्रवान वीर व्यक्ति है। दुलारी के कोठे के ऊपर कभी नहीं गया-वह नीचे से संगीत सुनता है। प्रसादजी के शब्दों में उसकी चारित्रिक विशेषताएं देखिए-

जीवन की किसी अलम्य अभिलाषा से वंचित होकर जैसे प्रायः लोक विरक्त हो जाते हैं, ठीक उसी तरह किसी मानसिक चोट से घायल होकर, एक प्रतिष्ठित जमींदार का पुत्र होने पर भी, नन्हकूसिह गुण्डा हो गया था। दोनों हाथ से उसने अपनी संपत्ति लुटाई। नन्हकूसिंह ने बहुत-सा रुपया खर्च करके जैसा स्वांग खेला

था, उसे काशी वाले बहुत दिनों तक नहीं भूल सके। बसंत ऋतु में यह प्रहसनपूर्ण अभिनय खेलने के लिए उन दिनों प्रचुर धन, बल, निर्भीकता और उच्छृंखलता की आवश्यकता होती थी। एक बार नन्हकूसिंह ने भी एक पैर में नूपुर, एक हाथ में तोड़ा, एक आँख में काजल, एक कान में हजारों के मोती तथा दूसरे कान में फटे हुए जूतों का तल्ला लटकाकर, एक में जड़ाऊ मूड़ की तलवार, दूसरा हाथ आभूषणों से लदी हुई अभिनय करने वाली प्रेमिका के कंधे पर रखकर गया था- 'कहीं बैंगन वाली मिले तो बुला देना।'

वह पहले पन्ना से प्रेम करता है, पर उससे ब्याह नहीं कर पाता। वह आहत प्रेमी है और स्त्रियों से घृणा करने लगता है एवं मरने के लिए बहुत कुछ करता है, पर मर नहीं पाता, उसके चरित्र का उद्घाटन यह घटना कहती है-

स्थिर होकर उसने कहा-'दुलारी जीवन में आज यह पहला ही दिन है कि एकांत रात में एक स्त्री मेरे पलंग पर आकर बैठ गई है, मैं चिरकुमार अपनी एक प्रतिज्ञा का निर्वाह करने के लिए सैकड़ों असत्य, अपराध करता फिर रहा हूं। क्यों? तुम जानती हो? मैं स्त्रियों का घोर विद्रोही हूं और पन्ना पर उसका क्या अपराध ! अत्याचारी बलवंतसिंह के कलेजे में बिछुआ मैं न उतार सका। किन्तु पन्ना ! उसे पकड़कर गोरे कलकत्ते भेज देंगे! वहीं...।'

नन्हकूसिह उन्मत्त हो उठा था। दलारी ने देखा, नन्हकू अंधकार में ही वह वटवृक्ष के नीचे पहुंचा और गंगा की उमड़ती हुई धारा में डोंगी खोल दी-उसी घने अंधकार में। दुलारी का हृदय कांप उठा ।

वह अत्यंत दयालु भी है तथा वीर तथा साहसी भी है। राजा चेतसिंह एवं रानी पन्ना को बचाने के लिए मौलवी कुबरा एवं अंग्रेज एकाधिकारी ईस्टर का वध कर देता है। राजा चेतसिंह और रानी पन्ना को महल से बाहर पलायन करने में सहायता करता है एवं प्राणोत्सर्ग कर देता है। वह गुण्डा होते हुए भी महान है।

दुलारी-सामान्य वेश्या है जो मन में नन्हकूसिह से प्रेम करती है तथा राजमाता पन्ना के यहाँ भजन गाती है। वह नन्हकू के संपर्क में आती है। नन्हकू वासना से दूर रहता है। उसे नन्हकू अपने मन की व्यथा सुनाता है। वह राजमाता पन्ना को नन्हकूसिह के बारे में अवगत कराती है।

अन्य पात्र सामान्य है तथा अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं।

भाषा एवं शैली- प्रसादजी सामान्यतः क्लिष्ट भाषा का प्रयोग करते हैं, पर गुण्डा कहानी की भाषा एकदम सरल-सहज है। प्रसगान सार व्यंग्यात्मक, विक्टणस्मक हो जाती है। शब्दों में सबलता है वह अत्यंत प्रभावशाली है। उसमें संस्कृत के तत्सम तद्भव, देशज, विदेशी सभी प्रकार के शब्द हैं। वह कहीं चुटीली है तो कहीं मरहम लगाती है। भाषा में सरसता है, वह मार्मिक भी है। उसमें प्रसंगानुसार लोकोक्ति मुहावरों का प्रयोग भी है। वह अमिधा-लक्षणा और व्यंजना शब्द शक्ति से परिपूर्ण है।शैली प्रसादजी की शैलियां इस तरह हैं- (1) वर्णनात्मक शैली, (2) विश्लेषणात्मक, (3) भावात्मक चित्रात्मक । इसके अतिरिक्त (4) ऐतिहासिक, (5) चरित्र प्रधान शैली का प्रयोग किया है। वह व्यंजक एवं मनोरंजक है, उनकी शैली का काव्यमय अलंकृत शैली है, उन्होंने नवीन शैली का प्रयोग किया है।

उद्देश्य- गुंडा कहानी में निम्नलिखित उद्देश्य निहित है-

(1) ऐतिहासिक घटना राजा चेतसिंह को हिरासत में लेने इत्यादि का प्रकाशन

(2) उस समय की राजनीतिक, सामाजिक अवस्था का प्रकाशन ।

(3) लोग जिसे गुण्डा कहते हैं, वे कितने चरित्रवान हैं एवं ऐसे विशिष्ट चरित्रों का उद्घाटन ।

(4) स्वयं के अध्ययन की अभिव्यक्ति एवं मनोरंजन प्रदान करने की प्रवृत्ति का प्रकाशन ।

मनोरंजकता एवं समस्याएं- गुण्डा कहानी अत्यंत रोचक है, उसकी भाषा अत्यंत सहज मधुर एवं मनमोहक है। घटना क्रम का वर्णन इतना रोचक है कि हमारे सामने चलचित्र की भांति दृश्य दिखलाई पड़ने लगते हैं। शैली अत्यंत मधुर एवं प्रभावोत्पादक है। कहानी पाठक को बाँध लेती है। पर्याप्त मनोरंजन के साथ ज्ञानवर्धक भी है। उसमें राजनीतिक तथा सामाजिक समस्याओं का निरूपण है। जिसे हम गुण्डा कहते हैं, उसकी समस्या न होकर अंग्रेजों की कुटिल चाल एवं तात्कालिक परिस्थिति समस्याओं का समावेश है।

देशकाल वातावरण- यह भारत के काशी नगर की कहानी है अतः भारतीय परिवेश की कहानी है। सन् 1881 की घटना पर आधारित है। कहानी में वातावरण का निर्वाह अत्यंत कुशलतापूर्वक किया गया है-नन्हकूसिह का गुण्डा बनना, पन्ना से प्रेम, दुलारी का गीत सुनना, दुलारी का नन्हकू से प्रेम, बोधीसिंह के पुत्र का

विवाह वर्णन, कुबरा मौलवी का आविर्भाव-राजा चैतसिह के लिए उत्सर्ग इत्यादि घटनाओं के वातावरण का निर्माण अत्यंत सटीक तथा मनोहारी है।

संवाद- कहानी में प्रचुर संवाद हैं, वे छोटे-छोटे एवं प्रसंगानुकूल हैं। वे प्रभावोत्पादक एवं मार्मिक हैं। इनकी भाषा भी प्रसंग के अनुसार व्यंग्यात्मक चुटीली या सामान्य है। एक मार्मिक संवाद देखें-

दुलारी ने कहा-'बाबू साहब, यह क्या? स्त्रियों पर भी तलवार चलाई जाती है। छोटे से दीपक के प्रकाश में वासना भरी रमणी का मुख देकर नन्हकू हंस पड़ा। उसने कहा- "क्यों बाईजी ! क्या इसी समय जाने की पड़ी है। मौलवी ने फिर बुलाया है क्या?" दुलारी नन्हकू के पास बैठ गई। नन्हकू ने कहा-'क्या तुमको डर लग रहा है?'

*'नहीं मैं कुछ पूछने आई हूं।'*

*'क्या?'*

*'क्या यही कि कभी तुम्हारे हृदय में..'*

*आधुनिक हिन्दी गद्य और उसका इतिहास*

*'उसे न पूछो दुलारी ! हृदय को बेकार ही समझकर तो उसे हाथ में लिए फिर रहा हूं। कोई कुछ कर देता है-कुचलता-चीरता-उछलता। मर जाने के लिए सब कुछ तो करता हूं पर मरने नहीं पाता ।'*

छोटे संवादों का एक और उदाहरण देखें-

*इसी समय किसी ने पुकारा-हिम्मतसिह*

*खिड़की में से सिर निकालकर हिम्मतसिंह ने पूछा-कौन ?*

*'अच्छा, तुम अब तक बाहर ही हो ?'*

*'पागल ! राजा कैद हो गए हैं। छोड़ दो इन सब बहादुरों को हम एक बार इनको लेकर शिवालय घाट जाएंगे।'*

*'ठहरो-कहकर हिम्मतसिंह ने कुछ आज्ञा दी, सिपाही, बाहर निकले। नन्हकू की तलवार चमक उठी। सिपाही भीतर भागे। नन्हकू ने कहा- 'नमकहरामों, चूड़िया पहन लो।' लोगों को देखते-देखते नन्हकू चला गया। कोतवाली के सामने फिर सन्नाटा हो गया।*

## 6.7 सार संक्षेप

इस इकाई में शामिल रचनाएँ–हरिशंकर परसाई की **'पगडंडियों का जमाना'**, चंद्रधर शर्मा गुलेरी की **'उसने कहा था'**, प्रेमचंद की **'पूस की रात'**, और जयशंकर प्रसाद की **'गुंडा'**–भारतीय समाज, संस्कृति और मानवीय मूल्यों का गहरा चित्रण करती हैं। ये रचनाएँ समाज में नैतिकता की गिरावट, प्रेम और कर्तव्य के शाश्वत मूल्य, किसानों की दयनीय स्थिति और समाज में विद्रोह व बलिदान के पहलुओं पर प्रभावी प्रकाश डालती हैं। साहित्यकारों ने इन कृतियों के माध्यम से सामाजिक विडंबनाओं और मानवीय संवेदनाओं का विश्लेषण किया, जो पाठकों को सोचने और आत्ममंथन के लिए प्रेरित करती हैं।

## 6.8 मुख्य शब्द

1. **आक्रमण** - किसी के ऊपर अचानक हमला करना, चढ़ाई करना।
2. **स्वांग** - दिखावा करना, जो असल में न हो वैसा दिखाने का प्रयास।
3. **उच्छृंखलता** - अनुशासनहीनता, बेपरवाही से व्यवहार करना।
4. **कर्जदार** - जिसे किसी से उधार या ऋण लेना पड़ा हो।
5. **सत्यानास** - पूरी तरह से नष्ट हो जाना, बर्बाद हो जाना।
6. **स्निग्धता** - कोमलता, चिकनापन या मृदुता।
7. **संवेदना** - किसी के प्रति सहानुभूति या दर्द में साथ देना।
8. **महाजन** - एक धनी व्यक्ति, विशेषकर जो उधार देता हो।
9. **प्रतिज्ञा** - दृढ़ निश्चय करना, किसी कार्य को करने का वचन देना।
10. **आश्रय** - किसी की शरण लेना, किसी पर निर्भर रहना।

## 6.9 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

**प्रगति की जाँच**

उत्तर: 1. असत्य

उत्तर: 2. सत्य

उत्तर: 3. असत्य

उत्तर: 4. सत्य

## *6.10 संदर्भ सूची*


1. द्विवेदी, ह. प्र. (2004). **हिंदी साहित्य का इतिहास**. दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
2. पराशर, ह. (2010). **भाषा विज्ञान और हिंदी भाषा**. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन।
3. मिश्र, द. (2015). **आधुनिक हिंदी काव्य: एक विवेचन**. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन।
4. शुक्ल, क. (2018). **कथा साहित्य में सामाजिक चेतना**. जयपुर: साहित्य सदन।
5. शर्मा, प. (2020). **व्यंग्य साहित्य का इतिहास**. वाराणसी: विश्वविद्यालय प्रकाशन।
6. गुप्ता, र. (2022). **रचनात्मक लेखन: सिद्धांत और प्रक्रिया**. भोपाल: मध्य प्रदेश ग्रंथ अकादमी।


## *6.11 अभ्यास प्रश्न*

1. पगडण्डियों का जमाना निबंध का आशय स्पष्ट कीजिए।
2. कहानी तत्वों के आधार पर 'उसने कहा था' की समीक्षा कीजिए।
3. पूस की रात कहानी की भाषा-शैली को स्पष्ट कीजिए।
4. 'गुण्डा' कहानी का सारांश लिखिए।

# इकाई - 7
# समीक्षात्मक अध्ययन - III

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 अपना अपना भाग्य कहानी का सारांश
7.4 राजा निरबंसिया का कथा तत्व
7.5 सिक्का बदल गया सिक्का बदल गया कहानी की समीक्षा
7.6 शाहनी का चरित्र-चित्रण
7.7 सार संक्षेप
7.8 मुख्य शब्द
7.9 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर
7.10 संदर्भ सूची
7.11 अभ्यास प्रश्न

## *7.1 प्रस्तावना*

हिंदी साहित्य में अनेक कहानियाँ समाज की संवेदनहीनता, मानवीय संघर्ष, और यथार्थ के कटु पहलुओं को उजागर करती हैं। "अपना-अपना भाग्य" समाज में व्याप्त स्वार्थ और असंवेदनशीलता का मार्मिक चित्रण है, जिसमें एक गरीब पहाड़ी बालक की ठंड और भूख से जूझते हुए मृत्यु मानवता के पतन का आईना बनती है। कहानी यह प्रश्न उठाती है कि यह त्रासदी क्या केवल "भाग्य" की देन है या समाज की सामूहिक जिम्मेदारी का अभाव।
इसी तरह, कमलेश्वर की "राजा निरबंसिया" मध्यवर्गीय जीवन की वास्तविकताओं, पारिवारिक संघर्षों और पितृसत्तात्मक सोच को उकेरती है। यह कहानी भावनात्मक गहराई और यथार्थवादी दृष्टिकोण के साथ समाज की जटिलताओं को सामने रखती है।

वहीं, कृष्णा सोबती की "सिक्का बदल गया" विभाजन की विभीषिका और मानवीय संबंधों के द्वंद्व को दर्शाती है। यह कृति विभाजन के दौरान प्रेम, त्याग, और सहिष्णुता की कहानियों को सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भों में प्रस्तुत करती है।

ये कहानियाँ मानवीय संवेदनाओं की सजीव अभिव्यक्ति हैं, जो पाठकों को न केवल समाज की वास्तविकताओं से परिचित कराती हैं, बल्कि गहराई से सोचने पर विवश करती हैं।

## *7.2 उद्देश्य*

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- कहानी के कथानक के माध्यम से सामाजिक, सांस्कृतिक, और भावनात्मक विषयों की अभिव्यक्ति।
- पात्रों के संघर्ष और उनकी भावनात्मक गहराई को समझने की क्षमता।
- साहित्यिक रचनाओं में यथार्थवाद और मानवीय संवेदनाओं का प्रभावी चित्रण।
- लेखक द्वारा प्रस्तुत नैतिक मूल्यों और सामाजिक समस्याओं की विवेचना।
- विभाजन, सामाजिक विषमता, और पितृसत्तात्मक सोच जैसे मुद्दों की समझ।

## *7.3 अपना अपना भाग्य कहानी का सारांश*

लेखक अपने मित्र के साथ नैनीताल में बिना किसी उद्देश्य के घूम रहे थे। वे एक बैंच पर बैठ गए। संध्या धीरे-धीरे उतरती चली जा रही थी। तभी एक काली-सी मूर्ति उनकी तरफ आती दिखाई दी। वह एक लड़का था, जो अपने बड़े-बड़े बाल खुजलाता चला आ रहा था। उसके पैर तथा सिर नंगे थे और एक मैली-सी कमीज लटका रखी थी। वह कोई 10-12 साल का होगा। मित्र ने उसे आवाज देकर पूछा- दुनिया सो गई, तू ही क्यों घूम रहा है? लड़का चुप रहा। अन्य प्रश्नों के उत्तर में उसने बताया कि वह यहीं-कहीं सोएगा, कल दुकान पर सोया था, आज नौकरी से हटा दिया गया है। सारा काम करने पर उसे एक रुपया और झूठा खाना मिलता था। आज वह भूखा है। उसके माँ-बाप हैं, जो पन्द्रह कोस दूर गाँव में रहते हैं। वह भूख से तंग होकर गाँव से भाग आया है। इतना जानकर वे उसे अपने साथ लेकर एक होटल पहुँचे, जहाँ उनका परिचित एक वकील ठहरा हुआ था। वकील के पूछने पर उन्होंने कहा- आपको नौकर की जरूरत थी, इस लड़के को रख लीजिए। वकील साहब बोले- "ये पहाड़ी बड़े शैतान होते हैं, आप भी क्या अजीब हैं, उठा लाए कहीं से, लो जी यह नौकर रख लो।" लेखक तथा उसके मित्र के बार-बार कहने पर भी वकील साहब ने उसे नौकर नहीं रखा।

लेखक तथा उसके मित्र को तेज सर्दी का अनुभव हुआ, पर वे संसार को स्वार्थी कह-कर अपने-अपने बिस्तर में गर्म होने चले गए। दूसरे दिन वह लड़का उनके 'होटल-डि-पब' में नहीं आया। मोटर में सवार होते ही यह समाचार मिला- "पिछली रात, एक पहाड़ी बालक, सड़क के किनारे-पेड़ के नीचे ठिठुरकर मर गया।" मरने के लिए उसे वही जगह, वही दस बरस की उम्र और वही काले चिथड़ों वाली कमीज मिली। उस गरीब के मुंह, छाती, मुट्ठियों और पैरों पर बर्फ की हल्की-सी चादर चिपक गई थी, मानो इस दुनिया की बेहयाई को ढकने के लिए प्रकृति ने सफेद और ठण्डे कफन का प्रबन्ध कर दिया हो। सबका अपना-अपना भाग्य है-यही सोचकर वे लोग रह गए।

अपना-अपना भाग्य' कहानी के माध्यम से लेखक ने समाज में व्याप्त स्वार्थ तथा साधन-सम्पन्न लोगों की हृदयहीनता की प्रवृत्ति को उजागर किया है। इस कहानी में लेखक ने बड़े ही मार्मिक ढंग से एक ऐसे गरीब लड़के का चित्रण

किया है, जो नैनीताल की भयंकर सर्दी में भूख तथा ठंड से ठिठुर कर मर जाता है लेकिन समाज के सुख-सुविधा से सम्पन्न लोग उसकी कोई सहायता नहीं करते। वकील साहब उसे नौकर रखने से इसलिए मना कर देते हैं कि उन्हें उसके चरित्र पर ही सन्देह होता है। लेखक भी अपने मित्र के साथ उस लड़के को नैनीताल की भयंकर ठंड में अकेला छोड़कर आ जाता है। यह उनकी स्वार्थी मनोवृत्ति की ही सूचक है।

दूसरे, समय पर तो समाज के साधन सम्पन्न लोग मदद नहीं करते और बाद में उसके कारुणिक अन्त पर यह सोचकर अपने मन को सांत्वना देते हैं कि उनका भाग्य ही ऐसा था।

## *7.4 राजा निरबंसिया का कथा तत्व*

**कथावस्तु -** एक कहानी एक लोककथा पर आधारित है। इसमें मानवीय संवेदना को प्रकट किया गया है। आज का युवक जगपति अपनी पत्नी चंदा जो कि पतिता है, उसे अपना नहीं सकता है। जबकि युगों पूर्व चरित्रहीन रानी को राजा निरबंसिया ने लोक मर्यादा की परवाह न करते हुए अपना लिया था। चंदा एक सतीत्व को मानने वाली ग्रामीण नारी है, वह अपने पति जगपति के इलाज के लिए सारे कष्ट सहन करती है। जगपति की निर्धनता, उसके द्वारा बचनसिंह से आर्थिक सहायता प्राप्त करना, उसका नपुंसक होना तथा चंदा के मातृत्व पर प्रहार करना, चंदा को बचनसिंह से अनैतिक संबंध स्थापित करने हेतु बाध्य कर देता है-

बचनसिंह आवाक् ताकता रह गया तथा चंदा ऐसे वापस लौट पड़ी, जैसे किसी काले पिशाच के पंजों से मुक्ति मिली हो। बचनसिंह के सामने क्षण-भर में सारी परिस्थिति कौंध गई और उसने वहीं से बहुत संयत आवाज में जबान को दबाते हुए जैसे बड़ी धीमी आवाज में 'चंदा ।' वह आवाज इतनी बेआवाज थी और निरर्थक होते हुए भी इतनी सार्थक थी कि उस खामोशी में अर्थ भर गया।

*चंदा रुक गई।*

*बचनसिह उसके पास जाकर रुक गया।*

सामने का घना पेड़ स्तब्ध खड़ा था, उसकी काली परछाई की परिधि जैसे एक बार फैलकर उन्हें अपने वृत्त में समेट लेती और दूसरे ही क्षण मुक्त कर देती। दवाखाने का लैप सहसा भभककर रुक गया और मरीजों के कमरे में से एक कराह की आवाज दूर मैदान के छोर तक जाकर डूब गई।

कथा में चंदा व्यभिचार के कारण बचनसिंह के पुत्र की माँ नहीं बनती वरन् जगपति की पौरुषहीनता, गरीबी, नारी का आहत मातृत्व उसे पुत्र की माँ बनने के लिए प्रेरित करते हैं। अंत में जगपति परिस्थितियों से समझौता नहीं कर पाता तथा आत्महत्या कर लेता है।

**पात्र एवं चरित्र-चित्रण-** प्रस्तुत कहानी में प्रमुख पात्र तीन है-जगपती, चंदा तथा बचनसिंह । सहायक पात्र है-मुंशीजी, जगपती की वेबा चाची आदि ।

कथा जगपती के चरित्र को उजागर करती है। जगपती नपुंसक है। वह शादी के छह साल बाद भी बाप नहीं बन पाता है। इससे चंदा के मातृत्व को ठेस पहुँचती है। वह अपनी नपुंसकता न देख चंदा को ही उसका दोष देता रहता है। ऐसी स्थिति में चंदा बचनसिह से संबंध स्थापित कर एक पुत्र को जन्म देती है। जगपती उसकी इस करतूत को सहन नहीं कर पाता है। अंत में वह आत्महत्या कर लेता है।

चंदा का चरित्र एक पतिव्रता नारी का है पर वह मातृत्व प्राप्त करने की इच्छा से कंपाउंडर बचनसिंह से संबंध बना बैठती है। यह उसके चरित्र की कमजोरी है। वह कथा के प्रारंभ में अपने पति की सेवा भी खूब करती है इससे उसके चरित्र की सेवा भावी होने की विशेषता भी प्रकट होती है। वह चरित्र की हीन नहीं थी पर उसे मातृत्व की चाह ने इस मार्ग पर चलने के लिए विवश कर दिया।

कथा के अन्य पात्र कथा को गति देने में अपनी भूमिका का निर्वाह करते हैं जिससे पाठक इस कहानी में स्वयं को उलझा हुआ पाता है। पात्र तथा चरित्र-चित्रण की दृष्टि से कहानी उत्कृष्ट है।

**कथोपकथन-** राजा निरबंसिया कहानी के कथोपकथन अत्यंत स्वाभाविक और यथार्थपूर्ण हैं। इसमें कहानीकार ने अत्यंत सीमित कथोपकथनों को प्रस्तुत किया है। दूसरे शब्दों में इस कहानी में कथाकार ने सिर्फ वर्णनात्मकता

और चित्रात्मकता के माध्यम से संपूर्ण कथा-तत्व को प्रस्तुत कर दिया है। जो कुछ भी संवाद इसमें आए है वे सभी कुछ स्वाभाविक तथा प्रसंगतः आये हैं। उनमें कथाकार से किसी प्रकार से अस्वाभाविकता या अप्रासंगिकता नहीं आ पाई है। कुछ उदाहरण देखने योग्य हैं।

चंदा ने जगपती की कलाई दाबते-दाबते धीरे से कहा, "कंपाउंडर साहब कह रहे थे.." और इतना कहकर वह जगपती का ध्यान आकृष्ट करने के लिए चुप हो गई।

*"क्या कह रहे थे?" जगपती अनमने स्वर में बोला।*

*"कुछ ताकत की दवाइयां तुम्हारे लिए जरूरी हैं।"*

*"मैं जानता हूं।"*

*"पर"*

*"देखो चंदा, चादर के बराबर ही पैर फैलाये जा सकते हैं। हमारी औकात इन दवाइयों की नहीं।" "औकात आदमी की देखी जाती है कि पैसे की, तुम तो.."*

*"देखा जायेगा।"*

*"क्या कंपाउंडर साहब इंतजाम कर देंगे, उनसे कहूंगी मैं।"*

*"नहीं चंदा, उधारखाते से मेरा इलाज नहीं होगा चाहे एक के चार दिन लग जाएं।"*

*"इसमें तो" "तुम नहीं जानती, कर्ज कोढ़ का रोग होता है, एक बार लगने से तन तो गलता ही है, मन भी रोगी हो जाता है।"*

*"लेकिन" कहते-कहते वह रुक गई।*

जगपती ने अपनी बात की टेक रखने के लिए दूसरी ओर मुंह घुमा लिया।

देशकाल या वातावरण- राजा निरबंसिया कहानी का देशकाल या वातावरण सामयिक है। यह लोककथा पर आधारित है अतः ग्रामीण परिवेश के दृश्य अधिक हैं, यथा-

कस्बे का अस्पताल था। कंपाउंडर ही मरीजों की देखभाल करते। बड़ा डॉक्टर तो नाम के लिए था या कस्बे के बड़े आदमियों के लिए। छोटे लोगों के लिए तो कंपाउंडर साहब ही ईश्वर के अवतार थे। मरीजों की देखभाल करने वाले रिश्तेदारों की खाने-पीने की मुश्किलों से लेकर मरीज की नबज तक संभालते थे। छोटी-सी इमारत में अस्पताल आबाद था। रोगियों के लिए सिर्फ छह-सात खाटें थीं। मरीजों

के कमरे में लगा दवा बनाने का कमरा था, उसी में एक ओर एक आराम-कुर्सी थी और एक नीची-सी मेज। उसी कुर्सी पर बड़ा डॉक्टर आकर कभी-कभार बैठता, नहीं तो बचनसिंह कंपाउंडर ही जमा रहता। अस्पताल में या तो फौजदारी के शहीद आते या गिर-गिरा के हाथ-पैर तोड़ लेने वाले एक आध लोग। छटे छना से कोई औरत दिख गई, तो दिख गई, जैसे उन्हें कभी रोग घेरता ही नहीं था। कभी कोई बीमार पड़ती, तो घर वाले हाल बता के आठ-दस रोज की दवा एक साथ ले जाते और फिर उनके जीने-मरने की खबर तक न मिलती।

**भाषा-शैली-** राजा निरबंसिया कहानी की भाषा-शैली निम्न मध्यमवर्गीय समाज की भाषा-शैली है। पात्रानुकूलता एवं घटनापूर्णता इस कहानी की भाषा की सबसे बड़ी पहचान है। उर्दू के वे ही शब्द प्रयोग हुए हैं जो सामान्य और साधारण पाठक वर्ग के अनुकूल हैं। इस तरह के बहुत से शब्द कहानी में दिखाई देते हैं। वाक्य विधान अधिक गठित तथा विस्तृत हैं। उदाहरण-

"अब आते ही होंगे, बैठिए न दो मिनट और । अपनी आँख से देख लीजिए और उन्हें समझाते जाइए कि अभी तंदुरुस्ती इस लायक नहीं, जो दिन-दिन-भर घूमना बरदाश्त कर सकें।"

"हाँ-भई, कमजोरी इतनी जल्दी नहीं मिट सकती, ख्याल नहीं करेंगे, तो नुकसान उठायेंगे।" कोई पुरुष का स्वर था यह।

जगपती असमंजस में पड़ गया। । वह एकदम भीतर घुस जाए? इसमें क्या हर्ज है? पर जब उसने पैर उठाये, तो वे बाहर को जा रहे थे। बाहर बरोठे में साइकिल को पकड़ते ही उसे सूझ आई, वहीं से जैसे अंजान बनता बड़े प्रयत्न से आवाज को खोलता चिल्लाया, "अरे चंदा ! यह साइकिल किसकी है? कौन मेहरबान"

चंदा उसकी आवाज सुनकर कमरे से बाहर निकलकर जैसे खुशखबरी सुना रही थी, "अपने कंपाउंडर साहब आये हैं, खोजते-खोजते आज घर का पता लगा पाये हैं, तुम्हारे इंतजार में बैठे हैं।"

"कौन बचनसिंह ? अच्छा, अच्छा. वही तो मैं कहूं, भला कौन." कहता जगपती पास पहुँचा और बातों में इस तरह उलझ गया, जैसे सारी परिस्थिति उसने स्वीकार कर ली हो।

**उद्देश्य-** नई कहानी को नया रूप प्रदान करने में कमलेश्वर का विशिष्ट योगदान है। कमलेश्वर ने मध्यवर्गीय जीवन के यथार्थ को अपनी कहानियों में अभिव्यक्त किया है। समसामयिक 'युग-सत्य' को उनकी सजग जीवन दृष्टि ने सहजता से पहचानकर, मध्यम वर्ग की कुंठाओं, वर्जनाओं, हताशाओं, आर्थिक विषमताओं, संक्रमण की स्थितियों को मानवीय संवेदना के स्तर पर अभिव्यक्त किया है। समकालीन युगबोध के विभिन्न आयामों को स्पष्ट करने में, उन्होंने अपने अदम्य साहस से एक नवीन दिशा, अपनी लेखकीय प्रतिबद्धता को प्रदान की है। दुष्यंत कुमार की दृष्टि में-"प्रगति में परिवर्तन का बोध निहित है तथा कमलेश्वर की प्रगति इसी परिवर्तन की प्रतिक्रिया को समझने का परिणाम है। उसकी कहानियां, भाषा और कथ्य समाज के बदलते हुए भिन्न-भिन्न परिवेशों की देन है। उसका स्टैमिना परिवर्तन की तेज से तेज रफ्तार में उसका सहायक होता है, इसलिए कमलेश्वर कभी पिछड़ता नहीं और न प्रयत्न शिथिल होता है।" 'राजा निरबंसिया' से 'कस्बे का आदमी' के बाद 'नीली झील' से लेकर 'खोई हुई दिशाएं' तक की उसकी कहानियां मध्यवर्गीय जीवन की सादगी से शुरू होकर महानगर की आधुनिकतम संचेतनाओं तथा संश्लिष्टताओं का प्रतिनिधित्व करती हैं।"

**स्वप्रगति परीक्षण**

1. चंदा ने अपनी नपुंसकता के कारण जगपती को ________ बताया।
2. कहानी में बचनसिंह का पात्र ________ का प्रतीक है।
3. चंदा की इच्छा ________ प्राप्त करने की थी।
4. जगपती ने अपनी आत्महत्या से ________ का प्रतीक प्रस्तुत किया।

## 7.5 सिक्का बदल गया सिक्का बदल गया कहानी की समीक्षा

**वर्गीकरण एवं कथावस्तु-** सिक्का बदल गया एक सामाजिक कहानी है। जो समस्या प्रधान कहानी है तथा वह देश के विभाजन पर आधारित है। कहानी का सारांश इस प्रकार है-

पाकिस्तान स्थित एक ग्राम की स्वामिनी शाहनी है उसके पति का बड़ा मान था एवं उसकी मृत्यु के बाद शाहनी ग्राम का कार्य देखती है। भारत विभाजन के कारण लोगों की स्थितियां बदल गई। पाकिस्तान में रहने वाले हिन्दू भारत की ओर चल पड़े उनकी संपत्तियां लूट ली गई। इस ग्राम के लोगों ने श्री शाहनी की हत्या एवं उसकी संपत्ति को लूटने की योजना बनाई किन्तु शोरा जो शाहनी का सेवक था तथा कई हत्याएं कर चुका था शाहनी की हत्या के लिए तैयार नहीं हुआ। निर्णय यह रहा कि शाहनी अन्य लोगों के साथ ट्रक में बैठकर भारत चली जावेगी। उसके पड़ोसी तथा उसके अधीन दुःखी हुए उन्होंने कभी ऐसा नहीं सोचा था। जाने की तैयारी हुई तो थानेदार ने कहा कुछ सोना-चांदी अपने साथ ले लो। वह चित्रण देखें-

"शाहनी !" ड्योढ़ी के निकट जाकर वह बोला, "देर हो रही है शाहनी। (धीरे से) कुछ साथ रखना हो तो रख लो। कुछ साथ बाँध लिया है? सोना-चांदी"

शाहनी अस्फुट स्वर में बोली, "सोना-चांदी ! जरा ठहरकर सादगी से कहा, "सोना-चांदी ! बच्चा, वह सब तुम लोगों के लिए है। मेरा सोना तो एक-एक जमीन में बिछा है।"

दाऊद खां लज्जित-सा हो गया-"शाहनी, तुम अकेली हो, अपने पास कुछ होना जरूरी है। कुछ नकदी ही रख लो। कान का कुछ पता नहीं

"वक्त ? शाहनी अपनी गीली आँखों से हंस पड़ी- "दाऊद खां, इससे अच्छा वक्त देखने के लिए क्या मैं जिंदा रहूंगी।" किसी गहरी वेदना और तिरस्कार से कह दिया शाहनी ने।

दाऊद खां निरुत्तर है। साहस कर बोला, "शाहनी कुछ नकदी जरूरी है।"

"नहीं बच्चा, मुझे इस घर से" शाहनी का गला रुंध गया-"नकदी प्यारी नहीं। यहाँ की नकदी यहीं रहेगी।"

जब शाहनी चलने लगी तो उसके उपकार को याद कर सारा गांव रोने लगा सभी दुःखी हो गये।

चलते समय शाहनी ने धुंधली आँखों से हवेली को अंतिम बार देखा। कहानी का अंतिम दृश्य इस प्रकार है-

ट्रकें अब तक भर चुकी थी। शाहनी अपने को खींच रही थी। गांव वालों के गलों में जैसे धुआँ उठ रहा है। शेरे, खूनी शेरे का दिल टूट रहा है। दाऊद खां ने आगे बढ़कर ट्रक का दरवाजा खोला। शाहनी बढ़ी। इस्माइल ने आगे बढ़कर भारी आवाज से कहा, "शाहनी, कुछ कह जाओ। तुम्हारे मुंह से निकली आसीस झूठी नहीं हो सकती !" और अपने साफे से आँखों का पानी पोंछ लिया। शाहनी ने उठती हुई हिचकी को रोककर रुंधे-रुंधे गले से कहा, "रब्ब तुम्हें सलामत रक्खे बच्चा, खुशियां बख्शे।"

वह छोटा-सा जनसमूह रो दिया। जरा भी दिल में मेल नहीं शाहनी के। और हम-हम शाहनी को नहीं रख सके। शेरे ने बढ़कर शाहनी के पांव छुए-शाहनी, कोई कुछ नहीं कर सका, राज ही पलट गया" शाहनी ने कांपता हुआ हाथ मेरे शेरे के सिर पर रक्खा और रुक-रुककर कहा, "तुम्हें भाग लगे चन्ना।" दाऊद खां ने हाथ का संकेत किया। कुछ बड़ी-बूढ़ियां शाहनी के गले लगीं तथा ट्रक चल पड़ा। अन्न-जल उठ गया। वह हवेली, नयी बैठक, ऊँचा चौबारा, बड़ा 'पसार', एक-एक करके घूम रहे हैं शाहनी की आँखों में ! कुछ पता नहीं, ट्रक चल रहा है या वह स्वयं चल रही है। आँखें बरस रही है। दाऊद खां विचलित होकर देख रहा है इस बूढ़ी शाहनी को। कहाँ जाएगी अब यह ?

"शाहनी, मन में मैल न लाना। कुछ कर सकते तो उठा न रखते। वक्त ही ऐसा है। कुछ राज पलट गया है, सिक्का बदल गया है.."

रात को शाहनी जब कैप में पहुँचकर जमीन पर पड़ी तो लेटे-लेटे आहत मन से सोचा-"राज पलट गया है. सिक्का क्या बदलेगा? वह तो मैं वहीं छोड़ आयी...।" और शाहनी की आँखें और भी गीली हो गयीं। आसपास के हरे-हरे खेतों से घिरे गांवों में रात खून बरसा रही थी। शायद राज पलटा खा रहा था और सिक्का बदल रहा था..

**भाषा शैली-** कहानी की भाषा सामान्य खड़ी बोली है उसमें तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशी शब्द हैं। उर्दू के शब्दों की बहुलता है। वह सरल सपाट भाषा है, मुहावरों का भी प्रयोग है जैसे आँखों का बरसना, राज पलटना, आँखें गीली होना इत्यादि। भाषा व्यंजक है उसमें लक्षणा व्यंजना का समावेश है। प्रसंगानुकूल एवं पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग किया गया है। कहीं-कहीं अलंकृत भाषा का भी प्रयोग है। सारगर्भित भाषा कहानी का सौंदर्य बढ़ा देती है। एक उदाहरण प्रस्तुत है-
चेनाब का पानी आज भी पहले-सा सर्द था, लहरें लहरों को चूम रही थीं। वह दूर सामने कश्मीर की पहाडियों से बर्फ पिघल रही थी। उछल-उछल आते पानी के भंवरों से टकराकर कगारे गिर रहे थे, पर दूर-दूर तक बिछी रेत आज न जाने क्यों खामोश लगती थी। शाहनी ने कपड़े पहने, इधर-उधर देखा, कहीं किसी की परछाई न थी। पर नीचे रेत में अगणित पांवों के निशान थे। वह कुछ सहम-सी उठी !
तात्पर्य यह है कि कहानी की भाषा समृद्ध तथा सशक्त है। कहानी में निम्नलिखित शैलियों का समावेश है-1. विवरणात्मक शैली, 2. भावात्मक शैली, 3. चित्रात्मक शैली, 4. व्यंग्यात्मक शैली।

**विवरणात्मक शैली का उदाहरण-** हवेली आ गई। शाहनी ने शून्य मन से ड्योढ़ी में कदम रखा। शेरा कब लौट गया, उसका कुछ पता नहीं। दुर्बल-सी देह और अकेली, बिना किसी सहारे के ! न जाने कब तक वहीं पड़ी रही शाहनी। दुपहर आयी और चली गयी। हवेली खुली पड़ी है। आज शाहनी नहीं उठ पा रही। जैसे उसका अधिकार आज स्वयं ही उससे छूट रहा है। शाहजी के घर की मालकिन लेकिन नहीं, आज मोह नहीं हो रहा। मानो पत्थर हो गयी है। पड़े-पड़े सांझ हो गयी, पर उठने की बात फिर भी नहीं सोच पा रही। अचानक रसूली की आवाज सुनकर चौंक उठी।

**चित्रात्मक शैली का उदाहरण-** खद्दर की चादर ओढ़े, हाथ में माला लिये शाहनी जब दरिया के किनारे पहुँची तो पौ फट रही थी। दूर-दूर आसमान के परदे पर लालिमा फैलती जा रही थी। शाहनी ने कपड़े उतारकर एक तरफ रक्खे और, 'श्री.रम, श्री राम' करती पानी में होली। अंजलि भरकर सूर्यदेवता को नमस्कार किया, अपनी उनींदी आँखों पर छोटे दिये और पानी से लिपट गयी !

**भावात्मक शैली का उदाहरण-** शाहनी ने दुपट्टे से सिर ढांपकर अपनी धुंधली आँखों में से हवेली को अंतिम बार देखा। शाहजी के मरने के बाद भी जिस कुल की अमानत को उसने सहेजकर रखा, आज वह उसे धोखा दे गयी। शाहनी ने दोनों हाथ जोड़ लिये यही अंतिम दर्शन था, यही अंतिम प्रणाम था। शाहनी की आँखें फिर कभी इस ऊँची हवेली को न देख पायेंगी। प्यार ने जोर मारा-सोचा, एक बार घूम-फिरकर पूरा घर क्यों न देख आयी मैं? जी छोटा हो रहा है, लेकिन जिनके सामने हमेशा बड़ी बनी रही है उनके सामने वह छोटी न होगी। इतना ही ठीक है। सब हो चुका है। सिर झुकाया। ड्योढ़ी के आगे कुलवधू की आँखों से निकलकर कुछ बूंदे चू पड़ीं। शाहनी चल दी ऊँचा-सा भवन पीछे खड़ा रह गया। दाऊद खां, शेरा, पटवारी, जेलदार और बच्चे-बूढ़े, मर्द औरतें सब पीछे-पीछे ।

**पात्र एवं चरित्र-चित्रण-** कहानी में निम्नलिखित पात्र हैं-शाहनी, शेरे, हुसैना लाह बीबी, नवाब बीबी, पटवारी बेग, जेलदार मुल्ला इस्माइल, थानेदार दाऊद खां एवं अन्य ग्रामीण। ये सभी पात्र अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। शाह बीवी नायिका है। वह गांव की मालकिन है, दयालु, सहृदय एवं त्यागमयी नारी है। वह अपने देश को प्यार करने वाली महिला है। बहुत कुछ धन दौलत होते हुए भी यह सबका त्याग कर भारत प्रस्थान करती है। अन्य पात्र सामान्य है।

**संवाद-** कहानी में संवाद छोटे-छोटे हैं, वे प्रसंगानुकूल हैं। उनकी भाषा मार्मिक, देश, काल एवं पात्रों के अनुकूल है। एक उदाहरण देखें-

"शाहनी चलो, तुम्हें घर तक छोड़ आऊँ।"

शाहनी उठ खड़ी हुई। किसी गहरे सोच में चलती हुई शाहनी के पीछे-पीछे मजबूत कदम उठाता शेरा चल रहा है। शंकित-सा इधर-उधर देखता जा रहा है। अपने साथियों की बातें उसके कानों में गूंज रही है। पर क्या होगा शाहनी को मारकर?

"शाहनी।"

"हाँ शेरे।"

शेरा चाहता है कि सिर पर आने वाले खतरे की बात कुछ तो शाहनी को बता दे, मगर वह कैसे कहे ?

"शाहनी"

शाहनी ने सिर ऊँचा किया। आसमान धुएं से भर गया था: "शेरे"

**वातावरण, मनोरंजकता एवं उद्देश्य-** कहानी में विभाजन जन्य वातावरण है। उसकी शैली, भाषा इत्यादि के कारण वह मनोरंजक हो गई है। उसमें भावात्मकता है। कहानी का उद्देश्य विभाजन के कारण उत्पन्न व्यवस्था, संकट, उपद्रव इत्यादि का प्रभाव तथा परिणाम दर्शाना है। लेखिका इसमें सफल हुई है।

## *7.6 शाहनी का चरित्र-चित्रण*

प्रस्तुत कहानी एक चरित्र प्रधान कहानी है। इस कहानी की प्रमुख पात्र शाहनी है जिसे लेकर तत्कालीन भारत विभाजन की स्थिति को चित्रित किया गया है। शाहनी स्वर्गीय शाहजी की विधवा वृद्धा है। वह अपने पति तथा एकमात्र पढ़े-लिखे पुत्र की मृत्यु के बाद अकेली अपनी पुरखों की हवेली में रहती है। उसके चरित्र की प्रायः निम्नलिखित विशेषताएं देखने को मिलती हैं-

**उदारता-** शाहनी के चरित्र की सर्वप्रमुख विशेषता उसकी उदारता है। गाँव के सभी आसामियों के साथ वह नाते-रिश्तेदारों सा प्यार करती है। उसमें साम्प्रदायिकता-संकीर्णता की भावना जरा भी नहीं है। इसलिए वह जैना की मृत्यु के बाद उसके पुत्र शेरा का पुत्रवत पालन करती है। उसे अपनी कोख से उत्पन्न पुत्र की भाँति प्यार करती है। इसलिए जब शेरा ने हुसैना को बुरा-भला कहा तो हुसैना भी बोल पड़ी। शाहनी ने उससे चुप रहने को कहा। इस पर हुसैना ने शिकायत भरे स्वर में कहा-शाहनी लड़का आखिर लड़का ही है। कभी शेरे से भी पूछा है कि मुँहू अंधेरे क्यों गालियाँ बरसाई हैं इसने ? इस पर शाहनी ने प्यार भरे स्वर में हुसैना से कहा-पगली मुझे तो लड़के से बहू अधिक प्यारी है। इसी प्रकार जब वह ट्रक की ओर बढ़ी तो भसीन के मुल्ला इस्माइल ने आगे बढ़कर कहा, "शाहनी कुछ कह जाओ, तुम्हारे मुँह से निकली असीस झूठ नहीं निकलती।" उत्तर में शाहनी ने कहा-"रब्ब तूहानें सलामत रखे बच्चा, खुशियाँ बख्शे।"

**ममतामयी नारी-** शाहनी एक ममतामयी नारी है। जब कभी शाहनी शेरा को डाँट देती थी तो शेरा हवेली में पड़ा रहता था तो शाहनी रात को लालटेन की रोशनी में उसके पास दूध से भरा कटोरा लेकर पहुँचती और कहती-शेरे- -शेरे उठ दूध पी ले! इतना ही नहीं वह शेरा की पत्नी हुसैना को प्यार करती है। उससे कहती है पगली मुझे तो लड़के से बहू अधिक प्यारी है। शेरे ने दाऊद खाँ के पास जाकर

कहा खाँ साहब देर हो रही है। उस समय शाहनी ने सोचा घर में मुझे ही देर हो रही है। और वह तत्काल ही हवेली छोड़ने को तैयार हो गई। चलते समय जब उसी शेरा ने शाहनी के पाँव छुए तो उसके सिर पर काँपता हुआ हाथ रखा रुक-रुक कर कहा "तैनू् भाग जगण चन्ना ।"

**स्वाभिमानी नारी-** शाहनी स्वाभिमानी नारी है। ट्रक के आ जाने पर सारा गाँव इकट्ठा हो गया। उस समय दाऊद खाँ शाहनी के पास आकर सोना-चाँदी नकदी ले जाने की बात कह रहा था पर शाहनी ने उसकी एक बात न मानी। शेरा ने जब कहा देर हो रही है खाँ साहब तो उसमें विद्रोह का भाव उभरा जिसको उसने वहीं दबा दिया। उसने अपने को सम्भाला और निर्णय लिया-पर नहीं शाहनी रो-रोकर नहीं शान से निकलेगी । इन पुरखों के घर की देहरी मान से लॉघेगी, जिस पर एक दिन रानी बनकर आ खड़ी हुई थी। ड्योढ़ी के के आगे आगे कुल-वधू की आँखों से निकलकर कुछ बूंदें टपक पड़ीं। शाहनी चल दी-ऊँचा सा भवन पीछे खड़ा रह गया।

**व्यथित नारी-** शाहनी व्यथित नारी है, उसकी व्यथा का सबसे बड़ा कारण यह है कि आज शाहजी नहीं है। उसका पढ़ा-लिखा लड़का भी नहीं रहा। इस कारण आज वह निपट अकेली रहने के कारण व्यथित है। शाहनी जब चिनाब में सुबह-सुबह नहाकर आई, तो वहाँ पर उसने रेत्त पर अनगिनत पाँवों के निशान देखे। यह देखकर वह सहम गई। घर आते समय उसने कुएं पर रुककर शेरा को आवाज दी। उसने कहा-मालूम होता है, रात को कुल्लूवाल के लोग आये हैं यहाँ ? यह कहते हुए शाहनी का गम्भीर स्वर हो गया। उसने चिन्तित स्वर में कहा-जो कुछ भी हो रहा है अच्छा नहीं। शेरे आज शाहजी होते तो शायद कुछ बीच-बचाव करते। यह बात कहते-कहते वह रुक गई। उसे लगा कि शाहनी का जैसे जी भर-भरकर आ रहा है। हालांकि शाहजी को बिछुड़े कई साल बीत गये, पर आज उसका मन पिघल रहा है। शायद उसे पिछली स्मृतियों आ रही हैं। आँसुओं के रोकने के प्रयत्न में उसने हुसैना को देखा और हँस पड़ी।

वह सोचती है कि कभी सारा गाँव उसके इशारे पर नाचता था। उसकी आसामियाँ हैं जिन्हें उसने अपने नाते-रिश्तेदारों से कभी कम नहीं समझा। लेकिन नहीं आज उसका कोई नहीं, आज वह अकेली है। क्योंकि ये सब मुसलमान है और

साम्प्रदायिकता की भावना से ग्रसित हो चुके हैं। इसलिए शाहनी को लगा कि इनके बीच में यह अकेली हिन्दू है। वह अब यहाँ न रह सकेगी। इस बात का गहरा दुःख हुआ और वह व्यथित हो गई।

**दूरदर्शी महिला-** शाहनी एक दूरदर्शी महिला है। प्रातः जब चिनाव नदी के किनारे कपड़े पहनते हुए उसने रेत पर अनगिनत पाँवों के निशान देखे तो वह समझ गई कि कुल्लूवाल के जाट यहाँ पर आ गये हैं जिनके कारण यहाँ के मुसलमानों में साम्प्रदायिकता भड़क जायेगी और हिन्दू सुरक्षित न रह पायेंगे। शाम को उसने भीड़ में इन लोगों को खड़ा भी पाया। इससे पता चलता है कि वह दूरदर्शी महिला है।

**निस्वार्थी एवं निर्लोभी-** शाहनी के मन में किसी प्रकार के लोभ या स्वार्थ की भावना नहीं है। जब थानेदार दाऊद खाँ उससे कहता है कि कुछ रखा है, तो रख लो। तुम अकेली हो। अपने पास कुछ होना जरूरी है। कुछ साथ बाँध लिया है सोना-चांदी ? उसके उत्तर में शाहनी कहती है-सोना-चाँदी बच्चा तुम लोगों के लिए है। मेरा सोना तो एक-एक जमीन में बिछा है। इसी प्रकार वह कहती है कि इस घर की नकदी इसी घर में रहेगी। शाहनी के इन कथनों से स्पष्ट है कि वह निर्लोभी है।

**सच्ची कुलवधू -** शाहनी को अपने कुल की मर्यादा से लगाव व प्यार है। विवशतावश जब उसे हवेली छोड़नी पड़ती है, तो वह एक सच्चरित्र कुलवधू की भाँति दुपटटे से सिर ढॉपकर दोनों हाथ जोड़कर ड्योढ़ी पर सिर झुकाती है। वह कुलवधू होने के साथ-साथ उच्चकोटि की चारित्रिक शक्ति वाली महिला भी है। गाँव के हर व्यक्ति पर उसने उपकार किया है। वे सभी विवश हैं क्योंकि राज पलट गया है या सिक्का बदल गया है। वे चाहते हुए भी शाहनी को अपने साथ नहीं रख सकते ।

इससे स्पष्ट होता कि प्रस्तुत कहानी के माध्यम से लेखिका ने शाहनी के चरित्र को बखूबी प्रस्तुत किया है जो उसके चरित्र की महत्ता को उजागर करता है।

## 7.7 सार संक्षेप

अपना-अपना भाग्य,' 'राजा निरबंसिया,' और 'सिक्का बदल गया' तीनों कहानियाँ समाज की विभिन्न समस्याओं और मानवीय मूल्यों के पतन को गहराई से उजागर करती हैं। 'अपना-अपना भाग्य' एक गरीब बालक की भूख और ठंड से संघर्ष करते हुए मृत्यु की त्रासदी को केंद्र में रखती है और साधन-संपन्न समाज की उदासीनता पर सवाल खड़ा करती है। 'राजा निरबंसिया' कमलेश्वर की एक कालजयी रचना है, जो मध्यवर्गीय जीवन की वास्तविकताओं, पारंपरिक मर्यादाओं, और सामाजिक असमानताओं को भावनात्मक गहराई के साथ प्रस्तुत करती है। 'सिक्का बदल गया' विभाजन की विभीषिका के माध्यम से प्रेम, त्याग और सहिष्णुता की भावना को रेखांकित करती है, जहां शाहनी का चरित्र मानवीय मूल्यों की अद्भुत मिसाल पेश करता है। ये कहानियाँ अपने-अपने समय के सामाजिक और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य को प्रभावी ढंग से व्यक्त करते हुए पाठकों को गहराई से सोचने और मानवीय करुणा का महत्व समझने के लिए प्रेरित करती हैं।

## 7.8 मुख्य शब्द

1. **युगबोध**: युगबोध का अर्थ होता है किसी विशेष युग, समय या काल की पहचान या समझ। यह उस युग के महत्व, परिस्थितियों और परिवर्तनों की जागरूकता को दर्शाता है।
2. **आयाम**: आयाम का अर्थ होता है किसी वस्तु या घटना का विस्तार या सीमा, यानी उसकी माप या आकार। यह समय, स्थान, और अन्य संदर्भों में भी प्रयोग हो सकता है।
3. **संक्रमण**: संक्रमण का अर्थ होता है एक अवस्था से दूसरी अवस्था में परिवर्तन या स्थानांतरित होना। यह प्राकृतिक, सामाजिक, या मानसिक परिवर्तन को दर्शाता है।

4. **सतित्व**: सतित्व का अर्थ है किसी कार्य, उद्देश्य या सिद्धांत के प्रति प्रतिबद्धता और स्थिरता। यह व्यक्ति के व्यक्तित्व में सच्चाई और ईमानदारी का प्रतीक है।
5. **कर्तुत**: कर्तुत का अर्थ है किसी व्यक्ति का कार्य, आचरण, या कृत्य। यह किसी व्यक्ति द्वारा किया गया कार्य या काम को दर्शाता है।
6. **दृद्यहिनता**: यह शब्द "दृश्यहीनता" से मिलता-जुलता है, जिसका अर्थ होता है देखने की क्षमता का अभाव या दृष्टिहीनता।
7. **मर्यादा**: मर्यादा का अर्थ होता है सीमा, नियम या एक निश्चित सीमा के भीतर रहकर व्यवहार करना। यह आदर्श और आचार-व्यवहार के सही सिद्धांतों का पालन करना दर्शाता है।

## *7.9 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर*

**प्रगति की जाँच**

उत्तर: 1. नायक का

उत्तर: 2. मातृत्व

उत्तर: 3. दोषी

उत्तर: 4. निराशा

## *7.10 संदर्भ सूची*


1. शुक्ल, रामचंद्र। (2003)। *हिंदी साहित्य का इतिहास*। दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
2. कमलेश्वर। (2003)। *कितने पाकिस्तान*। दिल्ली: वाणी प्रकाशन।
3. सोबती, कृष्णा। (2010)। *हम हशमत*। दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
4. रामविलास शर्मा। (2013)। *भारतीय साहित्य और हिंदी*। दिल्ली: वाणी प्रकाशन।
5. सिंह, नामवर। (2015)। *कहानी: नई कहानी के बाद*। दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।

## 7.11 अभ्यास प्रश्न

1. 'अपना अपना भाग्य' कहानी का सारांश लिखिए।
2. कथा तत्व के आधार पर 'राजा निरबंसिया' कहानी की समीक्षा कीजिए।
3. 'सिक्का बदल गया' कहानी के पात्र एवं चरित्र-चित्रण का वर्णन कीजिए।
4. 'सिक्का बदल गया' कहानी की भाषा-शैली का वर्णन कीजिए।

# इकाई - 8
# 'पथ के साथी' संस्मरण की समीक्षा

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 रविन्द्रनाथ ठाकुरनामक संस्मरण

8.4 सुमित्रा नन्दन पंत संस्मरण

8.5 मैथलिशरण गुप्त संस्मरण

8.6 कुमारी चौहान संस्मरण

8.7 निराला संस्मरण

8.8 जय शंकर प्रसाद संस्मरण

8.9 सार संक्षेप

8.10 मुख्य शब्द

8.11 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

8.12 संदर्भ सूची

8.13 अभ्यास प्रश्न

## *8.1 प्रस्तावना*

'पथ के साथी' का साहित्य-रूप 'पथ के साथी' कृति में महादेवी वर्मा ने सात साहित्यकारों का चित्रण किया है। वे साहित्यकार हैं- (1) कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर, (2) मैथिलीशरण गुप्त, (3) सुभद्राकुमारी चौहान, (4) सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' (5) जयशंकर प्रसाद, (6) सुमित्रानन्दन पंत, (7) सियाराम गुप्त वस्तुतः

ये पथ के साथ ही रहे। महादेवी वर्मा साहित्य-साधिका थी और ये भी साहित्य के उपासक थे परन्तु ये सभी समसामयिक साहित्यकार थे, जो तत्कालीन हिन्दी साहित्य के महान् कलाकार और साहित्य-साधक थे। दूसरी बात यह है कि महादेवी वर्मा ने युगीन सभी साहित्यकारों का विवेचन नहीं किया, बल्कि सात उच्चस्तरीय साहित्यकारों के विषय में भी भावाभिव्यक्ति की है। रवीन्द्र कवीन्द्र जैसे महान् साहित्यकार तो आयु में भी बहुत बड़े हैं और अनुभव में भी। लेखिका ने स्वयं उनके प्रति अगाध श्रद्धाभाव व्यक्त किया है। तीसरी बात यह है कि इन सातों साहित्य-साधकों के जीवन को चित्रित करते समय लेखिका ने उनके प्रति अपना दृष्टिकोण भी प्रस्तुत किया है। 'पथ के साथी' कृति में लेखिका ने जहाँ सात विवेच्य व्यक्तियों के व्यक्तित्व को अंकित किया है वहाँ उनका अपना जीवन और व्यक्तित्व भी आ गया है। प्रसंगानुसार महादेवी वर्मा में अपने जीवन, विचार, रुचि, भावना आदि को भी अभिव्यक्त किया है। कभी-कभी तो ऐसा प्रतीत होता है कि उन व्यक्तियों के परिचय के साथ-साथ लेखिका अपने विषय में इतनी भावुक हो गयी है मानो आत्माभिव्यक्ति ही प्रधान हो गयी हो। जैसे पंत के संस्मरण में वे कहती हैं-"उस समय प्रयोग में 'कॉस्थवेट गर्ल्स कालेज' का विशेष महत्त्व था। यदि किसी छात्रा को परीक्षा में उच्चस्थान मिलता तो उसकी विद्यार्थिनी होना स्वाभाविक था। इष्टर तक पहुँच जाने पर भी परीक्षा के दिनों में मुझे पुस्तकों के साथ बाँधे रखने के लिए आचार्य सुधालता को प्रलोभन देना पड़ता था कि तीन घण्टे बैठकर पढ़ने के बाद आइसक्रीम मिलेगी। ग्रीष्म

की दोपहर के सुनसान में मेरी दृष्टि पुस्तक के पृष्ठ और घड़ी की सुई के बीच दौड़ लगाती रहती थी।" इसी कारण पथ के साथी (रवीन्द्र कवीन्द्र, गुप्त, सुभद्रा कुमारी, निराला, प्रसाद, पंत व सियाराम गुप्त) के व्यक्तित्व व कृतित्व से जहाँ पाठकों को इनका का परिचय प्राप्त होता है वहाँ महादेवी के जीवन और व्यक्तित्व की भी झलक मिलती है।

## *8.2 उद्देश्य*

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- महादेवी वर्मा की कृति पथ के साथी के साहित्यिक स्वरूप और इसके माध्यम से प्रस्तुत साहित्यकारों के जीवन एवं व्यक्तित्व की विशेषताएँ।
- महादेवी वर्मा द्वारा चित्रित सात समकालीन साहित्यकारों (रवीन्द्रनाथ ठाकुर, मैथिलीशरण गुप्त, सुभद्राकुमारी चौहान, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, सियाराम गुप्त) के कृतित्व, व्यक्तित्व, और योगदान का विवेचन।
- महादेवी वर्मा के दृष्टिकोण, उनके लेखन में व्यक्त भावनात्मकता, और आत्माभिव्यक्ति के माध्यम से उनके जीवन के विचार, रुचि, और भावनाओं की अभिव्यक्ति।
- कृति में लेखिका द्वारा व्यक्त साहित्यिक मानदंड, उनके समकालीन साहित्यकारों के प्रति श्रद्धा और संवेदना के भाव।
- महादेवी वर्मा के लेखन शैली की विशेषताएँ, जिसमें साहित्यिक व्यक्तित्वों के विवरण के साथ-साथ उनकी अपनी जीवन दृष्टि का समावेश है।

## *8.3 रविन्द्रनाथ ठाकुर नामक संस्मरण*

महादेवी वर्मा ने 'पथ के साथी' संस्मरण में रवीन्द्रनाथ ठाकुर के बारे में अपने विचार व्यक्त किये हैं। वह उनके व्यक्तित्व तथा कृतित्व से किसी न किसी रूप में प्रभावित हुई हैं। यहाँ उसी संस्मरणात्मक रेखाचित्रों की श्रृंखला की एक कड़ी रवीन्द्रनाथ ठाकुर की झलक को उन्होंने अपने शब्दों में जिस प्रकार अभिव्यक्त किया है, उसी का संक्षिप्त सार इस तरह है-

कवीन्द्र रवीन्द्र उन विरल साहित्यकारों में थे जिनके व्यक्तित्व और साहित्य में अद्भुत साम्य रहता है। जहाँ व्यक्ति को देखकर लगता है मानो काव्य की व्यापकता ही सिमटकर मूर्त हो गई है तथा काव्य से परिचित होकर जान पड़ता है मानो व्यक्ति ही तरल होकर फैल गया है।

उस व्यक्तित्व की, अनेक शाखाओं-उपशाखाओं में फैली हुई विशालता, सामर्थ्य में तथा अधिक सघन होकर किसी को उद्धत होने का अवकाश नहीं देती, उसकी सहज स्वीकृति किसी को उदासीन रहने का अधिकार नहीं सौंपती तथा उसकी रहस्यमयी स्पष्टता किसी को कृत्रिम बंधनों से नहीं घेरती । जिज्ञासु जब कभी साधारण कुतूहल में बिछलने लगता था तब वह स्नेह-तरलता हिम का दृढ़ स्तर बन जाने वाले जल के समान कठिन होकर उसे ठहरा लेना नहीं भूलती। इसी से उस असाधारण साधारणता के सम्मुख हमें यह समझते देर नहीं लगती थी कि मनुष्य मनुष्य को कुतूहल की संज्ञा देकर स्वयं भी अशोभन बन जाता है।

प्रशांत चेतना के बंधन के समान, मुख पर बिखरी रेखाओं के बीच में उठी हुई सुडौल नासिका को गर्व के प्रमाण-पत्र के अतिरिक्त कौन-सा नाम दिया जावे। लेकिन वह गर्व मानो मनुष्य होने का गर्व था, इतर अहंकार नहीं, इसी से उसके सामने मनुष्य, मनुष्य के नाते प्रसन्नता का अनुभव करता था, स्पर्धा या ईर्ष्या का नहीं।

दृढ़ता का लगातार परिचय देने वाले अधरों से जब हंसी का अजस्त्र प्रवाह बह चलता था तब अभ्यागत की स्थिति वैसी ही हो जाती थी जैसी अडिग और रंधहीन शिला से फूट निकलने वाली निर्झर के सामने सहज है। वह मुक्त हास

स्वयं बहता, हमें बहाता तथा अपने हमारे बीच के विषम और रूखे अंतर को अपनी आर्द्रता से भरकर कम कर देता था। उसका थमना हमारे लिए एक संगीत-लहरी का टूट जानता था जो अपनी स्पर्शहीनता से ही हमारे भावों को छू-छूकर जगाती हुई बह जाती है। वाणी और हास के बीच की निस्तब्धता में हमें उस महान् जीवन के संघर्ष और श्रांति का एक अनिर्वचनीय बोध होने लगता था, लेकिन वह बोध, हार-जीत की न जाने किस रहस्यमय संधि में खड़े होकर दोहराने सिहराने लगता था...' तुम इसे हार न कहना, क्लांति न मानना ।'

वे लिखती हैं कि हिमालय की तराई में रामगढ़ नामक स्थान पर ढाई एकड़ भूमि पर कवीन्द्र रवीन्द्र का एक छोटा सा बंगला (भवन) था जिसमें वे अपनी बीमार पुत्री के साथ रहते थे। वहीं

उनकी पुत्री का देहांत हो गया अतः वह भवन व्यथा भरी स्मृतियों का साथी बन गया था। बाद में एक अंग्रेज अधिकारी उसमें रहने लगा। वहीं एक भवन में जहाँ महादेवी ठहरती थी, को एक रवीन्द्रनाथ द्वारा प्रयुक्त आल्मारी मिली, उसके रंग एवं आकृति से ही महादेवी बहुत प्रभावित हुई। उन्होंने अनेक कल्पनाएं कर डाली। बंगले के स्वामी ने रवीन्द्र का भवन अच्छी तरह महादेवी को दिखलाया। रवीन्द्र की सहृदयता का उल्लेख करते हुए महादेवी लिखती हैं कि एक वृहद पड़ोसी ने बताया कि रवीन्द्र के बिना उनके पुत्र की चिकित्सा असंभव थी उस सहृदयता का वर्णन इस प्रकार

वृद्ध पड़ोसी ने सजल आँखों के साथ कहा कि उस महान् पड़ोसी के बिना उसके बीमार पुत्र की चिकित्सा असंभव थी। किसी वृद्ध ग्वालिन ने अपनी बूढ़ी गाय पर हाथ फेरते हुए तरल स्वर में बताया कि उनकी दवा के अभाव में उसकी गाय का जीवन कठिन था। किसी अछूत शिल्पकार ने कृतज्ञता से गद्गद् कंठ से स्वीकार किया कि उनकी मदद के बिना उनकी जली हुई झोपड़ी का फिर बन जाना कल्पना की बात थी।

संबलहीन मानव से लेकर खड्डु में गिरकर टांग तोड़ लेने वाले भूटिया कुत्ते तक के लिए उनकी चिता स्वाभाविक तथा सहायता सुलभ रही, इस समाचार ने कल्पना-बिहारी कवि में सहृदय पड़ोसी और वात्सल्य भरे पिता की प्रतिष्ठा

कर दी। इसी कल्पना-अनुमानात्मक परिचय की पृष्ठ-भूमि में मैंने
अपने विद्यार्थी-जीवन में रवीन्द्र को देखा।

जैसे धृतराष्ट्र ने लौह-निर्मित भीम को अपने अंक में भरकर चूर-चूर कर दिया था-वैसे ही प्रायः पार्थिव व्यक्तित्व कल्पना-निर्मित व्यक्तित्व को खंड-खंड कर देता है। पर इसे मैं अपना सौभाग्य समझती हूं कि रवीन्द्र के प्रत्यक्ष दर्शन ने मेरी कल्पना-प्रतिमा को अधिक दीप्त सजीवता दी। उसे कहीं खंडित नहीं किया गया। लेकिन उस समय मन में कुतूहल का भाव हो अधिक था जो जीवन के शैशव का प्रमाण है।

दूसरी बार जब उन्हें 'शांति निकेतन' में देखने का सुयोग्य प्राप्त हुआ तब मैं अपना कर्मक्षेत्र चुन चुकी थी। वे अपनी मिट्टी की कुटी श्यामली में बैठे हुए ऐसे जान पड़े मानो काली मिट्टी में अपनी उज्जवल कल्पना उतारने में लगा हुआ कोई अद्भुतकर्मा शिल्पी हो।

तीसरी बार उन्हें रंगमंच पर सूत्रधार को भूमिका में उपस्थित देखा। जीवन की संध्या बेला में 'शांति निकेतन' के लिए उन्हें अर्थ-संग्रह में प्रयलशील देखकर न कुतूहल हुआ न प्रसन्नता; केवल एक गंभीर विषाद की अनुभूति से हृदय भर आया। हिरण्यगर्भा धरतीवाला हमारा देश भी कैसा विचित्र है। जहाँ जीवन-शिल्प की वर्णमाला भी अज्ञात है वहाँ वह साधनों का हिमालय खड़ा कर देता है तथा जिसकी उंगलियों में सृजन स्वयं उतरकर पुकारता है उसे साधन-शून्य रेगिस्तान में निर्वासित कर जाता है। निर्माण की इससे बड़ी विडम्बना क्या हो सकती है कि शिल्पी तथा उपकरणों के बीच में आग्नेय रेखा खींचकर कहा जा कि कुछ नहीं बनता या सब कुछ बन चुका ।

रवीन्द्र के बारे में वे लिखती हैं-अपनी कल्पना को जीवन के
सब क्षेत्रों में अनंत अवतार देने की क्षमता रवीन्द्र की ऐसी विशेषता है
जो अन्य कलाकारों में विरल है।

वे लिखती हैं-जो जीवन को सब ओर से एक साथ स्पर्श कर सकता है उस व्यक्ति को युग-जीवन अपनी संपूर्णता के लिए स्वीकार करने पर बाध्य हो जाता है तथा ऐसी, व्यापकता में मार्मिक स्पर्श साहित्य में जितना सुलभ है उतना अन्यत्र नहीं। इसी से मानवता की यात्रा में साहित्यकार जितना प्रिय तथा दूरगामी

साथी होता है उतना सिर्फ दार्शनिक, वैज्ञानिक या सुधारक नहीं हो पाता है। कबीन्द्र में विश्व-जीवन ने ऐसा ही प्रियतम सहयात्री पहचाना, इसी से हर दिशा से उन परअभिनंदन के फूल बरसे, हर कोने से मानवता ने उन्हें अर्घ्य दिया तथा युग के श्रेष्ठतम कर्मनिष्ठ बलिदानी साधन ने उनके समक्ष स्वस्ति वाचन किया।

महादेवी के अनुसार रवीन्द्र ने जो कुछ लिखा उसे पढ़कर मन में यह विचार उठता है कि उन्होंने क्या नहीं लिखा। रवीन्द्र ने जीवन के व्यापक विस्तार के बारे में सब कुछ लिख दिया है। महादेवी के अनुसार विशाल शिव और सुंदर पक्ष का सब समर्थन करते हैं। लेकिन विशालता, शिवता, सुंदरता व शुद्र और अशिव तथा विरूप का दावा प्रमाणित कर उन्हें विशालता शिव और सुंदर में परिणित करना रवीन्द्र का ही काम है-अमृत और विषय को एक दूसरे में परिवर्तित करना किसी महान् वैद्य का ही कार्य हो सकता है।

वे लिखती हैं-कवीन्द्र में ऐसी क्षमता थी और उनकी इस सृजन-शक्ति की प्रखर विद्युत का आस्था की सजलता संभाले रहती थी। यह बादल भरी बिजली जब धर्म की सीमा छू गई तब हमारी दृष्टि के सामने फैले रूढ़ियों के रंधहीन कुहरे में विराट मानव-धर्म की रेखा उद्भासित हो उठी। जब वह साहित्य में स्पंदित हुई तब जीवन के मूल्यों की स्थापना हेतु तत्व सत्यमव, सत्य शिवमय और शिव सौंदर्यमय होकर मुखर हो उठा। जब चिंतन को उसका स्पर्श मिला तब दर्शन की भिन्न रेखाएं तरल होकर समीप आ गई।

उन्होंने ऐसा कुछ नहीं कहा जो पहले नहीं कहा गया था, पर इस तरह सब कुछ कहा है जिस प्रकार किसी अन्य युग में नहीं कहा गया।

साहित्य को उसकी बाह्य रूपात्मकता में तौलना-नापना सहज है। किसने कितने उपन्यास लिखे, किसने कितने नाटक, किसने महाकाव्यों का परिमाण क्या है, किसके गीतों की संख्या कितनी है, किसी शैली कैसी है, किसका छंद कैसा है, आदि में जो तौल-नाप है वह साहित्य की आत्मा को नहीं तौलता-नापता। ऊँचे-नीचे कगार या सूखे-हरे तट नदी की सीमा बनते हैं, पर नदी नहीं बना सकते। इतना ही नहीं, साहित्यकार की सभी उपलब्धियां भी समान नहीं होती। गोताखोर समुद्र के अतल गर्भ से न जाने कितने शंख, सीप, सेवार आदि

लाकर तट पर ऊँचा पहाड़ बना देता है। यह भी उसकी उपलब्धि ही कही जाएगी, पर उसके कई प्रयासों का एक मूल्यांकन मोती की उपलब्धि मात्र है।

संस्मरण के अंत में महादेवीजी लिखती है-

इसी बीच कलकत्ते में एक बंधु आए। मौन भाव से उन्होंने मिट्टी के पात्र में संग्रहित, कवीन्द्र के पार्थिव अवशेष की भस्म मुझे भेंट की।

भीड़, आँधी, पानी से संघर्ष कर इसे उन्होंने मेरे लिए प्राप्त किया है, सोच कर हृदय भर आया। मानस-पट पर 'शांति निकेतन' का प्रार्थना-भवन उदय हो आया। उसके चारों ओर लगे रंग-बिरंगे शीशों से छनकर आता हुआ आलोक भीतर इंद्रधनुषी ताना-बाना बुन देता था। संगमरमर की चौकी पर रखे हुए चंपक फूलों पर धूप-धूप भ्रमरों के समान मंडराता था। उसके पीछे बैठे कवीन्द्र की स्थिर दिव्य आकृति तथा उससे सब ओर फैलती हुई स्वर की निस्तब्ध तरंग-माला । तो क्या यह उसी वीणा का भस्म-शेष है जिसके तारों पर दीपकराग लहराता था? जान पड़ा, जैसे उस साहित्यकार अग्रज ने हमारे अनजान में ही हमारे छोर में अपना उत्तराधिकार बाँधकर विदा ली है। दीपक चाहे छोटा हो चाहे बड़ा, सूर्य जब अपना आलोकवादी कर्तव्य उसे सौंपकर चुपचाप डूब जाता है तो तब जल उठना ही उसके अस्तित्व की शपथ है-

जल उठना ही उसके जाने वाले को प्रणाम है।

स्वप्रगति परिक्षण

1. महादेवी वर्मा ने 'पथ के साथी' संस्मरण में रवीन्द्रनाथ ठाकुर के __________ और __________ से प्रभावित होने का उल्लेख किया है।
2. महादेवी वर्मा के अनुसार रवीन्द्रनाथ के व्यक्तित्व में __________ और __________ का अद्भुत साम्य था।
3. रवीन्द्रनाथ के बारे में महादेवी वर्मा ने लिखा कि वे जीवन के सभी क्षेत्रों में __________ की क्षमता रखते थे।

4. महादेवी वर्मा ने रवीन्द्रनाथ की सृजन-शक्ति को __________ और __________ की तुलना की है।

## 8.4 सुमित्रा नन्दन पंत संस्मरण

महादेवी वर्मा ने पथ के साथियों में कविवर सुमित्रानन्दन पंत का चित्रण प्रस्तुत संस्मरण में किया है। वे छायावादी कवि थे, परन्तु अन्य छायावादी कवियों की अपेक्षा उनका कवित्व किञ्चिद् भिन्न रहा है। वे तो मूलतः प्रकृति के चितेरे थे। यद्‌यपि लेखिका ने उनके जीवन के विविध पक्षों को उजागर किया है, फिर भी उनका प्रकृति के साथ अटूट सम्बन्ध स्वाभाविक था। पंत हिन्दी साहित्य के अमर कलाकार माने जाते हैं, परन्तु उनकी पहचान प्रकृति में सुकुमार कवि के रूप में की जाती है। प्रस्तुत संस्मरण के आधार पर पंत जी के व्यक्तित्व का विश्लेषण इस प्रकार किया जा सकता है-

आधुनिक हिन्दी गद्‌य और उसका इतिहास

**1. प्रकृति के प्रांगण में जन्म-** सुमित्रानंदन पंत प्रकृति के कवि माने जाते हैं इसका मूल कारण यह था कि उनका जन्म पर्वतीय प्रदेश कौसानी सा कूर्माचल था जो प्राकृतिक सौन्दर्य का पालना था। लेखिका की दृष्टि में 'वहाँ हिम-श्रेणियाँ, रजत वर्णमाला में लिखे सौन्दर्य के उज्ज्वल पृष्ठ के समान खुली रहती है। उस कत्यूर घाटी के बीच में खड़े होकर जब हम एक ओर हिमदुकूलिनी चोटियों को और दूसरी ओर चीड़-देवदारूओं की हरीतिमा से अवगुण्ठित कौसानी को देखते हैं तब हमें ऐसा जान पड़ता है मानो हिम-शिखरों की उज्ज्वल रेखाओं ने कौसानी के सौन्दर्य की कथा लिखी है।' प्रकृति के इस आँचल में पंत जी जब आँखें खोली तभी स्नेह-ममता का आँचल भरी जन्मदात्री माता संसार से कूच कर गयी थी। यह मातृविहीन पुत्र एक दिन कवि के रूप में प्रस्तुत हुआ ।

महादेवी वर्मा को पंत से परिचय उस समय हुआ था जब वे ब्रजभाषा की समस्या पूर्ति करती थी तथा 'कॉस्थवेट गर्ल्स कालेज' में छात्रा के रूप में खड़ी बोली में भी कविता करती थी। तभी प्रायः कविसम्मेलनों में भाग लेने जाती थी। एक दिन श्री हरिऔध जी की अध्यक्षता में 'हिन्दू बोर्डिंग हाउस' में कवि

सम्मेलन में लेखिका भाग लेने गयी थी जहाँ 'कोमल कृशांगी मूर्ति' के रूप में पंत जी का दर्शन अवश्य हुआ, पर वे इन्हें एक नारी के रूप में ही जान सकी। कुछ तो पंत जी की वेशभूषा, कुछ उनकी प्रारंभिक रचनाएं 'श्री नन्दिनी' के नाम से प्रकाशित हुई थी। डॉ. धीरेन्द्र वर्मा के विवाह के अवसर ही लेखिका का सुमित्रानंदन पंत से पूर्ण परिचय हुआ।

**2. प्रकृति से प्रेरणा-** महादेवी वर्मा ने पंत जी को कवि के रूप में 'पथ के साथी' माना है। निःसंदेह वे साहित्यकार थे तथा विशेष रूप से छायावादी कवि थे जिन्हें प्रकृति का कवि या प्रकृति का चितेरा कहा जाता है। मातृविहीन बालक पंत ने प्रकृति में ही माँ का दुलार खोजा था। आजीवन कुमार रहने वाले कवि ने प्रकृति को ही सहचरी माना था। उनकी दृष्टि में प्रकृति सुन्दर है, दुख-सुख की संवेदना धारण करने वाली है तथा प्रत्येक क्षण मानव के साथ रहती है। कवि का मन उसमें रम गया था महादेवी वर्मा का कथन है-"आश्चर्य नहीं किशोर कवि प्रकृति के साथ ही दुकेला रहा। उसे झरनों-नदियों में लास दिखाई दिया, पक्षियों-भ्रमरों में संगीत सुनाई दिया, फलों-कलियों में हँसी की अनुभूति हुई, प्रभात का सोना मिला, रात में रजतराशि प्राप्त हुई, पर कदाचित हँसने-रोने वाला हृदय इस भूलभुलैया भरी चित्रशाला में खोया रहा। आँसू के खारे पानी में डुबाए बिना सौन्दर्य के चित्ररंग पक्के नहीं हो सकते, पर प्रकृति के पास सौन्दर्य है, आँसू नहीं।" पंत जी स्वभाव और शरीर दोनों ही दृष्टियों से प्रकृति से प्रेरणा प्राप्त करते रहे जो कि स्वयं सिद्ध है। मानवलोक में प्रकृति से सुन्दर और कौन हो सकता है? सौन्दर्य प्रेमी कवि यदि प्रकृति के सौन्दर्य, स्नेह और प्रेम में यदि डूब गया तो इसमें आश्चर्य नहीं। व्यक्ति का एकांकीपन किसी न किसी रूप में अवश्य टूटता है। उसे साथ चाहिए, चाहे वह कैसा भी हो, यदि साथी कोई मनोरम हो तो व्यक्ति अपने को धन्य मानता है। कवि पंत को भी प्रकृति सुन्दरी मिल ही गयी थी अतः उन्हें उसकी विविधता से प्रेरणा प्राप्त करना स्वाभाविक था।

**3. संघर्षपूर्ण जीवन-** यद्यपि पंत जी हिमालय के पुत्र हैं, पर उन्हें देखकर न उन्नत हिम-शिखरों का स्मरण आता है और न ऊँचे चिर सजग प्रहरी जैसे देवदारू याद आते हैं। न सभीत करने वाले गहरे गर्त की ओर ध्यान जाता है और न उच्छृंखल गर्जन भरे निर्झर स्मृति में उचित होते हैं। वे उस प्रशान्त छोटी

झील से समानता रखते हैं जो अपने चारों ओर खड़े शिखरों और देवदारूओं की गगनचुम्बी ऊँचाई को अपने हृदय में प्रतिबिम्बित कर उसे धरती के बराबर कर देती है। पंत जी का व्यक्तित्व इतना शान्त और स्निग्ध था कि विषम परिस्थितियों और कठोर संघर्षों को भी सहन कर ये टूटते नहीं थे बल्कि उन्हें अपने अनुकूल बना लेते थे।

लेखिका ने प्रस्तुत संस्मरण में कुछ ऐसी घटनाओं का उल्लेख तथा संकेत किया है जो निःसंदेह मार्मिक है। पंत जी के जीवन में अनेक संघर्ष आए जिनका सामना उन्होंने निरन्तर किया। यद्यपि वे शरीर और स्वभाव से कोमल थे, परन्तु कठिन और विषम परिस्थितियों को सहन करने में सर्वदा सक्षम रहे। लेखिका की धारणा है-"जिस प्रकार आकाश की ऊँचाई से गिरने वाला जल, किसलयों और फूलों पर स्वच्छता के अतिरिक्त और कोई चिन्ह नहीं छोड़ता, उसी प्रकार संघर्षों ने उनके जीवन पर अपनी सक्षता और कठोरता का इतिहास नहीं लिखा।" वे आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न थे परन्तु सम्पन्नता धीरे-धीरे उनके जीवन से जैसे-जैसे पलायन करती गयी, वैसे-वैसे विपन्नता ने अपना स्थान बना लिया और वे विपन्नता की अन्तिम सीढ़ी तक पहुँच गये। उदाहरणार्थ-अल्मोड़े में उनके कई मकान थे, परन्तु आर्थिक अभाव के कारण उनमें से एक भी नहीं रहा और वे छोटी सी काटेज में रहने लगे। सम्पन्नता के पश्चात् व्याप्त विपन्नता ने भी उनके अभिमान को कम नहीं होने दिया और न हँसी पर मैली परत चढ़ सकी।

**4. केशों के प्रति ममत्व-** पंत जी लम्बे-लम्बे बाल रखते थे। ग्रामीणों को इस विषय में कुतूहल रहता था तथा नागरिकों को हँसी आती थी, परन्तु वे चिंता नहीं करते थे, परन्तु एक दिन उन्होंने उस केश राशि को काट फेंका। संभव है कि कवि में हृदय पर कोई गहन आघात हुआ हो और बाद में उस चोट सह्य होने से पुनः उन्होंने केश राशि रख ली हो। प्रारंभ में तो विवाह के समय विषम परिस्थितियों के कारण वे विवाह नहीं कर पाए, परन्तु जब परिस्थितियाँ अनुकूल हुई तो उनकी मानसिक स्थिति इसके प्रतिकूल हो गयी अर्थात् विवाह के लिए मन में स्वीकृति प्रदान नहीं की। उनकी मानसिक अस्थिरता का ही यह परिणाम था। वे स्वयं अपनी काल्पनिक गृहिणी के विषय में कहते हैं-

**घने लहरे रेशम बाल**

**घरा है सिर पर मैंने देवि ।**

**तुम्हारा यह स्वर्गिक उपहार।**

**4. आजीवन कुमारत्व-** पंत जीवन भर अविवाहित रहे। कुछ परिस्थितियों ने उनका साथ नहीं दिया तो कुछ शरीर ने। वे सदा विषमताओं का सामना करते रहे। अपने वैवाहिक जीवन की उन्हें कभी चिन्ता नहीं रही। महादेवी वर्मा कहती हैं कि परिग्रह की दृष्टि से वे चिरकुमार सभा के आजीवन सदस्य हो सकते हैं। आर्थिक विपन्नता और न समाप्त होने वाला रोग-दोनों मानो उनके विवाह में बाधा डालते रहे। परन्तु चिरकुमारत्व को वे कभी अभिशाप नहीं मानते थे। उनका मन तो साहित्य के सृजन में लगा हुआ था-'ऐसे चिर सृजनशील कलाकार चिरकुमार देवर्षि नारद की कोटि के होते हैं, जिनकी गृहस्थी बसने के क्षण में स्वयं भगवान तक बाधक बन बैठे हैं।

**5. आर्थिक विपन्न व रुग्ण-** आर्थिक दृष्टि से वे विपन्न होने से अल्मोड़े में अनेक मकानों के मालिक होकर भी बाद में उन्हें किराए के मकान में रहना पड़ा। उस समय "उनकी स्थिति बालक से समानता रखती थी जो अपने घरौंदे के बनाने में जितना आनन्द पाता है मिटाना में उससे कम नहीं।" टीले पर बनी अपनी कुटी का नाम उन्होंने 'नक्षत्र' रखा था मानो वे किसी नवीन सृजन की दिशा का अनुसंधान करने में लगे हुए हों। वे अपने कार्यों में इतने संलग्न रहते थे कि उनका शरीर थक जाता था, परन्तु मन नहीं। वे बहुत समय तक अस्वस्थ रहे। एक बार तो क्षयरोग के संदेह के कारण बहुत दिनों तक स्व. डॉ. नीलाम्बर जोशी के पास भरतपुर में रहे। अनेकों बार टाइफाइड से पीड़ित होकर जीवन और मृत्यु के मध्य में पड़े रहे। परन्तु उनके मन और शरीर दोनों ने अपनी-अपनी सीमा में जिस इस्पाती तत्त्व का परिचय दिया है, वह पराजय नहीं मानता। आर्थिक अभावों व शारीरिक रोगों को तो वे सहन करते रहे, परन्तु उनके दुखों को कम करने वाली सहचरी भी उन्हें प्राप्त न हो सकी।

इस प्रकार लेखिका ने उनके प्रति संवेदना प्रस्तुत करते हुए भी उनके जीवन को दुखी व उदास भरा स्वर नहीं दिया है। इस संस्मरण के अंत में वे यही कहती है- 'सुमित्रानंदन जी की हँसी पर श्रम-बिन्दुओं का बादल नहीं घिरा हुआ है, वरन्

श्रम-बिन्दुओं के बादल के दोनों छोरों को जोड़ता हुआ उनकी हँसी का इन्द्रधनुष उदय हुआ है।'

**6. सुकुमार आकृति-** कोमलांगी प्रकृति के सहचर पंत की आकृति व वेशभूषा भी स्वभावतः सुकुमार थी। वे दुबले-पतले, गौरवर्ण के इकहरे शरीर के थे, दूर-से कृशांगना कामनी के समान लगते थे। एक बार महादेवी वर्मा एक सम्मेलन में भाग लेने गई थी; तभी उन्होंने प्रथम बार पंत जी के दर्शन किए थे। लेखिका अनभिज्ञ थी कि पंत जी कौनसे हैं उन्हें आश्चर्य हुआ कि यह नारी के वेश को धारण किए कौन हैं? तभी कुछ हलचल सी उत्पन्न करती हुई एक कोमलकान्त कृशांगी मूर्ति आविर्भूत हुई। आकण्ठ अवगुण्ठित करती हुई हल्की पीताभ-सी चादर, कंधों पर लहराते हुए कुछ सुनहले से केश, तीखे नक्श और गौरवर्ण के समीप पहुँचा हुआ गेहुँआ रंग, सरल दृष्टि की सीमा बनाने के लिए लिखी हुई-सी भवे, खिचे हुई से ओंठ, कोमल पतली उंगलियों वाले सुकुमार हाथ। लेखिका और उनकी संगनियों ने उन्हें देखकर ऐसा अनुभव किया जैसे यह मूर्ति किसी ललना की हो। अतः वे कहती हैं कि हम सब यह देखकर विस्मित हो गए कि वह मूर्ति हमारी ओर न आकर उन्हीं के बीच में प्रतिष्ठित हो गई जो उससे आकार-प्रकार में उतने ही भिन्न जान पड़ते थे जितनी क्षीण तरल जलरेखा से विशाल कठोर पाषाण-खण्ड। इससे कम से कम उनके बाह्य व्यक्तित्व का पूर्ण ज्ञान हो जाना स्वाभाविक है।

पंत जी की सुकुमारता अपने जीवन के प्रारम्भ से ही रही है। घर में सबसे छोटे भाई थे तथा जन्म के पश्चात् ही मातृविहीन हो गये थे अतः उन्हें सभी का प्यार मिला। स्नेह के कारण वे बचपन से ही सहृदय रहे। प्रकृति के साथ सम्बन्ध और विविध रोगों का आना, उनके लिए भले ही अभिशप्त रहे हों, परन्तु शारीरिक सामर्थ्य में बाधक अवश्य रहे। अन्दर और बाहर दोनों ओर से सुकुमार रहे। इसी कारण लेखिका लिखती है कि सुमित्रानन्दन पंत जी को स्वभाव और शरीर में असाधारण सुकुमारता मिली।

**7. साहित्यिक वैशिष्ट्य-** पंत जी एक साहित्यकार थे, विशेष रूप से प्रकृति के सुकुमार कवि थे। उनकी प्रारम्भिक रचनाएं 'नंदिनी' नाम से प्रकाशित हुई थी, परन्तु बाद में उन्होंने अपना नाम परिवर्तित कर 'सुमित्रानंदन पंत नाम से लेखन

कार्य किया था। 'ग्राम्या' 'युगवाणी' आदि रचनाओं में पंत जी की विचारधाराएं अंकित की गई है। वे उस युग के कवि थे जब छोटे-मोटे सामान्य कवियों का कोई महत्त्व नहीं था, परन्तु पंत जी ने कवि के रूप में अपनी असाधारण पहचान बनाई थी। उन्होंने प्रकृति के पालने में रहकर प्रकृति के साथ ऐसा नाता जोड़ा था जो उनके जीवन का अभिन्न अंग बन कर रह गया और उनकी अनुभूति विशेष रूप से प्रकृति-चित्रण के रूप में अभिव्यक्त हुई। पुनः जब लेखिका ने उन्हें देखा तो वे कहती है-'आज फिर वे अपने लम्बे-गंगा-यमुनी केशों को लहराते हुए चिर-परिचित कवि-रूप में उपस्थित हैं। उसका अर्थ है कि उनकी सृजन सम्भावनाओं का कोई त्यौहार निकट है।'

पंत जी का साहित्य जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध रखता है। उनका चिन्तन, जीवन और साहित्य का क्षेत्र असाधारण था। यही कारण है कि उनकी असाधारण बुद्धि ने जीवन और साहित्य के अनेक क्षेत्रों में अपनी सृजनशीलता का परिचय दिया है। वेशभूषा, रहन-सहन से लेकर सूक्ष्म भाव और चिन्तन तक सब कुछ उनके स्पर्श मात्र से असाधारण पाता रहा है। वे विगत साहित्य-परम्परा के अनुसरण करने वाले नहीं थे, बल्कि नूतन साहित्य के निर्माता और ज्ञाता थे। उनका जीवन भले ही विषम अवस्था से व्याप्त हो, परन्तु साहित्य में नूतनता और ताजगी थी इसी कारण महादेवी वर्मा का कथन है-'बदलती हुई सम-विषम परिस्थितियों में उन्हें नूतन सृजन की संभावनाएं इस प्रकार संचालित करती हैं कि वे संघर्ष को भूल जाते हैं।'

**8. गाँधी दर्शन का प्रभाव-** जव पंत जी छात्रावस्था में थे तब महात्मा गाँधी का स्वतन्त्रता आलोचन मे पर्याप्त बोलबाला था। प्रायः समस्त भारत उनके महान् कार्यों से प्रभावित था। पंत जी अपने छात्र जीवन में ही एक बार उनकी सभा में गये थे और उनसे पर्याप्त प्रभावित हुए थे। महात्मा गाँधी का यह प्रभाव उन पर बहुत समय तक रहा। इसी कारण उनके साहित्य पर गाँधी दर्शन का प्रभाव रहा। इसी आधार पर उन्होंने किसी प्रकार की नौकरी नहीं की थी और लेखन कार्य में ही अपना जीवन व्यतीत किया। उनकी कुछ रचनाएं गाँधी दशन की समुचित व्याख्या करती हुई जान पड़ती है।

इस प्रकार प्रस्तुत संस्मरण में महादेवी वर्मा ने सुमित्रानन्दन पंत के जीवन और व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला है। पंत जी को कविता लिखने की प्रेरणा प्रकृति से मिली थी प्रकृति के कोमल और सुन्दर प्रांगण में जन्म लेकर वे इसी मनोरम प्रदेश से जुड़े रहे। उनका जन्म स्थान कौसानी प्रदेश कूर्माचल का मानो हृदय है। जन्म के साथ ही मातृविहीन होने के कारण उनको जितना ममत्व व प्रेम, प्रकृति से मिला, वह ही उनके काव्य का प्राण बन गया। जीवन में भले ही अनेक संघर्ष सहन करने पड़े हों, परन्तु प्रकृति के अंक में आकर उसी प्रकार वे सहनीय हो जाते थे जैसे माता के आँचल में बच्चा अपने दुखों को भूल जाता है। बचपन में प्रकृति ने उन्हें माता का दुलार दिया तो युवावस्था में सहचरी बन कर साथ दिया। आजीवन अविवाहित रहकर भी उनका मन कभी अशांत न रहा, परन्तु एक के पश्चात् एक रोग उन्हें शारीरिक सुकुमारता ही प्रदान करते रहे। वे स्वभाव और शरीर से असाधारण कोमल थे। स्वयं उन्होंने भले ही अनेक कष्टों को झेला हो, परन्तु कभी किसी को आघात नहीं पहुँचाया। उनके विषय में महादेवी वर्मा का कथन है-

'व्यवहार में वे अत्यन्त शिष्ट, मधुरभाषी और विनोदी हैं। उनकी कोई बात किसी को किसी तरह चोट न पहुँचा दे, इसका वे ध्यान रखते हैं।'

## *8.5 मैथलिशरण गुप्त संस्मरण*

'पथ के साथी' में वर्णित कवि मैथिलीशरण गुप्त नामक संस्मरण की साहित्यिक व्याख्या महादेवी वर्मा ने मैथिलीशरण गुप्त की महान् साहित्यिक प्रतिभाओं का वर्णनात्मक तथा भावात्मक विवरण दिया है। उन्होंने उनके गुणों की अवधारणा, उनसे भेंट आदि के बारे में लिखा है। इस संस्मरण का संक्षिप्त वर्णन इस तरह है-

मैं गुप्तजी को कब से जानती हूं, इस सीधे-से प्रश्न का मुझसे आज तक कोई सीधा-सा उत्तर नहीं बन पड़ा। प्रश्न के साथ ही मेरी स्मृति अतीत के एक धूमिल पृष्ठ पर उंगली रख देती है जिस पर न वर्ष, तिथि आदि की रेखाएं हैं तथा न

परिस्थितियों के रंग। केवल कवि बनने के प्रयास में बेसुध एक बालिका का छायाचित्र उभर आता है।

महादेवी के सामने एक समस्या पूर्ति का विषय था 'मेघ बिन जल वृष्टि भई है'। वे इसमें उलझी हुई थीं, उसी प्रसंग में लिखती हैं इस अष्ट प्रातः निष्कर्ष को सवैया में कैसे उतारा जाए-

इसी प्रश्न में कई दिन बीत गए। उन्हीं दिनों सरस्वती पत्रिका तथा उसमें प्रकाशित गुप्तजी की रचना से मेरा नया-नया परिचय हुआ था। बोलने की भाषा में कविता लिखने की सुविधा मुझे बार-बार खड़ी बोली की कविता की तरफ आकर्षित करती थी। इसके अतिरिक्त रचनाओं से ऐसा आभास नहीं मिलता था कि उनके निर्माताओं ने मेरी तरह समस्यापूर्ति का कष्ट झेला है। उन कविताओं के छंदबंध भी सवैया छंदों से सहज जान पड़ते थे और अहो कहो आदि तुक तो मानो मेरे मन के अनुरूप ही गढ़े हुए थे।

अंत में मैंने 'मेघ बिना जल-वृष्टि भई है' का निम्न पंक्तियों में काया कल्प किया-

हाथी न अपनी सूंड में यदि नीर भर लाता अहो,
तो किस तरह बादल बिना जल वृष्टि हो सकती कहो !

समस्या पूर्ति के स्थान में जब मैंने यह विचित्र तुकबंदी पंडितजी के सामने रखी तब वे विस्मय से बोल उठे, "अरे यह यहाँ भी पहुंच गये।" उनका लक्ष्य खड़ी बोली के कवि थे अथवा काव्य, यह आज बताना संभव नहीं। पर उस दिन खड़ी बोली की तुकबंदी से मेरा जो परिचय हुआ उसे मैं गुप्तजी का परिचय भी मानती हूं।वे लिखती हैं कि गुप्तजी की रचनाओं से जितना दीर्घकालीन परिचय हुआ उतना उन से नहीं। वे उनके बारे में लिखती हैं कि गुप्तजी के बाध्य दर्शन में ऐसा कुछ भी नहीं है जो उन्हें असाधारण सिद्ध कर सके।

उनके चौड़े ललाट पर क्रोध तथा दुश्चिताओं की क्रूर लिखावट नहीं है, सीधी भृकुटियों में सहिष्णुता का कुंचन नहीं है, ऊँची नाक पर दंभ का उतार-चढ़ाव नहीं है और ओठों में निष्ठुरता की वक्रता नहीं है। जो विशेषताएं उन्हें सबसे भिन्न कर देती हैं वे हैं उनकी बंधी दृष्टि और मुक्त हंसी। जब हमारी दृष्टि में प्रसार अधिक रहता है, तब हम किसी एक में उसे केन्द्रित नहीं कर सकते ।

प्रत्युत्त हमारी विहंगम दृष्टि एक ही क्षेत्र में एक साथ अनेक स्पर्श कर सकती है।

गुप्तजी की दृष्टि तथा हंसी उन्हें किसी के निकट अपरिचित नहीं रहने देती। कभी-कभी तो उनका देखना तथा हंसना इस तरह साथ चलता है कि दृष्टि हंसती-सी लगती है और हंसी से दृष्टि का आलोक बरसता जान पड़ता है। वे स्वभाव से प्रसन्न तथा विनोदी हैं लेकिन इस प्रसन्नता और विनोद की चंचल सतह दृष्टि नहीं जाती ।

गुप्तजी स्वभाव से लोकसंग्रही कवि हैं, अतः उनके स्वभाव के तल में ऐसी गंभीरता आवश्यक है जिस पर हास तथा विनोद की सौ-सौ चंचल लहरें बनने के लिए सिद्ध हो सकें।

महादेवी आगे लिखती है-गुप्तजी कवि भी हैं और भक्त भी, अतः निर्माण भी उनके स्वभाव में है और निर्मित के प्रति आत्म-समर्पण भी। साहित्य में उन्हें ऐसी ही कथाएं चाहिए जो लोक-हृदय में प्रतिष्ठा पा चुकी हो, पर उस परिधि के भीतर हर चरित्र का कुछ नया निर्माण उनका अपना है। वे रामायण को नहीं भूलते, पर रामायणकार जिन्हें भूल गया उन चरित्रों को अपने ढंग से स्मरण करते हैं। वे महाभारत के स्थान में कोई अन्य कथा नहीं खोजेंगे, पर महाभारत के भीतर खोये किसी साधारण पात्र को खोज लेंगे। वे कथाएं कई युगों की लंबी यात्राओं का आँधी-पानी, धूप-छाया सहते-सहते धूमिल हो गई हैं, पर जिन्हें ये वहन कर के लाई हैं वे पात्र गुप्तजी के आँसुओं में धुल-धुलकर नये रंगों में उद्भासित आज के प्राणी बन चुके हैं। उनके साहित्य में जो नया है उसका मेरुदंड पुराना है तथा जो पुराना है उस पर रंग नया है। जीवन में जो कुछ गुप्त जी ने लिखा है वह पुराने संस्कारों पर आधारित है।

वे लिखती हैं-वे नम्र हैं, लेकिन यह विनय उनकी वैष्णवता का ऐसा पानी है जो बड़े-बड़े जहाजों को संभाल सकता है, पर छोटे-से पत्थर का भी भार सहन नहीं कर सकता। इस प्रशांत सतह वाले सागर के तल में किसी अव्यक्त ज्वालामुखी की चोटियां भी हैं जो ठेस से विस्फोट बन सकती हैं। जीवन के पिछले पहर में उन्हें ऋण से जो मुक्ति मिली है उस तक पहुँचने हेतु उन्हें अर्थ-संकट की अनेक दुर्गम घाटियां पार करनी पड़ी हैं। उन दिनों की स्मृति मात्र से

उनकी आँखों में जो पानी छलक आता है उसी ने उनके स्वाभिमान पर शान चढ़ाई है। वे जिस सीमा तक साधनहीन के प्रति विनीत हैं उसी सीमा तक अर्थ दंभी के प्रति असहिष्णु ।

किसी परिचित के साधारण द्वार पर उपस्थित होकर वे अकुंठित भाव से कह सकते हैं-महाराज ! हम तो हाजिरी देने आये हैं। पर संपन्नता के संकेत पट जैसे द्वार पर यह हाजिरी कितनी महंगी पड़ सकती है इसे न वे बता सकते हैं न उनके परिचित ।

वे स्पष्टवादी थे। महादेवी लिखती हैं-स्पष्टवादिता के कारण उन्हें किसी तरह की मंत्रणा में सम्मिलित करना खतरे से खाली नहीं है। वे गोपनशास्त्र की वर्णमाला भी नहीं जानते जिसकी आज के युग में पग-पग पर आवश्यकता पड़ती है। परिणामतः जहाँ मौन रहना चाहिए वहाँ वे सब कुछ कह देंगे। उस संबंध में कुछ घटनाओं के स्मरण मात्र से हंसी आ जाती है। एक संस्था की विशेष बैठक में वे आहूत थे। बैठक के पहले कुछ व्यक्तियों ने विचार-विनिमय करके अपना निश्चित कार्यक्रम बना लिया तथा सामान्य बैठक में उसी के अनुसार प्रस्ताव और अनुमोदन होने लगे। पूर्व विचार-विनिमय के समय जो अनुपस्थित थे उनमें से किसी की जिज्ञासा के उत्तर में वे बोल उठे- "हाँ महाराज, हम लोग बात करके पहले ही यह निश्चय कर चुके हैं।" उनके इस उत्तर से अन्य सदस्य निरुत्तर रह गए, तब उन्होंने क्षमा-याचना की मुद्रा में कहा-"हमारे साथी मौन है, इससे जान पड़ता है कि हमने बताकर ठीक नहीं किया।"

एक अन्य घटना है-वे साहित्य संसद के लिए एक भवन खरीदने गए। लोगों ने उसने कहा कि वे कुछ न बोलें। भवन को देख वे सब कुछ भूल गए। मकान बेचने वाला उनकी बातचीत से उनके भोलेपन को भांप गया तथा उसने सोच लिया कि ऐसे व्यक्ति से सौदा करने में हानि क्यों उठाई जाए।

उनकी दृष्टि में वही रहता है जो उनके हृदय में है और हृदय में वही रहता है जो वचन में है। हम उन विचारों से सहमत हों या असहमत पर उनके संबंध में किसी भ्रम या उलझन में नहीं पड़ सकते। अधिकारी, व्यापारी, संपन्न, दरिद्र

किसी भी वर्ग के व्यक्ति के समान वे उसके दोषों की व्याख्या करने से नहीं हिचकते। उस समय उनकी हंसी जैसे तलवार की मखमली म्यान हो जाती है। इडियन प्रेस के कारण वे आर्थिक रूप से विपन्न रहे। उसने उनके ग्रंथ 'रंग में भंग' को छापकर भी कुछ नहीं किया।

अपने पिता एवं भाई के कारण वे उस अर्थ संकट में भी स्थिर रह सके। वे संस्कारों के कारण व्यक्तिगत दुःख सुख में विचलित नहीं होते। पर निदर्दोष व्यक्ति के प्रति अन्याय पर वे अत्यत क्रोधित हो जाते। एक बार सन् 42 में उन्हें इस कारण गिरफ्तार कर लिया गया, दुर्भाग्यवश कलेक्टर ने उनसे कुशल पूछ ली। इस पर वे आगबबूला हो गए और कहा-आपका दिमाग खराब हो गया है, आप से बातें क्या करें। आप निर्दोषों को पकडते घूमते हैं। "हमारा क्या, हम तो लेखक ठहरे, जहाँ सब देखेंगे और इसके खिलाफ लिखेंगे।"

जीवन और साहित्य की दृष्टि से गुप्त जी और निराला एक दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं। एक दिन अस्त-व्यस्त रहने वाले निराला जी से उन्होंने सहज भाव से कह दिया-'हम इस बार आपके पास ठहरेंगे।' तब अपने लिए असावधान निराला ने नया घड़ा मंगवा कर गंगा-जल लाने की सावधानी बरती। थोड़ी देर बात करने वाले भी जिनका रुख देखते रहते हैं उन्हीं निराला से गुप्त जी आधी रात तक सुख-दुःख की कथा कहते-सुनते रहे और उन्हें समझाते बुझाते रहे।

उनमें हीनता अथवा उच्चता की कोई ऐसी उलझन भरी ग्रंथि नहीं है, जिससे वे अपनी प्रतिष्ठा को लेकर व्यस्त रहें। अपने विशेष सम्मान के अवसर पर भी वे कह देते हैं-"अरे महाराज, हमारा तो कभी आपने अपमान नहीं किया, जो अब सम्मान की आवश्यकता हो। हमें बहुत सम्मान मिल चुका है, अब किसी नये का सम्मान होना चाहिए।" उनके काव्य की समीक्षा करते-करते एक समीक्षक ने उनके संबंध में ऐसे आपत्तिजनक शब्दों का प्रयोग किया, जो मानहानि के अपराध के अंतर्गत आ सकते हैं। इससे भी संतुष्ट न होकर आलोचक ने गुप्त जी की सम्मति चाहीं। उन्होंने उत्तर में लिखा "आपके निकट हमारे साहित्य और व्यक्तित्व का जो मूल्य है उसके लिए हम कृतज्ञ हैं।"

महादेवी संस्मरण के अंत में लिखती है-गुप्त जी अत्यंत साधारण जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्ति थे। गुप्तजी ने नौ-नौ संतानों की मृत्यु का

दुःख भोगा है। गुप्त जी ने इस कष्ट को अंगार पथ समान पार किया है। महादेवी जी लिखती हैं जिस तरह अपने अहं को समष्टि में मिला देने से कवि की मुक्ति है उस दृष्टि से तो गुप्त जी मुक्त कवि हैं।

## 8.6 सुभद्रा कुमारी चौहान संस्मरण

महादेवी जी ने सुभद्राकुमारी चौहान की चारित्रिक तथा साहित्यिक विशेषताओं के साथ इस संस्मरण को लिखा है। वह उनके गुणों से अत्यंत प्रभावित हुई हैं, उसी की एक झलक को उन्होंने अपने शब्दों में प्रस्तुत किया है, उसी की विषय वस्तु या संक्षिप्त सार इस प्रकार है-महादेवीजी एवं सुभद्राकुमारीजी दोनों ही एक ही विद्यालय में अध्ययनरत थी। महादेवीजी पांचवीं कक्षा की छात्रा तथा सुभद्राजी सातवी कक्षा की छात्रा थीं। उनका परिचय बड़े ही विचित्रपूर्ण ढंग से हुआ जो इस प्रकार है-

एक सातवीं कक्षा की विद्यार्थिनी, एक पांचवीं कक्षा की विद्यार्थिनी से प्रश्न करती है, 'क्या तुम कविता लिखती हो ? दूसरी ने सिर हिलाकर ऐसी अम्वीकृति दी जिसमें हों और नहीं तरल होकर एक हो गये थे। प्रश्न करने वाली ने इस स्वीकृति- अस्वीकृति की संधि में खीझ कर कहा, 'तुम्हारी क्लास की लड़किया तो कहती हैं कि तुम गणित की कापी तक में कविता लिखती हो ! दिखाओ अपनी कापी तथा उत्तर की प्रतीक्षा में समय नष्ट न कर कविता लिखने की अपराधिनी को हाथ पकड़कर खोचती हुई उसके कमरे में डेस्क के पास ले गई। नित्य व्यवहार में आने वाली गणित की कापी को छिपाना संभव नहीं था, अतः उसके साथ अंकों के बीच में अनधिकार सिकुड़कर बैठी हुई तुकबंदियां अनायास पकड़ में आ गई। इतना दंड ही पर्याप्त था। पर इसमें संतुष्ट न होकर अपराध की अन्वेषिका ने एक हाथ में वह चित्र-विचित्र कापी थामी तथा दूसरे में अभियुक्ता की उंगलियां कस कर पकड़ीं और वह हर कमरे में जा-जा कर इस अपराध की सार्वजनिक घोषणा करने लगी।"

उस युग में कविता-रचना अपराधों की सूची में थी। कोई तुक जोड़ता है, यह सुनकर ही सुनाने वालों के मुख की रेखाएं इस प्रकार वक्र-कुंचित हो जाती थीं मानों उन्हें कोई कटुतिक्त पेय पीना पड़ा हो।

महादेवी के अनुसार सुभद्रा की कद काठी सामान्य मझौले कद की थी। उसमें कुछ भी वीर या रौद्र नहीं था जिसकी कल्पना हम वीर गीतों के रचयिता से करते हैं। उनका रूप एक अत्यंत निश्छल, कोमल, उदार व्यक्तित्व वाली भारतीय नारी का था उससे उनके अंतर का पता नहीं लगता था। "मैंने हंसना सीखा है मैं नहीं जानती रोना" की लेखिका की हंसी एक अबोध शिशु की निश्छल हंसी की तरह थी। महादेवी लिखती हैं-

वे अपने बचपन की एक घटना सुनाती थीं। कृष्ण तथा गोपियों की कथा सुनकर एक दिन बालिका सुभद्रा ने निश्चय किया कि वह गोपी बनकर ग्वालों के साथ कृष्ण को ढूंढ़ने जाएगी।

दूसरे दिन वह लकुटी लेकर गायों और ग्वालों के झुंड के साथ कीकर और बबूल से भरे जंगल में पहुँच गई । गोधूली वेला में चरवाहे तथा गायें तो घर की ओर लौट गए, पर गोपी बनने की साधवाली बालिका कृष्ण को खोजती ही रह गई। उसके पैरों में कांटे चुभ गए, कंटीली झाड़ियों में कपड़े उलझ कर फट गए, प्यास से कंठ सूख गया और पसीने पर धूल की पर्त जम गई, पर वह धुनवाली बालिका लौटने को प्रस्तुत नहीं हुई। रात होते देख घर वालों ने उन्हें खोजना शुरू किया और ग्वालों से पूछते-पूछते अंधेरे करील वन में उन्हें पाया।

अपने निश्चित लक्ष्य-पथ पर अडिग रहना और सब-कुछ हंसते-हसंते सहना उनका स्वभावजात गुण था। क्रास्थवेट गर्ल्स कॉलेज में जब वे आठवीं कक्षा की विद्यार्थिनी थी, तभी उनका विवाह हुआ तथा उन्होंने पतिगृह के लिए प्रस्थान किया। स्वतंत्रता के युद्ध के लिए सन्नद्ध सेनानी पति को वे विवाह से पहले देख भी चुकी थीं तथा उनके विचारों से भी परिचित थीं। उनसे यह छिपा नहीं था कि नववधू के रूप में उनका जो प्राप्य है उसे देने का न पति को अवकाश है न लेने का उन्हें। वस्तुतः जिस विवाह में मंगल-कंकण ही रण-कंकण बन गया, उसकी गृहस्थी भी कारागार में ही बसाई जा सकती थी और उन्होंने बसाई भी वहीं। पर इस साधना की मर्मव्यथा को वही नारी जान सकती है जिसने

अपनी देहली पर खड़े होकर भीतर के मंगल चौक पर रखे मंगल कलश, तुलसी-चौरे पर जलते हुए घी के दीपक तथा हर कोने से स्नेह भरी बाँहें फैलाये हुए अपने घर पर दृष्टि डाली हो और फिर बाहर के अंधकार, आँधी और तूफान को तोला हो और तब घर की सुरक्षित सीमा पार कर, उसके सुंदर मधुर आह्वान की ओर से पीठ फेर कर अंधेरे रास्ते पर कांटों से उलझती चल पड़ी हो।

महादेवी सुभद्राजी के चरित्र के बारे में लिखती हैं-

उनके मानसिक जगत में हीनता की किसी ग्रंथि के लिए कभी अवकाश नहीं रहा, घर से बाहर बैठकर वे कोमल और ओज भरे छंद लिखने वाले हाथों से गोबर के कंडे थापती थी। घर के भीतर तन्मयता से आँगन लीपती थी, बर्तन माँजती थी। आँगन लीपने की कला में मेरा भी कुछ प्रवेश था. अतः प्रायः हम दोनों प्रतियोगिता हेतु आँगन भिन्न-भिन्न छोरों से लीपना आरंभ करते थे। कार्य में एकांत तन्मयता केवल उसी गृहिणी में संभव है जो अपने घर की धरती को समस्त हृदय से चाहती हो और सुभद्रा ऐसी ही गृहिणी थी। उस छोटे-से अधबने घर की छोटी-सी सीमा में उन्होंने क्या नहीं संगृहित किया। छोटे-बड़े, रंग-बिरंगे फूलों के पौधों की क्यारियां, ऋतु के अनुसार तरकारियां, गाय, बच्छे आदि-आदि बड़ी गृहस्थी की सब सज्जा वहाँ विराट दृश्य के छोटे चित्र के समान उपस्थित थी। अपने इस आकार में छोटे साम्राज्य को उन्होंने अपनी ममता के जादू से इतना विशाल बना रखा था कि उसके द्वार पर न कोई अनाहूत रहा तथा न निराश लौटा। जिन संघर्षों के बीच उन्हें मार्ग बनाना पड़ा वे किसी भी व्यक्ति को अनुदार और कटु बनाने में समर्थ थे। पर सुभद्रा के भीतर बैठी सृजनशीलता नारी जानती थी कि कांटों का स्थान जब चरणों के नीचे रहता है, तभी वे टूटकर दूसरों को बंधने की शक्ति खोते हैं। परीक्षाएं जब मनुष्य के मानसिक स्वास्थ्य को क्षत-विक्षत कर डालती हैं, तब उनमें उत्तीर्ण होने-न-होने का कोई मूल्य नहीं रह जाता।

सुभद्रा जो महिमामयी माँ थी उसकी वीरता का स्रोत भी वात्सल्य ही था। जिस तरह मधुमक्खी विभिन्न फूलों से शहद बनाती है उसी प्रकार कोमल कठिन सह्य-असह्य अनुभवों से सुभद्राजी जीवन बनाती थी। उनमें विवेचन शक्ति थी।

उन्होंने कई समस्याओं का अपने निष्कर्ष से चमत्कारी हल निकाला। महादेवी लिखती हैं-

जब स्त्री का व्यक्तित्व उसके पति से स्वतंत्र नहीं माना जाता था, तब वे कहती हैं, "मनुष्य की आत्मा स्वतंत्र है। फिर चाहे वह स्त्री-शरीर के अंदर निवास करती हो, चाहे पुरुष-शरीर के अंदर । इसी से पुरुष तथा स्त्री का अपना-अपना व्यक्तित्व अलग रहता है। जब समाज और परिवार की सत्ता के विरुद्ध कुछ कहना अधर्म माना जाता था, तब वे कहती है, "समाज और परिवार व्यक्ति को बंधन में बाँधकर रखते हैं। ये बंधन देशकालानुसार बदलते रहते हैं। सुभद्रा जी ने परंपराओं एवं रूढ़ियों को तोड़ा है। महादेवी लिखती है-

अनेक समस्याओं की तरफ उनकी दृष्टि इतनी पैनी है कि सहज भाव से कही सरल कहानी का अंत भी हमें झकझोर डालता है।

वे राजनीतिक जीवन में ही विद्रोहिणी नहीं रही, अपने पारिवारिक जीवन में भी उन्होंने अपने विद्रोह को सफलतापूर्वक उतारकर उसे सृजन का रूप दिया था। देश की जिस स्वतंत्रता हेतु उन्होंने अपने जीवन के वासंती सपने अंगारों पर रख दिये थे, उसकी प्राप्ति के उपरांत भी जब उन्हें सब ओर अभाव और पीड़ा दिखाई दी, तब उन्होंने अपने संघर्षकालीन साथियों से भी विद्रोह किया। उनकी उग्रता का अंतिम परिचय तो विश्ववंद्य बापू की अस्थि-विसर्जन के दिन प्राप्त हुआ। वे कई सौ हरिजन महिलाओं के जुलूस के साथ-साथ सात मील पैदल चलकर नर्मदा किनारे पहुँची। पर अन्य संपन्न परिवारों की सदस्याएं मोटरों पर ही जा सकीं। जब अस्थि-प्रवाह के उपरांत संयोजित सभा के घेरे में इन पैदल आने वालों को स्थान नहीं दिया गया, तब सुभद्रा जी का क्षुब्ध हो जाना स्वाभाविक ही था। उनका क्षात्रधर्म तो किसी प्रकार के अन्याय के प्रति क्षमाशील हो नहीं सकता था। जब उन हरिजनों को उनका प्राप्य दिला सकीं तभी वे स्वयं सभा में शामिल हुईं।

उनके स्नेह ने घर को सदा सुरक्षित रखा। सुभद्रा जब महादेवी के घर आती थी, तो उनकी नौकरानी भक्तिन तक रौब झाड़ती थी तथा उनके सामने महादेवी भक्तिन को नहीं डांटती थीं। वे सुभद्रा के स्नेह के बारे में लिखती हैं-

बंगले में आकर देखती कि सुभद्राजी सुभद्राजी रसोई या बरामदे में भानमती का पिटारा खोल बैठी है तथा उसमें से अद्भुत वस्तुएं निकल रही हैं। छोटी-छोटी पत्थर या शीशे की प्यालियां, मिर्च का अचार, बासी पूरी, पेड़े, रंगीन चकला-बेलन, चुटीली, नीली-सुनहरी चूड़ियां आदि-आदि सब कुछ मेरे लिए आया है, इस पर कौन विश्वास करेगा। पर वह आत्मीय उपहार मेरे निमित्त ही आता है।

ऐसे भी अवसर आ जाते थे, जब वे किसी कवि सम्मेलन में आते-आते प्रयाग उतर नहीं पाती थीं। और मुझे स्टेशन जाकर ही उनसे मिलना पड़ता था। ऐसी कुछ क्षणों की भेंट में भी एक दृश्य की अनेक आवृत्तियां होती ही रहती थी। वे अपने थैले से दो चमकीली चूड़ियां निकालकर हंसती हुई पूछती, "पसंद हैं? मैंने दो तुम्हारे लिए खरीदी थी। तुम पहनने में तोड़ डालोगी। लाओ अपना हाथ, मैं पहना देती हूं।" पहन लेने पर वे बच्चों के समान प्रसन्न हो उठतीं

जब दोनों मिलती थीं तो हमेशा हंसती रहती थीं। उन्होंने निश्चय किया कि सभा में नहीं हंसेंगी पर सुभद्रा जी गांभीर्य को तोड़ देती थी।

अनेक कवि सम्मेलनों में हमने साथ भाग लिया था, पर जिस दिन मैंने अपने न जाने का निश्चय और उसका औचित्य उन्हें बता दिया उस दिन से अंत तक कभी उन्होंने मेरे निश्चय के विरुद्ध कोई आग्रह नहीं किया।

आर्थिक स्थितियां उन्हें ऐसे निमंत्रण स्वीकार करने हेतु विवश कर देती थी, लेकिन मेरा प्रश्न उठते ही वह कह देती थीं, मैं तो विवशता से जाती हूं, पर महादेवी नहीं जाएगी, नहीं जाएगी।

साहित्य-जगत में आज जिस सीमा तक व्यक्तिगत स्पर्द्धा, ईर्ष्या द्वेष है, उस सीमा तक तब नहीं था, यह सत्य है। पर एक-दूसरे के साहित्य-चरित्र स्वभाव संबंधी निंदा पुराण तो सब युगों में नानी की कथा के समान लोकप्रियता पा लेता है। अपने किसी भी परिचित-अपरिचित साहित्य-साथी की त्रुटियों के प्रति सहिष्णु रहना तथा उनके गुणों के मूल्यांकन में उदारता से काम लेना सुभद्रा जी की

निजी विशेषता थी। अपने को बड़ा बनाने के लिए दूसरों को छोटा प्रमाणित करने की दुर्बलता उनमें असंभव थी ।

महादेवीजी अंत में लिखती है-एक बार सुभद्रा से बात करते-करते मृत्यु की चर्चा चल पड़ी थी। महादेवी कहती हैं- मैंने कहा 'मुझे तो उस लहर की-सी मृत्यु चाहिए जो तट पर दूर तक आकर चुपचाप समुद्र में लौट कर समुद्र बन जाती है।' सुभद्रा बोली, 'मेरे मन में तो मरने के बाद भी धरती छोड़ने की कल्पना नहीं है। मैं चाहती हूं, मेरी एक समाधि हो, जिसके चारों ओर नित्य मेला लगता रहे, बच्चे खेलते रहें, स्त्रियां गाती रहे और कोलाहल होता रहे। अब बताओ तुम्हारी नामधाम रहित लहर से यह आनंद अच्छा है या नहीं।

## *8.7 निराला संस्मरण*

एक दिन महादेवी वर्मा ने निरालाजी से पूछा आपको किसी ने राखी क्यों नहीं बाँधी-निराला ने उत्तर दिया कौन बहिन हम जैसे भुक्खड़ को अपना भाई बनावेगी। इस पर महादेवी ने निरालाजी के जीवन को व्यवस्थित करने का भार लिया, जो उनके अनुसार किसी जीवंत बवंडर या तूफान को कच्चे सूत में बाँधने जैसा था। उन्हें निराला जी के तीन सौ रुपये देकर उसका बजट बनाने को कहा यह कार्य महादेवी के लिए अत्यंत दुष्कर था-एक बजट उन्होंने बनाया जो निरालाजी को अच्छा लगा पर वह बजट तुरंत ही असफल हुआ क्योंकि दूसरे दिन ही उन्होंने पचास रुपये किसी विद्यार्थी की फीस के लिए माँगे, शाम को साहित्य मित्र हेतु साठ रुपये माँगे एवं किसी तांगे वाले को चालीस रुपये मनीआर्डर करने पड़े। दोपहर को किसी भतीजी के विवाह के उपहार हेतु सौ रुपये की जरूरत हुई, अतः समस्त रुपया समाप्त हो गया। तात्पर्य यह कि महादेवी को स्वयं के पास से रुपया देना पड़ा, वे समझ गई कि ऐसे ओढर दानी को यदि रोका न गया तो वे महादेवी को भी स्वयं के समान निर्धन बना देंगे। अतः बजट बनाने का दुःसाहस त्याग दिया।

उनके लिए बनवायी रजाई-कोट को उन्होंने दूसरे दिन ही दान कर दिया। एक दिन मैथिलीशरण गुप्त निराला के पास अतिथि बनकर आये। वहाँ गुप्तजी ने देखा खाली तेल का दिया, रसोईघर में अधजली लकड़ियां, ओधी पड़ी बटलोई एवं

खाली आटे की गठरी दिखी जो उनकी निर्धनता व्यक्त कर रहे थे। वह घर आत्मीयता से भरा था। अब निरालाजी नया घड़ा खरीद कर लाये तथा धोती चादर बिछाकर गुप्तजी को बैठा दिया। दोनों ने क्या कहा-सुना यह तो ज्ञात नहीं किन्तु प्रातः उन्हें रेल में बैठाकर रवाना कर दिया। इस प्रकार के कई संस्मरण यहाँ हैं। एक दिन कहा-मेरे घर में कुछ लकड़ियां, घी इत्यादि रखा दो, क्योंकि कुछ अतिथि आये हैं। उनमें बालको जैसा विस्मय था। भला उनके अतिथि दूसरे के गृह में भोजन कैसे करने जावे। वे अतिथियों के लिए भोजन बनाने से झूठे बर्तन माँजने तक का कार्य करते हैं। अब अतिथि कम आते हैं-आने पर वे नौकरों से कार्य करवा देते हैं। उनकी व्यथा का वर्णन महादेवी के शब्दों में देखें-

उनकी व्यथा की सघनता जानने का मुझे एक अवसर मिला है। श्री सुमित्रानंदन जी दिल्ली में टाइफाइड ज्वर से पीड़ित थे। इसी बीच घटित को साधारण और अघटित को समाचार मानने वाले किसी समाचार-पत्र ने उनके स्वर्गवास की झूठी खबर छाप डाली।

निराला जी कुछ ऐसी आकस्मिकता के साथ आ पहुँचे थे कि मैं उनसे यह समाचार छिपाने का भी अवकाश न पा सकी। समाचार के सत्य में मुझे विश्वास नहीं था, पर निराला जी तो ऐसे अवसर पर तर्क की शक्ति ही खो बैठते हैं। वे लड़खड़ा कर सोफे पर बैठ गए और किसी व्यक्त वेदना की तरंग के स्पर्श से मानो पाषाण में परिवर्तित होने लगे। उनकी झुकी पलकों से घुटनों पर चूने वाली आँसू की बूंदे बीच-बीच में ऐसे चमक जाती थीं मानों प्रतिमा से झड़े जूही के फूल हो।

स्वयं अस्थिर होने पर भी मुझे निराला जी को सांत्वना देनें के लिए स्थिर होना पड़ा। यह सुनकर कि मैंने ठीक समाचार जानने के लिए तार दिया है, वे व्यथित प्रतीक्षा की मुद्रा में तब तक बैठे रहे जब तक रात में मेरा फाटक बंद होने का समय न आ गया।

सवेरे चार बजे ही फाटक खटखटाकर जब उन्होंने तार के उत्तर के संबंध में पूछा तब मुझे ज्ञात हुआ कि वे रातभर पार्क के खुले आकाश के नीचे ओस से भीगी दूर पर बैठे सवेरे की प्रतीक्षा करते रहे हैं। उनकी निस्तब्ध पीड़ा जब कुछ मुखर

हो सकी, तब वे इतना ही कह सके, 'अब हम भी गिरते हैं। पंत के साथ तो रास्ता कम अखरता था, पर अब सोचकर ही थकावट होती है।'
वे लिखती है-निरालाजी का सौहार्द्र एवं विरोध दोनों आत्मीयता के वृंत पर खिले दो फूल हैं।
एक संस्मरण है-एक बार ये अपरा के इक्कीस सौ रुपये के पुरस्कार को मंगवाने हेतु महादेवी से प्रार्थना करने लगे। उस समय वे धूल धूसरित थे एवं जीर्ण-शीर्ण उत्तरीय पहने थे। कहने लगे उन रुपयों से महादेवी द्वारा एक विधवा को पचास रुपया प्रतिमास भिजवाने की व्यवस्था की प्रार्थना की। उस धन का उपभोग उन्होंने नहीं किया। साहित्य का संसद में सब सुविधा होने पर भी वे स्वयंपाकी बने रहे। एक बार गेरू मंगवाने पर पूछा किसलिए तो बोले- मैं संन्यासी बनना चाहता हूं। वे तो मधुकटी अब भी खाते हैं। वे गेरुये वस्त्र पहनकर निकले तथा दो रोटी माँगकर खाने के बाद कविता लिखने लगे-महादेवी लिखती हैं-
इस सर्वथा नवीन परिच्छेद का उपसंहार कहाँ और कैसे होगा यह सोचते-सोचते मैंने उत्तर दिया, 'आपके संन्यास से मुझे तो इतना ही लाभ हुआ कि साबुन के कुछ पैसे बचेंगे। गेरुए वस्त्र तो मैले नहीं दिखेंगे। पर हानि यही है कि न जाने कहाँ-कहाँ छप्पर डलवाना पड़ेगा, क्योंकि धूप और वर्षा से पूर्णतया रक्षा करने वाले नीम और पीपल कम ही हैं।'
मन में एक प्रश्न बार-बार उठता है.. क्या इस दश की सरस्वती अपने वैरागी पुत्रों की परंपरा अक्षुण्ण रखना चाहती है और क्या इस पथ पर पहले पग रखने की शक्ति उसने निराला जी में ही पायी है ?
निराला जी अपने शरीर, जीवन तथा साहित्य सभी में असाधारण है। उनमें विरोधी तत्वों की भी सामंजस्यपूर्ण संधि है। उनका विशाल डीलडौल, देखने वाले के हृदय में जो आतंक उत्पन्न कर देता है उसे उनके मुख की सरल आत्मीयता दूर करती चलती है।

उनकी दृष्टि में दर्प तथा विश्वास की धूपछांही द्वाभा है। इस दर्प का संबंध किसी हल्की मनोवृत्ति से नहीं और न उसे अहं का सस्ता प्रदर्शन ही कहा जा सकता है। अविराम संघर्ष और निरंतर विरोध का सामना करने से उनमें जो एक आत्मनिष्ठा उत्पन्न हो गयी है उसी का परिचय हम उनकी दृप्त दृष्टि में

पाते हैं। कभी-कभी यह गर्व व्यक्ति की सीमा पार कर इतना सामान्य हो जाता है कि हम उसे अपना, प्रत्येक साहित्यकार का या साहित्य का मान सकते हैं। इसी से वह दुर्वह कभी नहीं होता। जिस बड़प्पन में हमारा भी कुछ भाग है वह हम में छोटेपन की अनुभूति नहीं उत्पन्न करता और परिणामतः इससे हमारा कभी विरोध नहीं होता। वे सदा सत्य का पालन करते थे। वे अन्याय का प्रतिकार लेखनी से करते थे। निराला जी अत्यंत निर्भय थे पर क्रूर नहीं थे। वे किसी से घृणा भी नहीं करते थे। वे क्रांति दर्शी थे तथा संचयवृत्ति से दूर थे। वे विद्रोही थे। इस संबंध में महादेवी के विचार देखे-

विद्रोह स्वभावतः होने के कारण निराला जी के लिए ऐसी रूढ़ियों पर प्रहार करना जितना प्रयासहीन होता है, उतना ही कौतुक का कारण ।

दूसरों की बद्धमूल धारणाओं पर आघात कर उसकी खिजलाहट पर वे ऐसे ही प्रसन्न होते हैं जैसे होली के दिन कोई नटखट लड़का, जिसने किसी की तीन पैर की कुर्सी के साथ किसी की सर्वागपूर्ण चारपाई, किसी की टूटी तिपाई के साथ किसी की नयी चौकी होलिका में स्वाहा कर डाली हो।

उनका विरोध द्वेषमूलक नहीं, पर चोट कठिन होती है। इसके अतिरिक्त उनके संकल्प और कार्य के बीच में ऐसी प्रत्यक्ष कड़ियां नहीं रहती, जो संकल्प के औचित्य और कर्म के सौंदर्य की व्याख्या कर सकें। उन्हें समझने के लिए जिस मात्रा में बौद्धिकता चाहिए उसी मात्रा में हृदय की संवेदनशीलता अपेक्षित रहती है। ऐसा संतुलन सुलभ न होने के कारण उन्हें पूर्णता में समझने वाले विरले मिलते हैं। ऐसे दो व्यक्ति सब जगह मिल सकते हैं जिनमें एक उनकी नम्र उदारता की प्रशंसा करते नहीं थकता और दूसरा उनके उद्धत व्यवहार की निदा करते नहीं हारता। जो अपनी चोट के पार नहीं देख पाते वे उनके निकट पहुँच ही नहीं सकते, अतः उनके विद्रोह की असफलता प्रमाणित करने के लिए उनके चरित्र की उजली रेखाओं पर काली तूली फेरकर प्रतिशोध लेते रहते हैं। निराला जी के संबंध में फैली हुई भांत किवदंतियां इसी निम्न वृत्ति से संबंध रखती हैं।

वे विशिष्ट प्रतिभाशाली थे, अतः उन्हें युग का अभिशाप भोगना पड़ा। उन्हें माता, पिता, बहन, भाई, एवं पत्नी वियोग सहना पड़ा। पुत्री के अंतिम क्षणों में वे निरूपाय दर्शक रहे तथा पुत्र को उचित शिक्षा नहीं दे पाये। प्रतिकूल परिस्थितियों से कभी समझौता नहीं किया। वे साहित्य की एक निष्ठता के पर्याय हैं। वे लिखती हैं-

अर्थ की जिस शिला पर हमारे युग के न जाने कितने साधकों की साधनातरियां चूर-चूर हो चुकी है, उसी को वे अपने अदम्य वेग में पार कर आये हैं। उनके जीवन पर उस संघर्ष के जो आघात हैं वे उनकी हार के नहीं, शक्ति के प्रमाण-पत्र है। उनकी कठोर, श्रम, गंभीर दर्शन और सजग कला की त्रिवेणी न अछोर मरु में सूखती है न अकूल समुद्र में अस्तित्व खोती है।

जीवन की दृष्टि से निरालाजी किसी दुर्लभ सीप में ढले सुडौल मोती नहीं हैं, जिसे अपनी महार्घता का साथ देने के लिए स्वर्ण और सौंदर्य-प्रतिष्ठा के लिए अलंकार का रूप चाहिए। वे तो अनगढ़ पारस के भारी शिला-खंड है। न मुकुट में जड़कर कोई उसकी गुरुता संभाल सकता है और न पदत्राण बनाकर कोई उसका भार उठा सकता है। वह जहाँ है, वहाँ का स्पर्श सुलभ है। यदि स्पर्श करने वाले में मानवता के लौह परमाणु हैं तो किसी ओर से भी स्पर्श करने पर वह स्वर्ण बन जाएगा। पारस की अमूल्यता दूसरों का मूल्य बढ़ाने में है। उसके मूल्य में न कोई कुछ जोड़ सकता है न घटा सकता है।

अंत में वे लिखती है-आज हम दंभ तथा स्पर्धा, अज्ञान और भ्रांति की ऐसी कुहेलिका में चल रहे हैं जिसमें स्वयं को पहचानना तक कठिन है, सहयात्रियों की यथार्थता में जानने का प्रश्न ही नहीं उठता। पर आने वाले युग इस कलाकार की एकाकी यात्रा का मूल्य आँक सकेंगे, जिससे अपने पैरों की चाप तक आँधी में खो जाती है।

निराला जी के साहित्य की शास्त्रीय विवचना तो आगामी युगों के लिए भी सुकर रहेगी, पर उस विवेचना के लिए जीवन की जिस पृष्ठभूमि की जरूरत होती है, उसे तो उनके समकालीन ही दे सकते हैं।

असाधारण प्रतिभावान तथा अपने युग से आगे देखने वाले कलाकारों के इतिवृत्त के चित्रण में एक और भी बाधा है। जब उनके समानधर्मी उनके जीवन का

मूल्यांकन करते हैं तब कभी तो स्पर्धा उनकी तुला को ऊँचा-नीचा करती रहती है, कभी अपनी विशेषताओं का मोह उन्हें सहयोगियों में अपनी प्रतिकृति देखने हेतु विवश कर देता है। जब छोटे व्यक्तित्व वाले किसी असाधारण व्यक्तित्व की व्याख्या करने चलते हैं तब कभी तो उनकी लघुता उसे घेर नहीं पाती और कभी उसके तीव्र आलोक में अपने अहं को उद्घासित कर लेने की दुर्बलता उन्हें घेर लेती है। इस तरह महान कलाकारों के यथार्थ चित्र व्याख्या बहुल हों तो विस्मय की बात नहीं।

साहित्य के नवीन युग-पथ पर निराला जी की अंक-स्मृति गहरी और स्पष्ट, उज्जवल और लक्ष्यनिष्ठ रहेगी। इस मार्ग के हर फूल पर उनके चरण का चिन्ह तथा हर शूल पर उनके रक्त का रंग है।

## *8.8 जय शंकर प्रसाद संस्मरण*

हिन्दी साहित्य के गौरव, छायावादी अनुपम कलाकार तथा विश्व-ख्याति प्राप्त हिन्दी-साहित्यकार जयशंकर प्रसाद के विषय में यह रेखाचित्र महादेवी वर्मा ने संस्मरणात्मक रूप में अभिव्यक्त किया है। प्रसाद जी मूल रूप से भारतीय संस्कृति के उपासक और संस्कृत भाषा के ज्ञाता रहे हैं। लेखिका ने उनके दर्शन भागलपुर से प्रयाग जाते समय किए थे जो 'प्रथम और अन्तिम बार' थे। लेखिका का कथन है- "मेरे चित्र की पृष्ठभूमि में उनका साहित्य, मेरा घंटों का परिचय और कुछ प्रचलित स्तुतिनंदापरक कथाएं ही है।" इसी समय उन्हें ज्ञात हो गया था कि प्रसाद जी काशी में 'सुंघनी साहु' के नाम से विख्यात रहे।

**1. जीवन परिचय-** प्रसाद का जन्म एक सम्पन्न व प्रतिष्ठित परिवार में हुआ था जो ऋणग्रस्त था। भाई-बहिनों में सबसे छोटे होने के कारण उन्हें पर्याप्त स्नेह-दुलार प्राप्त था। किशोर अवस्था में वे शारीरिक क्षमता के लिए बादाम खाते थे तथा कुश्ती लड़ते थे, परन्तु इसी अवस्था में उन्हें पारिवारिक दायित्व, आर्थिक व्यवस्था व ऋण का भार भी उठाना पड़ा था। युवावस्था में उन्होंने माता-पिता, बड़े भाई, दो पत्नियों व इकलौते पुत्र की वियोग-व्यथा को सहन किया

था जिससे उनका मन अत्यन्त व्याकुल हो गया था। मानसिक आघात से उनके व्यथित हृदय से जो वेदना की मूक ध्वनि निसृत हुई, निःसंदेह उससे सच्चे और उदात्तु साहित्य का जन्म हुआ। लेखिका महादेवी वर्मा ने उन्हें साहित्यकार के रूप में 'पथ के साथी' स्वीकार किया है। लेखिका ने प्रसाद के जीवन में एक प्रकार की वेदना अन्तरंग में देखी थी तथा शारीरिक रूप में उन्हें क्षय रोग ग्रस्त पाया था। अतः आन्तरिक और बाह्य दोनों रूप में संघर्षमय जीवन उन्होंने व्यतीत किया था।

**2. निश्चल व्यक्तित्व-** प्रसाद का व्यक्तित्व अत्यन्त आकर्षक था। महादेवी वर्मा ने उनका कुछ ही समय दर्शन करके यह स्वीकार किया है कि वे साहित्य के क्षेत्र में साथी नहीं, बल्कि अग्रज थे। वे लिखती हैं-'लौटने का समय देख जब मैंने विदा ली तो ऐसा नहीं जान पड़ा कि मैं कुछ घंटों की परिचित हूँ। प्रसाद जी तांगे तक पहुँचाने आए और हमारी दृष्टि के ओझल होने तक खड़ रहे। अपने साहित्यिक अग्रज को फिर देखने को मुझे सुयोग नहीं प्राप्त हो सका।'

महादेवी का विचार था कि प्रसाद का व्यक्तित्व एक बौद्ध भिक्षु के समान हृष्ट-पुष्ट होगा, परन्तु उनके दर्शन करने के पश्चात् उन्होंने देखा 'न अधिक ऊँचा, न नाटा, मझोला कद, न दुर्बल, न स्थूल, छरहरा शरीर, गौर वर्ण, माथा ऊँचा और प्रशस्त, बाल न बहुत घने न विरल, कुछ भूरापन लिए काले; चौड़ाई लिए मुख, मुख की तुलना में कुछ हल्की सुडौल नासिका, आँखों में उज्ज्वल दीप्ति, ओठों पर अनायास आने वाली हँसी, सफेद खादी का धोती-कुर्ता।' उनके इस व्यक्तित्व से लेखिका पर्याप्त प्रभावित हुई और उन्हें प्रसाद जी में 'उज्ज्वल स्वच्छता' की अनुभूति हुई थी। प्रसाद के एकाकी जीवन से लेखिका को यह भी अनुभव हुआ था कि प्रसाद जी जैसा व्यक्तित्व लिए कोई भी समसामयिक साहित्यकार संभव नहीं है। लेखिका ने जब कभी भी प्रसाद जी को याद किया तभी उसके स्मृति-पटल पर उनका व्यक्तित्व इस प्रकार अंकित हो गया-

'हिमालय के ढाल पर उसकी गर्मीली चोटियों से समता करता हुआ एक सीधा ऊँचा देवदारू वृक्ष था। उसका उन्नत मस्तक हिम-आतप-वर्षा से प्रहार झेलता था। उसकी विस्तृत शाखाओं को आँधी-तूफान झकझोरते थे और उसकी जड़ों से एक छोटी, पतली जलधारा आँख-मिचौली खेलती थी। ठिठुराने वाले हिमपात,

प्रखर धूप और मूसलाधार वर्षा के बीच में भी उसका मस्तक उन्नत रहा और आँधी और बर्फीले बवंडर के झकोरे सहकर भी वह निष्कम्प निश्चल खड़ा रहा; पर जब एक दिन संघर्षों में विजयी के समान आकाश में मस्तक उठाये आलोक-स्नात वह उन्नत और हिमकिरीटनी चोटियों से अपनी ऊँचाई नाप रहा था-जिस उपेक्षणीय जलधारा का प्रहार हल्की गुदगुदी के समान जान पड़ता था, उसी ने तिल-तिल करके उसकी जड़ों के नीचे खोखला कर डाला और परिणामतः चरम-विजय के क्षण में वह देवदारू अपने चारों ओर के वातावरण को सौ-सौ ज्योतिश्चक्रों में मथता हुआ धरती पर आ रहा।' इससे स्पष्ट है कि प्रसाद जी देवदारू वृक्ष के समान थे जो अनेक संकटों और विषमताओं सा सामना निर्भर होकर करते रहे परन्तु क्षय रोग ने उनके जीवन को तिल-तिल करके नष्ट कर डाला। वस्तुतः, क्षय रोग ही उनकी यौवनावस्था में मृत्यु का मूल कारण था। लेखिका ने उनके व्यक्तित्व को अत्यन्त साहसपूर्ण और सहनशीलता के रूप में व्यक्त किया है। वे स्वच्छ व निर्मल हृदय वाले थे। उन के जीवन की स्थिति भले ही अनेक कष्ट पूर्ण क्षणों में व्यतीत हुई हो, परंतु उन्होंने अपने साहित्यिक कार्यों को नहीं छोड़ा। अस्वस्थ रहते हुए भी उन्होंने अपनी कृति 'कामायनी' को अपूर्ण नहीं रहने दिया। अतः वे सच्चे साहित्य-स्स्रष्टा भी थे।

**3. क्षयरोग से पीड़ित-** यद्यपि महादेवी वर्मा ने जयशंकर प्रसाद के जीवन को न तो बहुत अधिक रूप में देखा था और न बहुत अधिक जानने का ही प्रयास किया था, परन्तु उनके जीवन की विषमता को देखकर उन्हें सबसे अधिक आश्चर्य इस विषय पर रहा है कि वे क्षय रोग-ग्रस्त होकर भी उसके निदान पर ध्यान नहीं देते रहे और न इस विषय में किसी से कुछ कहा। इसमें संदेह नहीं कि क्षय रोग का निदान व्यय साध्य था। वे स्वयं ऋणग्रस्त थे और पारिवारिक दायित्वों से घिरे हुए थे, परन्तु इतने संकोचशील थे कि अपने कष्ट को दूर करने के लिए किसी से भी याचना नहीं की। लेखिका को बहुत आश्चर्य होता है 'क्या इतने बड़े कलाकार का कोई ऐसा अन्तरंग मित्र नहीं था जो इस असम द्वन्द्व के बीच में खड़ा हो सकता' संभव है कि घर में कोई ऐसा बड़ा व्यक्ति नहीं था जिसके कथनानुसार प्रसाद जी के रोग का इलाज कराया जा सकता था। यह भी संभव है कि अपने पुत्र के अनुनय को उन्होंने स्वीकार न किया हो। महादेवी वर्मा नहीं

समझ पाती कि 'पर क्या ऐसे आत्मीय बन्धु का भी उन्हें अभाव था जो उनके दुराग्रह को अपने सत्याग्रही-विरोध से परास्त कर क्षय के चिकित्सा-केन्द्रों तथा विशेषज्ञों का सहयोग सुलभ कर देता ?'

महादेवी वर्मा ने अपने इन प्रश्नों का उत्तर जयशंकर प्रसाद के 'चन्द्रगुप्त' नाटक में देखा है। जहाँ सिहरण के रूप में मानो प्रसाद कहते हैं "अपने से बार-बार सहायता करने के लिए कहने में मानव-स्वभाव विद्रोह करने लगता है। यह सौहार्द और विश्वास का सुन्दर अभिमान है। उस समय मन चाहे अभिनय करता हो, संघर्ष से बचने का, किन्तु जीवन अपना संग्राम अंध होकर लड़ता है। कहता है- 'अपने को बचाऊँगा नहीं, जो मेरे मित्र हों, आवे और अपना प्रमाण दें।"

**4. मनस्वी और संकोची-** प्रसाद जी मनस्वी थे, संकोची थे अतः किसी से स्नेह और सहानुभूति की याचना संभव नहीं थी। यह भी संभव है कि उन्होंने अपना जीवन-संग्राम भी अंध होकर लड़ा हो और अपने आपको बचाने का कोई प्रयत्न न किया हो। उन्हें किसी की प्रतीक्षा रही थी या नहीं थी? इसको भी कोई नहीं जानता। लेखिका को प्रसाद जी की पारिवारिक व आर्थिक विषमता जितनी गहन दिखाई थी उससे अधिक विषम उनका युवावस्था में क्षयरोग से ग्रस्त होकर संसार से विदा लेना जान पड़ा।

**5. पारिवारिक व्यथा-** लेखिका ने यद्यपि प्रसाद जी के जीवन की विविध घटनाओं का उल्लेख नहीं किया है, परन्तु जिन एक या दो घटनाओं ने उनके जीवन की मार्मिकता व्यक्त की है उनका संकेत अवश्य किया है। प्रसाद ने अपने तारुण्य में जहाँ पारिवारिक सदस्यों की असह्य वियोग-व्यथा सहन की थी और विधुर जीवन व्यतीत कर रहे थे वहाँ उनके समक्ष उनका एकमात्र किशोर पुत्र था। वे जानते थे कि उन्होंने अपने किशोर जीवन में कितनी व्यथा का भार वहन किया है। वे नहीं चाहते थे कि उनका अकेला पुत्र भी इस प्रकार के दुर्वह व्यथा-भरे जीवन के अभिशाप को झेलत्ता रहे। अतः लेखिका लिखती है-'स्वाभाविक है कि वे अपने इतिहास की पुनरावृत्ति नहीं करना चाहते थे। तब दूसरा विकल्प यही हो सकता था कि वे पतवार फेंककर तभी समुद्र में इस प्रकार छोड़ दें कि वह दिशाहीन बढ़ती हुई जीवन-मरण के किसी भी तट पर लग सके। उन्होंने इसी

को स्वीकार किया और अपने अदम्य साहस और आस्था से मृत्यु की उत्तरोत्तर, निकट आने वाली पदचाप सुनकर भी विचलित नहीं हुए।'

**6. कवि का महाप्रयाण-** प्रसाद का जीवन, उनका व्यक्तित्व और साहित्य-सृजन इन तीनों का समन्वय उनके जीवन को अत्यन्त संवेदना युक्त बना देता है। उनके जीवन की मार्मिक घटनाएं, उनकी संकोचवृत्ति और उनका क्षय रोग-ग्रस्त होना किसके मानस को संवेदनात्मक नहीं बना सकता ? महादेवी वर्मा अवश्य उनकी मानसिक वृत्तियों से परिचित थी। अतः तारुण्य में प्रसाद जी के महाप्रयाण को सुनकर व्याकुल हो उठी। वे कहती है-'मैं स्वयं कई दिन से ज्वरग्रस्त थी। एक बन्धु ने भीतर संदेश भेजा कि वे अत्यन्त आवश्यक सूचना लाए हैं। किसी प्रकार उठकर मैं बाहर दरवाजे तक पहुंची ही थी कि सुना, प्रसाद जी नहीं रहे। कुछ क्षण उनके कथन को समझने में लग गये और कुछ क्षण द्वार का सहारा लेकर अपने-आपको संभालने में। बार-बार उनका अन्तिम दर्शन स्मरण आने लगा और साथ ही साथ उस देवदारू का, जिसे जल की क्षुद्र-धारा ने तिल-तिल काटकर गिरा दिया था।'

निःसंदेह, उनके जीवन में विषमताओं और पीड़ाओं की गहनता थी जिसका भार उन्होंने एकाकी वहन किया। एक और आर्थिक कष्ट व पारिवारिक व्यथा, तो दूसरी क्षय रोग पीड़ित शरीर । मानसिक और शारीरिक दोनों प्रकार की व्यथाओं से व्यथित होकर भी न तो उन्होंने किसी से सहायता की याचना की और न अपने पारिवारिक गौरव को क्षीण होने दिया। लेखिका ने उनके दर्शन एक बार ही किए थे तथा तब वे उनके निवास स्थान पर गयी थी। उसके पश्चात् प्रसाद जी अस्वस्थ रहने के कारण कहीं नहीं आते-जाते थे तथा महादेवी वर्मा भी प्रायः इधर-उधर नहीं जाती थी। यद्यपि प्रसाद जी के अस्वस्थ होने का समाचार उन्हें मिलता रहा। हिन्दी जगत को यह भी ज्ञात हो गया था कि प्रसाद जी क्षय रोग से पीड़ित हैं। परन्तु सभी यह जानते थे कि प्रसाद सम्पन्न हैं। अतः वे इस पीड़ा से शीघ्र मुक्ति प्राप्त कर लेंगे। उनकी वास्तविकता किसी को ज्ञान न थी। वे अस्वस्थ दशा में भी 'कामायनी' लिख रहे थे, परन्तु लेखिका को खेद होता है-'जब

'कामायनी' का प्रकाशन हो चुका था और हिन्दी-जगत एक प्रकार से पर्वोत्सव मना रहा था तब उनके महाप्रयाण की वेला आ पहुँची ।'
कितनी बड़ी विडम्बना है कि एक ओर हिन्दी साहित्य जगत में 'कामायनी' जैसी कृति से खुशी की लहर व्याप्त हो रही है तो दूसरी ओर इस कृति के प्रणेता क्षय-रोग की पीड़ा के असह्य दुख से कराहकर संसार से प्रयाण कर रहे हैं। उनके जीवन की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उन्होंने अन्तरंग और बहिरंग संघर्षों में भी मानसिक संतुलन बनाए रखा। लेखिका उनकी पीड़ाओं को आत्मसात् करती हुई उनके प्रति संवेदनशील होकर कहती है-'चाँदनी से धुले ज्वालामुखी के समान ही उनके भीतर की चिन्ता उनके अस्तित्व को क्षार करती रही हो तो आश्चर्य नहीं। उनकी अन्तर्मुखी वृतियाँ या रिजर्व भी इसी ओर संकेत करता है। पारिवारिक विरोध और प्रतिष्ठा की भावना के वातावरण में पलने वाले प्रायः गोपनशील हो जाते हैं। उसके साथ यदि कोई गंभीर उत्तरदायित्व हो तो यह संकोच उनके मनोभावों और बाह्य वातावरण के बीच में एक आग्नेय रेखा खींच देता है। कण-कण कटती हुई शिला के समान उनकी जीवन-शक्ति रिसती गई और जब उन्होंने जीवन के सब संघर्षों पर विजय प्राप्त कर ली तब वे जीवन की बाजी हार गये जिसमें हार जाने की संभावना उनके मन में नहीं उठी थी।'
**7. साहित्य वैशिष्ट्य-** प्रसाद छायावादी युग के ब्रह्मा माने जाते हैं तथा हिन्दी साहित्य के बहुमुखी प्रतिभाशाली कलाकार के रूप में विख्यात हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पश्चात् प्रसाद जी ऐसे कलाकार थे जिन्होंने साहित्य के विविध क्षेत्रों को स्पर्श किया था। एकांकी, प्रतीक रूपक, गीतिनाट्य, ऐतिहासिक नाटक आदि में उन्होंने नाटकीय स्थितियों का संचयन किया था। उनका निबन्ध-साहित्य गांभीर्य, दार्शनिकता और चिन्तनात्मक है। करुण मधुर गीत, अतुकान्त रचनाएं, मुक्त छंद, खण्ड काव्य आदि से ज्ञात है कि काव्य के विविध आयामों को स्वर दे सके। लघु कथा से लेकर दीर्घ कहानी का सृजन करना इस बात का प्रतीक है कि वे कथा-साहित्य के बहुमुखी सफल सृष्टा थे। वे उपन्यासकार भी थे। उनके 'कंकाल' उपन्यास में नागरिक यथार्थता है तो 'तितली' में भावात्मक ग्रामीणता । पत्रकारिता का क्षेत्र भी उनसे अछूता नहीं रहा। उन्होंने 'इन्दु' 'जागरण' जैसे पत्रों

का सम्पादन कर इनकी सार्थकता सिद्ध कर दी। इस प्रकार वे प्रखर प्रतिभा सम्पन्न थे।

**8. संघर्ष एवं सादगीपन-** प्रसाद जी अपने बाल्य जीवन अत्यन्त सम्पन्न था जब उन्हें सभी सुख था सुविधाएं थी, पर्याप्त धन था तथा सभी प्रकार के साधन सुलभ थे। इसी सम्पन्नता में उन्होंने अपना शैशव व्यतीत किया। शिक्षा प्राप्त की, किशोर अवस्था भी इसी प्रकार व्यतीत हो गयी। परिणामस्वरूप उनके संस्कार, रहन-सहन आदि में किसी प्रकार का अभाव अनुभव नहीं किया, परन्तु यौवनावस्था में पैर रखते ही उन पर विपत्तियों का पहाड़ टूट पड़ा, परिवार में माता-पिता, भाई, पत्नी आदि के अभाव में मानो वे टूटने लगे। अनेक समस्याएं मुँह बनकर खड़ी हो गयी। वे अपने वंश की मर्यादा का निर्वाह करना चाहते थे, परन्तु धीरे-धीरे अर्थाभाव के कारण क्षय रोग ग्रस्त होने के कारण उनका जीवन संघर्षमय बन गया। उन्होंने स्वाभिमान को नहीं जाने दिया। चाहे कितनी ही आवश्यकता हो, कभी भी किसी के सामने हाथ नहीं फैलाया, कठिनाइयों को झेलते रहे। अपना उपचार भी नहीं कराते। उनके समक्ष पहले परिवार के अन्य सदस्य थे। फिर वे स्वयं थे। उनके इस आपत्तिग्रस्त जीवन का वर्णन करते हुए महादेवी वर्मा उन्हें एक देवदारु के रूप में प्रस्तुत करती हुई कहती है-'उसकी उन्नत मस्तक हिम-आताप-वर्षा के प्रहार को झेलता था। उसकी विस्तृत शाखाओं को आँधी तूफान झकझोरते थे-ठिठुरने वाला हिमपात, प्रखर धूप और मूसलाधार वर्षा के बीच में भी उनका मस्तक उन्नत रहा, आँधी और बर्फीले बवंडर के झकोरे सहकर भी वह निश्चल खड़ा रहा।'

चाहे उन्होंने कितने ही कष्ट सहन किए परन्तु अपने जीवन में सादगी को ही उन्होंने स्वीकार किया। धन चाहे उनके पास रहा या धनाभाव रहा। वे सादगी प्रकृति के व्यक्ति थे। महादेवी वर्मा जब उनसे मिलने जाती हैं तो केवल उनके रहन-सहन से ही नहीं बल्कि उनकी बैठक को देखकर ज्ञात कर लेती है कि उन्हें सादगी ही सदा प्रिय रही है। अतः वे कहती हैं-

"उनकी बैठक में ऐसा कुछ भी दिखाई नहीं दिया जिसे सजावट के अन्तर्गत रखा जा सके। कमरे में एक साधारण तख्त और दो तीन सादी कुर्सियाँ, दीवार पर दो

तीन-चित्र, अलमारी में कुछ पुस्तकें । इतना ही नहीं उनका पहनावा भी सादा था जब महादेवी वर्मा ने उन्हें देखा तो खादी का कुर्ता और खादी की धोती पहने हुए। ऐसा प्रतीत होता है कि सादगी उनके जीवन का अंग थी। इस प्रकार जयशंकर प्रसाद एक महान् साहित्यकार होते हुए भी जीवन में सदा संघर्षों से जूझते रहे। सुखद जीवन के पश्चात् जब दुख जीवन आता है तो मानव मन टूट जाता है, एक निराशा व पीड़ा का अनुभव होता है। प्रसाद न तो कभी निराश हुए और न कभी हीनभावना के शिकार। वे तो सच्चे कलाकार थे। अस्वस्थ रहकर भी स्वस्थ साहित्य की साधना करते थे। 'कामायनी' उनकी हिन्दी साहित्य की अनुपम कृति है। वे भारतीय संस्कृति और संस्कृत भाषा के अमर कलाकार थे। रुग्ण शरीर, धनाभाव, विषम परिस्थितियों से घिरे रहने पर भी वे जीवन और साहित्य के क्षेत्र में समन्वयवादी कवि रहे।

## *8.9 सार संक्षेप*

महादेवी वर्मा की कृति 'पथ के साथी' में सात प्रमुख साहित्यकारों–रवीन्द्रनाथ ठाकुर, मैथिलीशरण गुप्त, सुभद्राकुमारी चौहान, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, और सियाराम गुप्त–का भावपूर्ण चित्रण किया गया है। इनमें लेखिका ने उनके साहित्यिक योगदान के साथ-साथ उनके व्यक्तित्व और अपने दृष्टिकोण को भी प्रस्तुत किया है। इन संस्मरणों में महादेवी वर्मा ने साहित्यकारों के जीवन की झलक दिखाने के साथ अपने जीवन, रुचि और भावनाओं को भी व्यक्त किया है। इस कृति के माध्यम से इन साहित्यकारों के व्यक्तित्व और कृतित्व का परिचय मिलने के साथ-साथ महादेवी वर्मा की आत्माभिव्यक्ति की छवि भी उभरती है

## *8.10 मुख्य शब्द*

1. सामर्थ: शक्ति, क्षमता, योग्यता या सामर्थ्य; किसी कार्य को करने की सामर्थ्य।

2. जिज्ञासु: वह व्यक्ति जो नई बातें जानने की इच्छा रखता हो; जिज्ञासा रखने वाला।
3. सघन: घना, सघन या बहुत पास-पास स्थित; सघनता में भरा हुआ।
4. कृतिम: कृत्रिम; जो प्राकृतिक न हो, बल्कि मनुष्य द्वारा बनाया गया हो।
5. सहस्यमयी: रहस्यमयी, गूढ़ या ऐसा जो समझने में कठिन हो।
6. श्रृजनशक्ति: रचनात्मकता या नई चीजों को बनाने की क्षमता।
7. तुकबंदी: कविता या छंद की रचना जिसमें तुक मिलाने का प्रयास होता है।
8. तरंगमाला: लहरों की श्रृंखला; किसी माध्यम में लहरों का क्रम।
9. अमूल्यता: अनमोल या जिसकी कोई कीमत नहीं लगाई जा सके; अतुलनीय मूल्य।

## *8.11 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर*

प्रगति की जांच

उत्तर - व्यक्तितत्व, कृतित्व

उत्तर - विस्तार, गहराई

उत्तर - अपनी कल्पना

उत्तर - विद्युत, आस्था

## *8.12 संदर्भ सूची*

1. **श्रीवास्तव, एस. (2021)**। महादेवी वर्मा: साहित्य और समाज। नई दिल्ली: भारतीय साहित्य प्रकाशन।
   इस ग्रंथ में महादेवी वर्मा के लेखन और उनके समय के साहित्यिक और सामाजिक संदर्भों पर चर्चा की गई है।
2. **त्रिपाठी, आर. (2022)**। महादेवी वर्मा के संस्मरणों का अध्ययन। वाराणसी: साहित्य शोध केंद्र।

पुस्तक में 'पथ के साथी' के पात्रों और महादेवी वर्मा के दृष्टिकोण की गहन समीक्षा दी गई है।

3. **शर्मा, वी. (2023)**। महादेवी वर्मा का साहित्यिक योगदान: एक मूल्यांकन। भोपाल: हिंदी साहित्य प्रकाशन।
   यह पुस्तक महादेवी वर्मा की समग्र साहित्यिक यात्रा पर केंद्रित है, जिसमें उनके संस्मरणों की विशिष्टता पर जोर दिया गया है।
4. **मिश्रा, डी. (2020)**। महादेवी और छायावाद का युग। इलाहाबाद: साहित्य अकादमी।
   इसमें 'पथ के साथी' को छायावादी साहित्य के संदर्भ में विश्लेषित किया गया है।

## *8.13 अभ्यास प्रश्न*

1. महादेवी वर्मा द्वारा रचित रविन्द्र नाथ ठाकूर संस्मरण का सारांश लिखिए।
2. सुमित्रा नन्दन पंत के व्यक्तितत्व के विश्लेषण पथ के साथी कृति के आधार पर कीजिए।
3. पथ के साथी के अंन्तर्गत मैथलिशरण गुप्त संस्मरण का वर्णन कीजिए।
4. पथ के साथी को सुभद्रा कुमारी चौहान नामक संस्मरण का सारसंक्षेप लिखिए।
5. महादेवी वर्मा द्वारा रचित निराला के विचारों को व्यक्त कीजिए।
6. पथ के साथी में अंकित जय श्ंाकर प्रसाद के साहित्य का विवेचन कीजिए।

# ब्लॉक - III

# इकाई - 9
# हिन्दी कहानी का विकास

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 आधुनिक हिन्दी कहानी का उद्भव और विकास
9.4 कहानी कला के प्रमुख तत्व
9.5 प्रमुख कहानी कार
9.6 सार संक्षेप
9.7 मुख्य शब्द
9.8 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर
9.9 संदर्भ सूची
9.10 अभ्यास प्रश्न

## *9.1 प्रस्तावना*

आधुनिक हिंदी कहानी, हिंदी साहित्य की एक महत्वपूर्ण विधा, अपनी विशिष्ट अभिव्यक्ति और नवीन दृष्टिकोण के कारण अनूठी पहचान रखती है। इसका उद्भव 19वीं सदी के उत्तरार्ध में हुआ, जब सामाजिक, आर्थिक, और सांस्कृतिक परिवर्तनों ने साहित्य के स्वरूप को प्रभावित किया। यद्यपि गद्य की अधिकांश विधाओं की उत्पत्ति भारतेंदु युग में मानी जाती है, परंतु कहानी का व्यवस्थित स्वरूप द्विवेदी युग में विकसित हुआ।

कहानी की शुरुआत कथा, उपाख्यान, और किस्सों के रूप में हुई, जो जीवन और समाज से गहराई से जुड़ी थीं। धीरे-धीरे, यह विधा सामाजिक चेतना, यथार्थ, और जीवन के सूक्ष्म पहलुओं की प्रभावशाली अभिव्यक्ति का माध्यम बन गई। द्विवेदी युग में 'इंदुमती' जैसी कहानियाँ आधुनिक हिंदी कहानी के बीज के रूप

में सामने आईं। इसके पश्चात जयशंकर प्रसाद, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, और मुंशी प्रेमचंद जैसे साहित्यकारों ने इसे शिल्प और उद्देश्य की प्रौढ़ता प्रदान की। स्वतंत्रता के पश्चात कहानी लेखन में विषय और शैली की दृष्टि से विविधताएँ देखने को मिलीं। प्रगतिशील लेखन, मनोविश्लेषणात्मक दृष्टिकोण, और नई कहानी आंदोलन के तहत कहानी ने समाज, व्यक्ति और उनके संघर्षों को गहराई से उकेरा। आज की कहानी यथार्थ और जीवन के जटिल संबंधों की संवेदनशील प्रस्तुति के लिए जानी जाती है।

इस इकाई में हिंदी कहानी के उद्भव, विकास और कला के प्रमुख तत्वों का अध्ययन किया जाएगा। इसके माध्यम से कहानी विधा की ऐतिहासिक यात्रा और उसके सामाजिक, सांस्कृतिक, तथा साहित्यिक महत्व को समझने का प्रयास किया गया है।

## *9.2 उद्देश्य*

**प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:**

- आधुनिक हिंदी कहानी के उद्भव और विकास की प्रक्रिया को।
- कहानी कला के प्रमुख तत्वों और उनके प्रभावों को।
- आधुनिक काल में खड़ी बोली हिंदी गद्य की प्रतिष्ठा से जुड़ी समस्याओं को।
- आधुनिक हिंदी कहानी में दृष्टिकोणों की विविधता और उनकी पहचान के तरीकों को।
- आधुनिक हिंदी कहानी की प्रमुख प्रवृत्तियों और उनके अवलोकन को।

## *9.3 आधुनिक हिन्दी कहानी का उद्भव और विकास*

यद्यपि गद्य की अधिकांश विधायें भारतेंदु युग की उपज कही जाती हैं. पर कहानी की उत्पत्ति इस युग में नहीं हुई। यो तो राज शिवप्रसाद सितारे हिंद की

'राजाभोज का सपना' राधाचरण गोस्वामी की 'यमलोक की यात्रा' भारतेंदु का एक 'अद्भुत अपूर्व स्वप्न' और 'मूषा पैगम्बर' आदि रचनायें इसी युग में अवश्य लिखी गयी, पर जिस अर्थ में बाद की कहानी को लिया गया, उसमें इन्हें सम्मिलित नहीं किया जा सकता। कथा अख्यायिका वृतान्त स्वप्न, किस्सा, उपाख्यान आदि विभिन्न नामों से कहानियाँ लिखी जाती है। इन कहानी लेखकों में सामाजिक चेतना का अभाव था। कहने का तात्पर्य यह है कि आधुनिक कहानी का जन्म इस युग तक नहीं हो सका।

**हिन्दी में आधुनिक कहानी का जन्म तथा प्रथम हिंदी कहानी-** आधुनिक हिंदी कहानी का प्रारम्भ द्विवेदी काल में संवत् 1950 के बाद अंग्रेजी और बंगला के सम्पर्क, नयी शक्तियों के उदय, सुधारवादी आन्दोलन, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक परिस्थिति, नई शिक्षा पद्धति, गद्य के परिष्कार तथा नवीन चेतना के फलस्वरूप हुआ। सरस्वती (संवत् 1957) सुदर्शन (संवत् 1957) और इंदु (संवत् 1966) नामक पत्रिकायें आधुनिक कहानी की जन्मदात्री प्रमुख पत्रिकायें मानी जा सकती है। इसमें भी सरस्वती का स्थान सर्वोपरि है। उसके प्रकाशन के प्रथम वर्ष में ही इसमें 'इंदुमती "चन्द्रलोक की यात्रा'और 'आपत्तियों का पर्वत' नामक तीन कहानियाँ छपी थी। हिंदी के अधिकांश विद्वान 'इंदुमति (किशोरी लाल गोस्वामी) को हिन्दी की प्रथम कहानी मानते हैं। किंतु राजेन्द्र यादव तथा डॉ. श्रीकृष्ण लाल के अनुसार किशोरीलाल गोस्वामी की 'इंदुमति 'पर टेम्पेस्ट (शेक्सपीयर) की छाप है। लेकिन इस सम्बन्ध में डॉ. वासुदेव सिंह का मत विशेष उल्लेखनीय है। उसका कहना है कि इंदुमति न तो शेक्सपीयर के टेम्पेस्ट का रूपान्तर है और न किसी बंगला कहानी की छाया। उसका कथानक ऐतिहासिक घटना पर आधारित है। अतः इंदुमति को ही हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी मानना चाहिए।

**द्विवेदी युग-** हिन्दी कहानियों के उद्भव और विकास की दृष्टि से द्विवेदी युग का विशेष महत्व है। इस समय से न केवल आधुनिक कहानी का प्रारम्भ होता है, बल्कि शिल्प और वस्तु दोनों दृष्टियों से उसे प्रौढ़ता भी प्राप्त होती है। विकास की दृष्टि से द्विवेदी युग की कहानियों को भी दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है- (क)

प्रयोगकाल (संवत् 1950-1968), (ख) प्रौढकाल (संवत् 1969-1975) 1

**प्रयोग काल (संवत् 1950-1968)** प्रयोग काल में अनुदित और मौलिक दोनों प्रकार की कहानियाँ लिखी गयी। अनुवाद प्रायः अंग्रेजी, संस्कृत और बंगला कहानियों के हुए। अंग्रेजी अनुवाद करने वाले लेखकों में राधाकृष्णदास और पार्वतीनन्दन मुख्य हैं। इसी अवधि में आचार्य पण्डित रामचन्द्र शुक्ल की कहानी 'ग्यारह वर्ष का समय' 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई। बंग महिला की प्रसिद्ध कहानी 'दुलाई वाली' इसी अवधि की देन है। जिसे कुछ लोग हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी मानते हैं। इसी काल में गोपालराम गहमरी तथा वृन्दावनलाल वर्मा की कहानियाँ 'सरस्वती' में प्रकाशित हुयीं।

**प्रौढ काल (संवत् 1969-1975)** इस अवधि के प्रारम्भिक चरण में जयशंकर प्रसाद, जी.पी. श्रीवास्तव तथा चन्द्रधर शर्मा गुलेरी कहानी क्षेत्र में आते हैं। इनके कुछ आगे पीछे विशम्बरनाथ शर्मा कौशिक, चतुरसेन शास्त्री, राज राधिकारमण प्रसाद सिंह विशम्बरनाथ, गिज्जा, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, प्रेमचंद आदि हिन्दी कहानी क्षेत्र में नूतन कला, नव्य शैली और अभिनव उद्धेश्य को लेकर अवतीर्ण होते हैं। यहाँ आकर कहानी जीवन की व्याख्या का उद्धेश्य लेकर समाज और जीवन के अधिक निकट आ जाती है तथा कहानी कला को प्रौढ़ता प्राप्त होती है। संवत् 1972 के आस-पास मुंशी प्रेमचन्दजी हिन्दी कहानी साहित्य में आये। उन्होंने हिन्दी कहानी को विस्तृत आयाम दिया। उन्होंने कुल मिलाकर 266 कहानियाँ लिखीं।

**प्रेमचन्द के बाद कहानी का स्वरूप-** सन् 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना के बाद मार्क्सवादी प्रभाव से कहानी एक निश्चित यथार्थवादी धारा की ओर मुड़ती है। साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित होकर यशपाल, रांगेयराघव, राहुल सांस्कृत्यायन, मन्नालाल गुप्त, अमृतराय आदि विचार प्रधान कहानियाँ लिखते है। इसके अतिरिक्त मनोविश्लेषण अथवा फ्रायड का सिद्धांत भी कहानी को प्रभावित करता है। जिसके अनुसार चेतन जगत की अपेक्षा मनुष्य के अचेतन की व्याख्या पर अधिक जोर दिया जाता है और समाज की अपेक्षा व्यक्ति के विश्लेषण पर अधिक ध्यान रहता है। अज्ञेय, इलाचन्द जोशी, जैनेन्द्र आदि की कहानियों में यह प्रवृत्ति विशेष रूप से उभरकर आई है। इस अवधि में कुछ हास्य

रस की भी कहानियाँ लिखी गयीं। ऐसे कहानीकारों में बेढब बनारसी, हरिशंकर शर्मा, बरसानेलाल चतुर्वेदी आदि के नाम गिनाए जा सकते है। शिकारी जीवन पर कहानियाँ लिखने वालों में श्रीराम शर्मा उल्लेखनीय है।

**स्वातन्त्र्योत्तर कहानी की नई दिशा-नयी कहानी-** काल की दृष्टि से सन् 51 से प्रारम्भ होने वाली कहानी को ही नवीन जीवनदृष्टि के आधार पर नयी कहानी कहा जाता है। कहानी के इस नये मोड़ को नयी कहानी, स्वातंत्र्योत्तर कहानी, आज की कहानी, सचेतन कहानी, समकालीन कहानी, अकहानी, सहज कहानी, जैसे अनेक नामों से पुकारा गया है। कथ्य और शिल्प सभी दृष्टियों से विचार करने पर स्वतंत्रता के बाद की नयी कहानी पुरानी कहानियों से पूरी तरह भिन्न और स्वतंत्र है। नयी कहानी समकालीन सामाजिक जीवन की बहुमुखी विसंगतियों की अभिव्यक्ति की ओर * उन्मुख रही है। निम्नवित्त मध्यवर्ग इन कहानियों का केन्द्र बिंदु है। इनमें समग्रतः मानवीय पीड़ा की अभिव्यक्ति हुई है। इस पीड़ा के कई कारण व रूप हैं- भारत विभाजन, अकाल, युद्ध, राजनीतिक दोगलापन, अफसरशाही, पूंजीवादी शोषक व्यवस्था, सामाजिक अभाव, महामारी यांत्रिकता, अकेलेपन समास । सामाजिक परिवर्तन के मूल में है अर्थ और भावना तथा अर्थ के तनाव में जो मानसिक द्वंद्व उभरता है उसका मनोवैज्ञानिक अंकन इन टूटते सम्बन्धों के चितेरा कहानीकारों ने बड़ी खूबी से किया है। परिवार के पवित्र रिश्ते आज अर्थ और स्तर भार से चरमरा गये है। नया कहानीकार चरमराहट को अत्यन्त संवेदशील ढंग से कहानियों में ध्वनित करता है। इन कहानीकारों में भीष्म साहनी, उषा प्रियम्बदा, कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, ज्ञान रंजन, शशि प्रभा शास्त्री आदि मुख्य है।

कहने का संकेत यह है कि आज की हिंदी कहानी भारत की ही अन्य भाषाओं की कहानियों से जुड़कर आगे नहीं बढ़ रही है अपितु उसने यूरोप अमेरिका आदि की अद्यतन कहानी की प्रवृत्तियों को आत्मसात कर लिया है। अनेकानेक साप्ताहिक तथा मासिक पत्रिकायें इसकी प्रमाण है। अतएव हम कह सकते हैं कि हमारी हिंदी कहानी साहित्य विकास की उस सीमा तक पहुँच गयी है जहाँ से वह किसी भी देश की श्रेष्ठतम कहानियों से प्रतिद्वन्द्विता कर सकती है।

**लघु कथा-** वैज्ञानिक तंत्र की बढ़ती व्यस्तताओं के कारण आज का पाठक छोटी-छोटी रचनाओं में अधिक रूचि ले रहा है। इसी के फलस्वरूप हिंदी में अनेक विधाएं विकसित हुई जिनमें 'लघु कथा' एक महत्वपूर्ण विधा है। संक्षिप्तता लघु कथा की पहली शर्त है। महत्वपूर्ण विचारों को एक प्रतीक के रूप में प्रस्तुत कर देना इसका मुख्य उद्धेश्य है। 'रावी' के अनुसार 'लघु कथा' लम्बी कहानी की कथा वस्तु का प्लाट मात्र है और लम्बी कहानी लघु कथा का सपरिधान रूप ।' इसमें प्रतीकों और रूपकों के सहारे भाव व्यक्त किये जाते हैं। प्रतीक किसी घटना विशेष का भी हो सकता है, पौराणिक संदर्भ का भी, पशु पक्षी का भी और विशेष चरित्र का भी। इसमें कथातत्व प्रमुख रहता है।

लघु कथा की निरन्तर बढ़ती लोकप्रियता के पीछे मूलतः तीन कारण हैं- (1) आदमी बेहद व्यस्त होता जा रहा है और समयाभाव से आक्रांत है। (2) वह साहित्य पढ़ने के नाम पर कोरा
मनोविलास नहीं चाहता और जो पढ़ना चाहता है उसके आइने में अपने चतुर्दिक की सच्चाइयों को भी परखना चाहता है। (3) वह बेहद लाग लपेट के साथ किसी बात को पाना नहीं चाहता बल्कि बेबाक और दो टूक सुनना चाहता है। चूंकि लघु कथा इन अपेक्षाओं को पूरा करती है। इसलिए बेहद लोकप्रिय होती जा रही है। लिखी जा रही लघु कथाओं में भी वे लघु कथाएं विशेष लोकप्रिय हो रही है, जिनमें जीवन की सच्चाइयों की धड़कन है।
वस्तुतः आज के युग के कला-शिल्पी और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अज्ञेय का महत्वपूर्ण स्थान है, यद्यपि भाव-पक्ष की ओर उनका ध्यान कम गया है किन्तु फिर भी कहानी की आत्मा और शैली दोनों में ही वे सर्वोपरि सिद्ध होते हैं। उनकी 'परम्परा' 'बसंत' कविप्रिया "कैसेण्डा का अभिशाप' 'कोठरी की बात' 'नम्बर दस' 'द्रोही' 'अलिखित कहानी' 'अकलंक' 'नंगा' 'पर्वत की घटा' आदि प्रसिद्ध कहानियाँ है जिनमें उनके जीवन और जगत के गम्भीर अध्ययन की स्पष्ट छाप है तथा उसकी कलात्मकता का चरम विकास है।

## *9.4 कहानी कला के प्रमुख तत्व*

रोचकता, रचयिता प्रभाव तथा वक्ता एवं श्रोता या कहानीकार एवं पाठक के बीच यथोचित सम्बद्धता बनाये रखने के लिये सभी प्रकार की कहानियों में निम्नलिखित तत्व महत्वपूर्ण माने गए हैं कथावस्तु, पात्र अथवा चरित्र-चित्रण, कथोपकथन अथवा संवाद, देशकाल अथवा वातावरण, भाषा-शैली तथा उद्देश्य।

कहानी कला के प्रमुख तत्व ये रहे:
कथानक, सेटिंग, पात्र, दृष्टिकोण, संघर्ष, विषय-वस्तु, संवाद, देशकाल और वातावरण, भाषा-शैली, उद्देश्य.
कहानी के कुछ और तत्व और उनकी विशेषताएंः

- कहानी में सबसे ज़्यादा अहमियत कथानक की होती है. कथानक के चार अंग होते हैं - आरंभ, आरोह, चरम स्थिति, और अवरोह.
- कहानी के पात्रों के गुण-दोष को उनका 'चरित्र चित्रण' कहा जाता है.
- कहानी में संवाद प्रमुख अंग होते हैं.
- कहानी में अक्सर किसी अजीब घटना का वर्णन होता है.
- कहानी में अक्सर अच्छाई बनाम बुराई का विषय होता है.
- कई कहानियों का मकसद समाज के बारे में एक महत्वपूर्ण अवलोकन करना होता है.
- कहानी सुनाना कला का एक संवादात्मक रूप है.
- कहानी सुनाने में शब्दों और क्रियाओं का इस्तेमाल करके कहानी की तस्वीरें और तत्वों को दिखाया जाता है.

## *9.5 प्रमुख कहानीकार*

संस्कृत का कथा-साहित्य अखिल विश्व के कथा-साहित्य का जन्मदाता माना जाता है, परन्तु आधुनिक हिन्दी कहानी का विकास संस्कृत-कथा-साहित्य की परम्परा में न होकर, पाश्चात्य साहित्य विशेषतया अँग्रेज़ी साहित्य के प्रभाव रूप में हुआ। वरिष्ठ आलोचक राजकुमार कहानी के सन्दर्भ में लिखते हैं-"कहानी बोरे की तरह है। और यथार्थ माल की तरह। कहानी इस बाहर पड़े यथार्थरूपी माल को अपने

भीतर भरती हैं। यथार्थ के वज़न से कहानी की श्रेष्ठता या महानता का मूल्यांकन होता है। जिसमें जितना ज़्यादा यथार्थ, उतनी ही बड़ी वह कहानी।"[1]

उपन्यासों की भाँति कहानियों की रचना का प्रारम्भ भी भारतेन्दु युग से हुआ। यद्यपि आलोचकों ने ब्रजभाषा में लिखी गयी भक्त कवियों की कथा-दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता तथा दो सौ चौरासी वैष्णवों की वार्ता को आधुनिक हिन्दी कहानी का प्रारम्भ माना; परन्तु कहानी के तत्वों को दृष्टि में रखते हुए यह मान्यता उपयुक्त नहीं है। इसके बाद कुछ आलोचकों ने हिन्दी के प्रारम्भिक गद्यकारों- सदासुखलाल के सुखसागर, लल्लूलाल के प्रेमसागर, सदलमिश्र के नासिकेतोपाख्यान तथा इंशाअल्ला खाँ की रानी केतकी की कहानी को हिन्दी की प्रारम्भिक कथा-कृतियाँ माना। परन्तु आधुनिक कहानियों के तत्वों, विषयों और विचारधाराओं को देखते हुए यह मत भी उपयुक्त नहीं दिखायी पड़ता। आधुनिक युग में विकसित कहानी-कला का जन्म भी भारतेन्दुयुग से ही मानना उपयुक्त होगा।

भारतेन्दु द्वारा लिखित "एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न" को इस युग की पहली कहानी माना जा सकता है। यद्यपि कहानी कला की दृष्टि से यह अपरिपक्व हैं फिर भी इसमें कहानी जैसी रोचकता है। इस युग के दूसरे कहानीकार गौरीदत्त शर्मा हैं। इनकी "कहानी-टका कमानी" और "देवरानी जेठानी की कहानी" उपदेश प्रधान कहानियाँ हैं।

इस युग में कहानी-कला के विकास में सबसे बड़ा योगदान "सरस्वती" पत्रिका का है। इसमें प्रकाशित होने वाली प्रथम कहानी किशोरीलाल गोस्वामी की "इन्दुमती"(1900 ई.) है। उस पर शेक्सपियर के नाटक "टेम्पेस्ट" का प्रभाव है। बंग-मंहिला (राजेन्द्रबाला घोष) नाम से बंगला की कई अनूदित कहानियाँ सरस्वती में प्रकाशित हुई। इस युग की मौलिक कहानियों में मास्टर भगवानदास की प्लेग की "चुड़ैल"(1902 ई.), रामचन्द्र शुक्ल की "ग्यारह वर्ष" का समय(1903 ई.), गिरजादत्त बाजपेयी की "पंडित और पंडितानी" तथा बंग-महिला की "दुलाईवाली"(1907 ई.) विशेष उल्लेखनीय हैं। प्रेमचन्द की भी कई कहानियाँ सरस्वती में छपीं।

प्रसाद और प्रेमचन्द ने हिन्दी-कहानी-कला को उसके विकास के उच्च शिखर पर अधिष्ठित किया। प्रसाद की प्रारम्भिक कहानी ग्राम "इन्दु" नामक पत्रिका में प्रकाशित हुई। छाया, प्रतिध्वनि, आकाशदीप, आँधी, बिसाती, इन्द्रजाल, मधुवा, पुरस्कार, गुण्डा आदि प्रसाद जी की उत्कृष्ट कहानियाँ हैं। प्रसाद जी प्रेमचन्द से पहले कहानीक्षेत्र में आये। इनके हाथों हिन्दी-कहानी को गम्भीर कलात्मक भाषा और उत्कृष्ट विषयों की प्राप्ति हुई।

उपन्यासों की भाँति हिन्दी कहानी का चरम उत्कर्ष भी मुंशी प्रेमचन्द के हाथों हुआ। इन्होंने लगभग तीन सौ कहानियाँ लिखकर हिन्दी कहानी कला को समृद्ध बनाया। उपन्यासों की भाँति इनकी तत्कालीन जन-जीवन विशेषतया ग्रामीण-जीवन का सजीव चित्रण मिलता है। अपनी पुस्तक "हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास" में आलोचक रामस्वरूप चतुर्वेदी प्रेमचंद के विषय में कहते हैं- "प्रेमचंद उन लेखको में हैं जिन्होंने अपने रचनाभिमान को सबसे ऊपर रखा। किसी प्रकार के आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक दबाव को उन्होंने कभी नहीं माना। प्रगतिशील लेखक संघ के प्रथम अध्यक्ष पद से बोलते हुए (1936) उन्होंने अपनी दो टूक शैली में कहा था, "वह (साहित्यकार) देशभक्ति और राजनीति के पीछे चलने वाली सच्चाई भी नहीं, बल्कि उनके आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सच्चाई है।" मृत्यु के कुछ ही दिनों पहले यहाँ उन्होंने अपनी कला-रचना का निर्देशक सूत्र और अगली पीढ़ी के लिए अपना संदेश जैसे एक साथ दे दिया हो।"

प्रारम्भ में इनकी कहानियों के संग्रह "सप्तसरोज", "नवनिधि", "प्रेमपचीसी", "प्रेमपूर्णिमा", "प्रेमद्वादशी", "प्रेमतीर्थ", "सप्तसुमन", आदि नामों से प्रकाशित हुए थे। बाद में मानसरोवर नाम के आठ संग्रह खण्डों में इनकी सभी कहानियाँ प्रकाशित हुई है। प्रेमचन्द की उल्लेखनीय कहानियों में इनकी प्रथम कहानी पंचपरमेश्वर, आत्माराम, बड़े घर की बेटी, शतरंज के खिलाड़ी, बज्रपात, रानीसारंधा, ईदगाह, बूढ़ी काकी, पूस की रात, सुजान भगत, कफन, पंडित मोटेराम, मुक्तिपथ आदि हैं। इन्होंने अपनी कहानियों में उत्तर भारत के विभिन्न वर्गीय जनजीवन को चित्रित किया है। प्रेमचंद की कहानियों का समीक्षात्मक दृष्टि से अवलोकन करते हुए रामस्वरूप चतुर्वेदी पुनः लिखते है- "मानव चरित्र के ऐसे आत्मीय अंकन विरल हैं जहाँ कि रचना-संसार में हर पात्र यह अनुभव करे कि

लेखक की सहानुभूति उसी के साथ है, वह चाहे "मंत्र" का आदर्शप्रिय बूढ़ा भगत हो चाहे "कफन" के तीखे यथार्थ में सने विद्रूप घीसू और माधव हो। कथाकार की इस गहरी सहानुभूति के कारण ही यह चरित्र अपने-अपने सन्दर्भ में पूरे विश्वसनीय बन जाते है और एक गहरे मूल्य-बोध की सृष्टि करते हैं। रचना के इस स्तर पर कला और समाज-चेतना के कृत्रिम विभाजन आप से आप विलीन हो जाते हैं।"[3]

"कफन" के सन्दर्भ में डॉ. बच्चन सिंह का कथन विशेष रूप से दृष्टव्य है- "यह कहानी जीवन का ही कफन नहीं सिद्ध होती बल्कि संचित आदर्शों, मूल्यों, आस्थाओं और विश्वासों का भी कफन सिद्ध होती है।"[4]

प्रेमचन्द की कहानियों की भाषा-शैली अत्यन्त सरल है। इनकी कहानियाँ इनके उपन्यासों का ही लघु संस्करण कही जा सकती हैं।

प्रेमचन्द के बाद हिन्दी कहानी कला के उत्कर्ष में चन्द्रधर शर्मा "गुलेरी" का योगदान चिरस्मणीय है। इन्होंने अपनी तीन कहानियों- "उसने कहा था", "सुखमय जीवन", "बुद्धू का काँटा" से ही जितनी कीर्ति अर्जित कर ली, उतनी दर्जनों कहानियाँ लिखकर भी अन्य कहानीकार न कर सके। इनकी "उसने कहा था" कहानी हिन्दी की श्रेष्ठतम कहानियों में से एक है। वही इनकी कीर्ति का अक्षय स्तम्भ भी है। इस कहानी के विषय में विद्वान आलोचक रामस्वरूप चतुर्वेदी के शब्द हैं- "सिक्खों के जीवन के शौर्य भी इस कहानी में आरंभ से अंत तक करुणा की धारा अंतर्व्याप्त है। और करुणा तथा दुखांत के साथ उदात्तता का भाव जो लहना सिंह के आत्म-त्याग में से बड़े कोमल रूप में प्रस्फुटित होता है।"[5]

"गुलेरी" जी के बाद कहानी-क्षेत्रः में विश्वम्भर नाथ कौशिक का नाम उल्लेखनीय है। इनकी "वह प्रतिभा" और "ताई" कहानियाँ अत्यधिक प्रसिद्ध हैं। इस युग के अन्य प्रतिष्ठित कहानीकारों में पं. बद्रीनाथ भट्ट, सुदर्शन, (कमल की बेटी, कवि की स्त्री, संसार की सबसे बड़ी कहानी) पाण्डेय बेचन शर्मा "उग्र" (उसकी बेटी, सनकी, अमीर, जल्लाद) आचार्य चतुरसेन शास्त्री (दुखवा कासो कहूँ मोरी सजनी, भिक्षुराज, दही की हाँड़ी, दे खुदा की राह पर) आदि हैं।

वर्तमान युग- जैनेन्द्र जी से हिन्दी कहानियों का वर्तमान युग प्रारम्भ होता है। बदली हुई प्रवृत्तियों के अनुरूप इस युग की कहानियाँ भी अपने आप में एक नयापन लिये हुए हैं। जैनेन्द्र की तमाशा, पत्नी, घुँघुरू, ब्याह, भाभी, परदेशी,

चलचित्र, कः पन्थः आदि कहानियों में बदले हुए युग की दार्शनिक गम्भीरता, बौद्धिकता तथा सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विवेचन आदि के स्पष्ट दर्शन होते है। जैनेन्द्रजी के समक्ष ही ज्वाला दत्त शर्मा की भाग्यचक्र, अनाथ बालिका आदि कहानियाँ उल्लेखनीय हैं। जनार्दन प्रसाद झा "द्विज" करुणप्रधान कहानियों के लेखक हैं। चण्डीप्रसाद हृदयेश, गोविन्द वल्लभ पन्त, सियाराम शरण गुप्त, वृन्दावन लाल वर्मा आदि इसी खेमे के कहानीकार हैं।

इसके बाद ही हिन्दी में मनोविश्लेषणपरक कहानियों की परम्परा चली। इस दृष्टि से इलाचन्द्र जोशी की कहानियों तथा भगवती प्रसाद वाजपेयी की मिठाई वाला, झांकी, त्याग, वंशीवादन आदि कहानियों में मनोवैज्ञानिक तथ्यों का उद्घाटन प्रमुख है। "अज्ञेय" की कहानियाँ भी फ्रायड के मनोविश्लेषण वाद से प्रभावित है। विपथगा, परम्परा, कोठरी की बात, जयदोल इनके प्रमुख कहानी-संग्रह है।

वर्तमान कहानी कला के क्षेत्र में उपेन्द्रनाथ "अश्क" का महत्वपूर्ण स्थान है। इनकी कहानियों में निहित तीखे सामाजिक व्यंग्य द्रष्टव्य है। प्रेमचन्द की भाँति इनकी कहानियाँ भी विस्तृत जनजीवन से सम्बन्धित हैं। पिंजरा, पाषाण, मोती, दूला, मरूस्थल, गोखरू, खिलौने, चट्टान, जादूगरनी, चित्रकार की मौत, हलाल का टुकड़ा, कुछ न समझ सका, पराया-सुख, ज्ञानदान, बदनाम, जबरदस्ती आदि इनकी प्रसिद्ध कहानियाँ हैं। इसी समय के आसपास चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, जी.पी. श्रीवास्तव, हरिशंकर शर्मा, कृष्णदेव गौड़, बेढब बनारसी, अजीमवेग चुगताई, जयनाथ नलिन आदि ने भी अपनी कहानियों द्वारा हिन्दी कहानी कला को समृद्ध बनाया है।

वर्तमान समय में कहानी एक सर्वप्रसिद्ध साहित्यिक विधा है। आजकल की साहित्यिक पत्रिकाओं- सारिका, कादम्बिनी, नयी कहानी, हिन्दुस्तान, धर्मयुग, कथादेश, अन्यथा, कथाक्रम, अपेक्षा, तहलका, परिचय, वसुधा, पहल, लमही तथा अन्यानेक पत्रिकाओं में आये दिन कहानियाँ प्रकाशित होती रहती हैं। सन् साठ के बाद की कहनियों में इस युग की दौड़-धूप भरी ज़िन्दगी के किसी एक निश्चित पहलू या क्षण की कथा समाहित रहती है। युग की बौद्धिकता और सूक्ष्मचिन्तन की प्रवृत्ति के अनुरूप ही कहानियाँ भी दिन प्रतिदिन सूक्ष्म और बौद्धिक होती

जा रही हैं। इनमें प्रतीकात्मकता को विशेष प्रश्रय दिया जा रहा है। कहानियों की कोई निश्चित दिशा भी नहीं हैं। कहानीकार किसी भी घटना या अनुभूति के किसी भी क्षण को लेकर, संवेदनात्मक स्तर पर चित्रित करने के लिए सर्वथा स्वच्छन्द है। पहले की कहानियों की भाँति वर्तमान कहानियों में न तो पात्रों की बहुलता होती है और न ही घटनाओं की। कथावस्तु की सूक्ष्मता और प्रतीकात्मकता की दृष्टि से आये दिन कहानियों की दिशा में नवीन प्रयोग होते देखे जा रहे हैं। वर्तमान कहानीकला नयी कहानियों से भी आगे बढ़कर अकहानी की पदवी पाने को लालायित है। नयी कविता या अकविता की भाँति कहानी भी वर्तमान साहित्यिक प्रयोगों का बहुत बड़ा माध्यम है। वर्तमान कहानी की तुलना "स्नैपशाट" से की जाती है। जैसे कैमेरे द्वारा किसी एक निश्चित स्थिति का चित्र एक ही "स्नैप" में खींच लिया जाता है, उसी प्रकार कहानी भी अनुभूति के किसी एक निश्चित क्षण या किसी घटना के एक पहलू-विशेष को चित्रित करती देखी जा सकती है। कुल मिलाकर नयी कविता की भाँति नयी कहानी भी दिन प्रतिदिन सूक्ष्मता ग्रहण करती प्रयोगधर्मा बन गयी है।

वर्तमान कहानीकारों की गणना कर पाना एक सर्वथा असम्भव कार्य है क्योंकि आये-दिन पत्र-पत्रिकाओं में नये-नये कहानीकारों की कहानियाँ प्रकाशित होती रहती हैं। इस युग के कुछ प्रसिद्ध कहानीकारों के नाम हैं - देवेन्द्र सत्यार्थी, रांगेय राघव, प्रभाकर माचवे, अंचल, मुक्तिबोध, रेणु, मार्कण्डेय, कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, दूधनाथसिंह, शैलेश मटियानी, अमृतराय, नीलकान्त, सुरेशसिंह, अमर गोस्वामी, काशीनाथ सिंह, रवीन्द्र कालिया, निर्मल वर्मा, संजीव, शिवमूर्ति, अरुण प्रकाश, स्वयं प्रकाश, सृंजय, उदयप्रकाश, कैलाश बनवासी, अखिलेश, पंकज मित्र, मो. आरिफ, देवेन्द्र आदि। महिला कहानीकारों में सत्यवती मलिक, महादेवी वर्मा, चन्द्रप्रभा, तारा पाण्डेय, चन्द्रकिरण सौनरिक्सा, रामेश्वरी शर्मा, शकुन्तला माथुर, शिवानी, निर्मला ठाकुर, ममता कालिया, कृष्णा सोबती, मृदुला गर्ग, अलका सरावगी, मेहरून्निसा परवेज, गीतांजलिश्री, नीलाक्षी सिंह तथा मनीषा कुलश्रेष्ठ विशेषतया उल्लेखनीय हैं।

स्वप्रगति परिक्षण

1. भारतीय उपन्यास की प्रमुख विशेषताओं में से एक है ____________।
2. उपन्यास की उत्पत्ति का संबंध ____________ से है, जिसे आधुनिक साहित्य का आरंभ माना जाता है।
3. ____________ ने हिंदी उपन्यास के प्रारंभिक दौर में प्रमुख योगदान दिया और 'आधुनिक हिंदी उपन्यास' का सूत्रपात किया।
4. भारतीय उपन्यास में समाजिक और सांस्कृतिक बदलावों का चित्रण ____________ के माध्यम से किया जाता है।

## *9.6 सार संक्षेप*

आधुनिक हिंदी कहानी 19वीं सदी के उत्तरार्ध में सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों के साथ विकसित हुई। द्विवेदी युग में इसका व्यवस्थित स्वरूप उभरा, और मुंशी प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद जैसे रचनाकारों ने इसे परिपक्वता प्रदान की। स्वतंत्रता के बाद कहानी ने यथार्थ, प्रगतिशील दृष्टिकोण, और मनोविश्लेषणात्मक प्रवृत्तियों को अपनाया। यह विधा जीवन, समाज और संघर्षों के सूक्ष्म पहलुओं को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करती है। इस इकाई में कहानी के ऐतिहासिक विकास और उसके साहित्यिक, सामाजिक महत्व का विश्लेषण किया गया है।

## *9.7 मुख्य शब्द*

1. **सर्वपरि**: सबसे महत्वपूर्ण, जिसका स्थान या महत्व सबसे ऊपर हो।
2. **उल्लेखनीय**: ऐसा जो ध्यान देने योग्य हो, जिसकी चर्चा की जा सके।
3. **साम्यवादी**: साम्यवाद के सिद्धांत को मानने वाला, जिसमें समाज की सारी संपत्ति और संसाधनों का समान वितरण और समाज में वर्गहीनता की वकालत की जाती है।
4. **अनुदित**: किसी भाषा से दूसरी भाषा में अनुवादित किया गया।
5. **मौलिक**: जो मूल या आधारभूत हो, जो नया और अनोखा हो।

6. **मार्क्सवादी**: कार्ल मार्क्स के सिद्धांतों को मानने वाला या उससे संबंधित, जैसे वर्ग संघर्ष, श्रम के मूल्य का सिद्धांत, और समाजवादी विचारधारा।
7. **आत्मसात**: किसी विचार, वस्तु, या गुण को अपने भीतर इस प्रकार शामिल करना कि वह आपका हिस्सा बन जाए।
8. **अफसरशाही**: सरकारी अधिकारियों की ऐसी प्रणाली जिसमें कागजी कार्यवाही, नियमों और प्रक्रियाओं पर अधिक जोर दिया जाता है।
9. **यांत्रिकता**: ऐसी प्रवृत्ति या प्रक्रिया जो स्वाभाविक न हो, बल्कि यंत्रवत हो, यानी भावना और रचनात्मकता के बिना केवल नियमों या विधियों के अनुसार चलने वाली।

## *9.8 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर*

प्रगति की जांच

उत्तर - समग्रता

उत्तर - पश्चिमी साहित्य

उत्तर - मुंशी प्रेमचंद

उत्तर - उपन्यासकार

## *9.9 संदर्भ सूची*


1. **कुमार, पी. (2020).** *आधुनिक हिंदी लघु कथाएँ: समय के बदलते संदर्भ.* नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन।
2. **शर्मा, आर. (2021).** *समकालीन हिंदी गद्य: दृष्टिकोण और संदर्भ.* जयपुर: राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी।
3. **वर्मा, एस. (2022).** *हिंदी कहानी: इतिहास और विकास.* दिल्ली: साहित्य अकादमी।
4. **पांडे, एम. (2023).** *परिवर्तन की कथाएँ: हिंदी साहित्य में नई दिशाएँ.* लखनऊ: लोकभारती प्रकाशन।

## 9.10 अभ्यास प्रश्न

1. हिन्दी कहानीयों के उद्भव और विकास पर संक्षिप्त रूप से प्रकाश डालिए।
2. प्रेमचंन्द के बाद कहानी के स्वरूप का वर्णन कीजिए।
3. लघु कथा की निरंतर बढ़ती लोकप्रियता के मुख्य कारणों को स्पष्ट कीजिए।

# इकाई - 10
# निबंध का उद्भव एवं विकास


10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 निबंध की अवधारणा एवं प्रकार

10.4 निबंध की प्रमुख तत्व

10.5 हिन्दी निबंध का उद्भव एवं विकास

10.6 प्रमुख निबंधकार की रचनाएँ

10.7 सार संक्षेप

10.8 मुख्य शब्द

10.9 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

10.10 संदर्भ सूची

10.11 अभ्यास प्रश्न


## *10.1 प्रस्तावना*

निबंध साहित्य का एक महत्वपूर्ण अंग है, जो विचारों, अनुभवों और चिंताओं की अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम है। यह साहित्य की एक ऐसी शैली है, जिसमें लेखक अपनी व्यक्तिगत दृष्टि, विचारधारा और समाज के प्रति अपने दृष्टिकोण को निरूपित करता है। निबंध का उद्भव प्राचीन साहित्य से हुआ है, लेकिन इसका विकास विशेष रूप से आधुनिक समय में अधिक हुआ है। इस साहित्यिक रूप की नींव पहले के समय में स्थापित हुई, लेकिन समय के साथ इसके रूप और उद्देश्य में बदलाव आया।

निबंध की शुरुआत यूरोपीय साहित्य में हुई थी, जहां इसे 'एसे' (Essai) के नाम से जाना जाता था। फ्रांसीसी लेखक माइकल दे मोंटाइग्न (Michel de Montaigne) ने इस विधा को सर्वप्रथम विकसित किया, और उनके निबंध आज भी साहित्यिक अध्ययन का एक प्रमुख हिस्सा माने जाते हैं। भारतीय साहित्य में निबंध का विकास अंग्रेजी शिक्षा और यूरोपीय साहित्य के प्रभाव के परिणामस्वरूप हुआ।

समय के साथ निबंध की विधा ने न केवल अपने विषय में विविधता प्राप्त की, बल्कि शैली, उद्देश्य और भाषा के स्तर पर भी विकास किया। यह केवल व्यक्तिगत विचारों का संग्रह नहीं रह गया, बल्कि समाज, राजनीति, संस्कृति, विज्ञान और समाजिक समस्याओं पर भी गहरी सोच और विश्लेषण का माध्यम बन गया।

इस इकाई में हम निबंध के इतिहास, विकास और उसकी प्रमुख विशेषताओं का अध्ययन करेंगे। साथ ही, निबंध लेखन के विभिन्न पहलुओं और उसके वर्तमान संदर्भ में महत्व पर भी चर्चा करेंगे।

## *10.2 उद्देश्य*

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- निबंध की परिभाषा और उसकी मूल विशेषताएँ।
- निबंध का ऐतिहासिक उद्भव और उसके विकास की प्रक्रिया।
- निबंध लेखन की विभिन्न शैलियाँ और उनके उपयोग तथा निबंध के प्रमुख लेखक और उनके योगदान को समझेंगे।
- निबंध के माध्यम से सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक मुद्दों की प्रस्तुति पर चर्चा करेंगे।

- भारतीय साहित्य में निबंध की भूमिका और उसका समकालीन महत्व।

## *10.3 निबंध की अवधारणा एवं प्रकार*

निबंध का मौलिक अर्थ नि बंध (बाँधना) पत्र संग्रह रोकना (वाचसपत्यम) या [नि + बंध (बाँधना) + अच्] नीम का वृक्ष और उसके सेवन से कोष्ठ रोग रोध है, किन्तु कालांतर में अर्थ संकोच के कारण केवल साहित्यिक कृति के लिए इसका प्रयोग किया जाने लगा।

निबंध के पर्याय के रूप में अंग्रेजी का आर्टिकल कह सकते हैं। लेख, संदर्भ, रचना और प्रस्ताव शब्द भी प्रचलित हुए। इसे संदर्भ का अर्थ बाँधना है।

आजकल यह अपने मूल और रुढ़ अर्थों से भिन्न अर्थ में प्रयुक्त होता है। वह अपने सभी समानांतर पर्यायों के मौलिकता तथा परंपरानुमोदित अर्थों से भिन्न अस्तित्व रखता है। यह लैटिन के 'एग्जी जियर' (निश्चिततापूर्वक परीक्षण करना) से फ्रेंच के 'एसाई' तथा अंग्रेजी के 'ऐसे' का पर्याय हो गया है, जिसका शाब्दिक अर्थ प्रयत्न, प्रयोग या परीक्षण होता है-जिसमें निबंधकार आत्मीयता या अनात्मीयता, वैयक्तिकता या निवैयिक्तता के साथ किसी एक विषय या उसके किसी अंशों या प्रसंगों पर अपनी निजी भाषा-शैली में भाव या विचार प्रकट करता है। यों निबंध को परिभाषित करना अत्यंत कठिन है। उसके अनेकानेक रूप हो सकते हैं।

निबंध हिन्दी-गद्य साहित्य का एक आधुनिक रूप माना जा सकता है। आधुनिक निबंध का संबंध संस्कृत निबंधों की परंपरा से जोड़ना उतना उचित नहीं होगा। निबंध का आधुनिक रूप अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव से विकसित हुआ है। इसके प्रचार और प्रसार में पत्र-पत्रकारों का विशेष हाथ रहा है। निबंध साहित्य के प्रारंभिक इतिहास में हम प्रायः पत्रकारों को ही अग्रगण्य लाते हैं। जैसे 'हिन्दी प्रदीप' के पं. बालकृष्ण भट्ट, 'कविवचन सुधा' और 'आनंद कादंबिनी' के पं. 'बद्रीनारायण चौधरी' 'ब्राह्मण' के पं. प्रताप नारायण मिश्र 'हिन्दुस्तान' के श्री बालमुकुन्द गुप्त, 'सुदर्शन' के पं. माधव मिश्र ही थे। इसमें कोई संदेह नहीं कि हिन्दी में जिस प्रकार की गद्य रचना के लिए आज हम निबंध शब्द का प्रयोग करते हैं, भारतेन्दु युग से पूर्व हमें उसके दर्शन नहीं होते। 'रानी केतकी की

कहानी' अथवा 'राजा भोज का सपना' आदि गद्य रचनाओं को आधुनिक अर्थों में निबंध नहीं कहा जा सकता है।

निबंध के भेद- निबंध कई प्रकार के हो सकते हैं, जो इस प्रकार हैं-

1. कथात्मक (आख्यात्मक)
2. वर्णनात्मक
3. चिंतनात्मक
4. साहित्यिक
5. सांस्कृतिक
6. आलोचनात्मक-समीक्षात्मक
7. स्फुट या विविध प्रकार ।

अन्य प्रकार से भेद इस प्रकार के होते हैं-

1. विचार प्रधान
2. भावप्रधान-गद्यगीतात्मक
3. प्रतीकात्मक
4. मनोवैज्ञानिक
5. कथात्मक
6. संस्मरणात्मक
7. हास्य-व्यंग्यात्मक
8. वर्णन प्रधान ।

निबंधों के पर्याय में लेख (आलेख और साहित्यिक बैठकों में पढ़ा जाता है) आलोचना, समीक्षा, ललित, प्रश्न पत्रों के उत्तर इत्यादि सैकड़ों प्रकार के रूप हो सकते हैं।

स्वप्रगति परिक्षण

1. निबंध शब्द का मौलिक अर्थ _________ है, जिसका तात्पर्य किसी विषय पर विचार बाँधने से है।
2. निबंध का आधुनिक रूप _________ साहित्य के प्रभाव से विकसित हुआ है।

3. निबंध के प्रकारों में _________ निबंध में किसी विशेष घटना या अनुभव का विवरण किया जाता है।
4. _________ निबंध में लेखक किसी विषय पर अपने विचार या भावनाओं को प्रकट करता है।

## *10.4 निबंध की प्रमुख तत्व*

हिंदी निबंध लेखन में कुछ प्रमुख तत्व होते हैं, जो निबंध को प्रभावशाली और आकर्षक बनाते हैं। इन तत्वों पर विस्तार से विचार करते हुए, हम यह देख सकते हैं कि निबंध में विचारों की स्पष्टता, तार्किक प्रवाह और पाठक को प्रभावित करने की क्षमता महत्वपूर्ण हैं। प्रमुख तत्व निम्नलिखित हैं:

**1. शीर्षक (Title):** निबंध का शीर्षक न केवल उस पर ध्यान आकर्षित करता है, बल्कि यह विषय की प्रकृति को भी स्पष्ट करता है। यह निबंध के विषय से सीधे जुड़ा होता है और पाठक को यह बताता है कि निबंध किस बारे में है।

**2. प्रस्तावना (Introduction):** प्रस्तावना निबंध के मुख्य विचार को संक्षेप में प्रस्तुत करती है। इसमें लेखक द्वारा उठाए गए मुद्दे का परिचय होता है, जो निबंध के शेष भाग के लिए आधार तैयार करता है। प्रस्तावना में एक अच्छा आरंभ पाठक की रुचि को बनाए रखने के लिए जरूरी है।

**3. शरीर (Body):** यह निबंध का मुख्य हिस्सा है, जिसमें लेखक अपने विचारों को विस्तार से प्रस्तुत करता है। शरीर में निबंध के मुख्य बिंदुओं को क्रमबद्ध तरीके से रखा जाता है, ताकि पाठक को विचारों का क्रम समझ में आए। यह हिस्सा विभिन्न पैरेग्राफ में बांटा जाता है, जहां हर पैराग्राफ एक विचार को व्यक्त करता है।

**4. तर्क (Argument):** निबंध में तर्क महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, क्योंकि यह लेखक के विचारों को प्रमाणित करने का काम करते हैं। तर्कों का उपयोग निबंध

को विश्वसनीय और प्रेरणादायक बनाने के लिए किया जाता है। सही तथ्यों, आंकड़ों और उदाहरणों का प्रयोग तर्क को मजबूत बनाता है।

**5. उपसंहार (Conclusion):** निबंध का उपसंहार निबंध के विषय पर अंतिम विचार प्रस्तुत करता है और पूरे निबंध का सारांश देता है। उपसंहार में लेखक अपने विचारों को संक्षेप में प्रस्तुत करके निबंध को निष्कर्ष पर पहुंचाता है। यह पाठक को सोचने के लिए प्रेरित करता है और निबंध को एक सशक्त समापन प्रदान करता है।

**6. भाषा और शैली (Language and Style):** निबंध में प्रयुक्त भाषा सरल और स्पष्ट होनी चाहिए, ताकि पाठक आसानी से विचारों को समझ सके। शैली में लेखक का व्यक्तिगत दृष्टिकोण, शब्दों का चयन और उनकी प्रस्तुति प्रभावित करती है। इसके अतिरिक्त, निबंध में प्रयुक्त अलंकार और भाषिक विशेषताएँ पाठक को आकर्षित करती हैं।

**7. उद्देश्य (Purpose):** निबंध का उद्देश्य यह होता है कि वह किसी विचार, भावना, या समाजिक मुद्दे पर प्रकाश डाले। इसका लक्ष्य पाठक को कुछ नया सिखाना, सोचने के लिए प्रेरित करना या किसी विषय पर राय व्यक्त करना होता है।

**8. उदाहरण और प्रमाण (Examples and Evidence):** निबंध में दिए गए उदाहरण और प्रमाण लेखक के विचारों को सजीव और प्रमाणिक बनाते हैं। उदाहरणों का प्रयोग विचारों को स्पष्ट करने और पाठकों को विश्वास दिलाने में मदद करता है।

## *10.5 हिन्दी निबंध का उद्भव एवं विकास*

हिन्दी निबन्ध का जन्म भारतेन्दु-काल में हुआ। यह नवजागरण का समय था। भारतीयों की दीन-दुखी दशा की ओर लेखकों का बहुत ध्यान था। पुराने गौरव,

मान, ज्ञान, बल-वैभव को फिर लाने का प्रयत्न हो रहा था। लेखक अपनी भाषा को भी हर प्रकार से सम्पन्न और उन्नत करने में लग गए थे, और सबसे बड़ी बात यह थी कि इस काल के लेखक स्वतंत्र विचारों के थे। उनमें अक्खड़पन और फक्कड़पन भी था। ऐसा युग निबन्ध के बहुत अनुकूल होता है, इसलिए इस युग में जितने अच्छे निबन्ध लिखे गये उतने अच्छे नाटक, आलोचना, कहानी आदि नहीं लिखे गए।

भारतेन्दु युग

भारतेन्दु काल के वातावरण और परिस्थितियों से तो आप परिचित ही है। उस युग में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमधन', बालमुकुन्द गुप्त, राधाचरण गोस्वामी जैसे प्रमुख निबन्धकार हुए।

भारतेन्दु जीके निबन्ध भी अनेक विषयों पर हैं। 'काश्मीर कुसुम' 'उदयपुरोदय', 'कालचक्र', 'बादशाह दर्पण'-ऐतिहासिक, 'वैद्यनाथ धाम', 'हरिद्वार', सरयू पार की यात्रा' : विवरणात्मक, 'कंकण स्तोत्र' : व्यंग्यपूर्ण वर्णनात्मक और 'नाटक', 'वैष्णवता और भारतवर्ष' विचारात्मक निबन्ध हैं। भारतेन्दु सबसे अधिक सफल हुए अपने व्यंगात्मक निबन्धों में। 'लेवी प्राणलेवी', 'स्वर्ग में विचार-सभा का अधिवेशन', 'पाँचवें पैगम्बर', 'अंग्रेज स्त्रोत', कंकड़ स्तोत्र' आदि में गजब का हास्य-व्यंग्य है ही 'सरयू पार की यात्रा' में भी भारतेन्दु अपने व्यंग्य का बढ़िया नमूना उपस्थित करते हैं। जैसे : वाह रे बस्ती। झक मारने बसती है। अगर बस्ती इसी को कहते हैं, तो उजाड़ किसे कहेंगे?

इनके निबन्धों की भाषा स्वच्छ और श्लेषपूर्ण है। कहीं-कहीं तो उर्दू की बढ़िया शैली भी आपने उपस्थित की। भाव और विचार की दृष्टि से युग की वे सभी विशेषताएं इनमें भी हैं जो भट्ट जी या प्रतापनारायण मिश्र में हैं।

बालकृष्ण भट्ट अपने समय के सर्वश्रेष्ठ निबन्धकार कहला सकते हैं। इन्हें हिन्दी का 'मान्तेन, कहा जाता है। भट्ट जी ने सभी प्रकार के निबन्ध लिखे। 'मेला-ठेला', 'वकील' : वर्णनात्मक, 'आंसू', 'चन्द्रोदय', 'सहानुभूति', 'आशा माधुर्य',

'खटका' : भावात्मक 'आत्म-निर्भरता', 'कल्पना-शक्ति', 'तर्क', और 'विश्वास' : विचारात्मक निबन्ध हैं। 'खटका', 'इंगलिस पढ़े तो बाबू होय', 'रोटी तो कमा खाय किसी भांति', 'मुछन्दर', 'अकल अजीरन राग' आदि निबन्धों में मस्ती, हास-परिहास, विनोद-व्यंग्य सभी कुछ हैं। ऐसे निबन्धों की भाषा चलती और दैनिक व्यवहार की है। भट्ट जी की भाषा विषय के अनुकूल और अपने समय में सबसे अधिक मंजी हुई सबल और प्रभावशाली है। समाज, व्यक्ति, जीवन, धर्म, दर्शन, राष्ट्र, हिन्दी : सभी विषयों पर आपने लिखा। जन-साहित्य को जन-भाषा में लिखने वालों में प्रतापनारायण मिश्रका नाम सर्वप्रथम आएगा। इनके व्यक्तित्व और निबन्धों में निराला आकर्षण है। लापरवाही, चुभता व्यंग्य, गुदगुदीभरा विनोद इनकी रचनाओं की विशेषताएँ हैं। इस युग में इतनी चुलबुली भाषा लिखने वाला और कोई नहीं हुआ। यह 'ब्राह्मण' नामक पत्र निकालते थे, जिसमें इनके निबन्ध छपते थे। छोटे-छोटे विषयों पर इतने बढ़िया, मनोरंजन और उच्च उद्देश्य को लेकर किसी लेखक ने नहीं लिखा। 'नाक', 'भौह', 'वृद्ध', 'दांत', 'पेट', 'मृच्छ' आदि विषयों को लेकर आपने अपने निबन्धों में मनोरंजन का सामान भी जुटाया और देश-प्रेम, समाज-सुधार, हिन्दी के प्रति प्रेम, स्वाभिमान, आत्म-गौरव का सन्देश भी दिया। इनकी शैली में घरेलू बोलचाल की शब्दावली तथा पूर्वी बोलियों की कहावतों और मुहावरों का प्रयोग मिलता है। लापरवाही के कारण भाषा की अशुद्धयाँ रहना साधारण बात है। 'आत्मीयता', 'चिन्ता', 'मनोयोग' इनके विचारात्मक निबन्ध हैं।

प्रेमघन जी अपने निरालेपन के लिए याद किए जाते हैं। उनका उद्देश्य यह नहीं था कि उनकी बात साधारण समाज तक पहुंचे, उसका मनोरंजन हो या उसके विचारों में परिवर्तन हो। कलम की करामात दिखाना ही उनका उद्देश्य था। वह स्वाभाविक, प्रवाहमय, सुबोध भाषा नहीं लिखते। बल्कि शब्दों की जड़ाई करते थे। भाषा बनावटी होते हुए भी उसमें कहीं-कहीं विवेचन की शक्ति पायी जाती है। आप 'नागरी नीरद' और 'आनन्द कादम्बिनी' नामक पत्र निकालते थे। इन्हीं में उनके निबन्ध छपा करते थे। इनके शीर्षक उनकी भाषा-शैली को प्रकट करते हैं जैसे सम्पादकीय, सम्पत्ति सीर, हास्य, हरितांकुर, विज्ञापन और वीर बधूटियां।

'हमारी मसहरी' और 'हमारी दिनचर्या' जैसे मनोरंजक लेख उन्हीं के लिखे हुए हैं। 'फागुन', 'मित्र', 'Rतु-वर्णन उनके अच्छे निबन्ध हैं।

बावमुकुन्द गुप्त इस युग के अन्तिम और सबसे अधिक महत्वपूर्ण निबन्धकार थे। 'शिवशम्भू' के नाम से 'भारतमित्र' में वह 'शिवसम्भू' का चिट्ठा' लिखा करते थे। हास्य-व्यंग्य के बहाने 'शिवशम्भू का चिट्ठा नाम से पुस्तक रूप में प्रकाशित हुए। उनका व्यंग्य शिष्ट और नागरिक होता था। भाषा मिली-जुली हिन्दी-उर्दू। राधाचरण गोस्वामीको भी इस युग के प्रगतिशील लेखकों में गिना जाएगा। 'यमपुर की यात्रा' में उन्होंने धार्मिक अंधविश्वास का बहुत मजाक उड़ाया है। धार्मिक विचारों के लोग गाय की पूंछ पकड़कर वैतरणी पार करते हैं। इसमें कुत्ते के पूंछ पकड़कर वैतरणी पार कराई गई है। पहले ऐसी बात सोचना घोर पाप समझा जा सकता था।

भारतेन्दु-काल के निबन्धकारों की विशेषताएँ हैं : निबन्धों के विषयों की विविधता, व्याकरण-सम्बन्धी लापरवाही और अशुद्धयां, देशज या स्थानीय शब्दों का प्रयोग, शैली के विविध रूप और विचार-स्वतन्त्रता, समाज-सुधार, देश-भक्ति, पराधीनता के प्रति रोष आत्म-पतन पर खेद, देशोत्थान की कामना, हिन्दी-सम्मान की रक्षाभावना, हिन्दू, पर्व-त्यौहारों के लिए उत्साह और नवीन विचारों का स्वागत। निबन्ध की एक विशेष शैली भी इस युग की विशेषता है : 'राजा भोज का सपना' (शिवप्रसाद सितारे हिन्द), एक अद्‌भुत अपूर्व स्वप्न (भारतेन्दु) एक अनोखा स्वप्न (बालकृष्ण भट्ट), यमपुर की यात्रा (राधाप्रसाद गोस्वामी) : इन रचनाओं में स्वप्न के बहाने राजनैतिक अधिकार पाने, समाज सुधार तथा धर्म-संस्कार का संदेश दिया गया है।

## द्विवेदी युग

भारतेन्दु-युग के बाद द्विवेदी-युग आता है। भारतेन्दु-युग गद्य-साहित्य के बचपन का समय था। बचपन में लापरवाही, खिलवाड़, विनोद, मनोरंजन, मुग्धता, चंचलता रहती है। किशोर अवस्था में थोड़ी जिम्मेदारी, समझदारी, शिक्षा, नियम-पालन, साज-संवार, स्थिरता आ जाती है। इसी अवस्था में प्रतिस्पर्धा की भावना भी जागती है। अन्य साथियों की शिष्टता, शील, ज्ञान, आत्मसम्मान आदि

को देखकर उनके समान ही हम भी गुण विकसित करना चाहते हैं। यही बात भारतेन्दु युग के संदर्भ में समझनी चाहिए। भारतेन्दु-काल में साहित्य तो बहुत लिखा गया था, पर भाषा की भूलें साधारण बात थी। निबन्ध के विषय भी साधारण हुआ करते थे। इस युग में इन अभावों की ओर विशेष ध्यान दिया गया। इस काल के निबन्धों का आरम्भ दो अनुवाद-पुस्तकों से हुआ। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अंग्रेज लेखक बेकन के निबन्धों का अनुवाद 'बेकन-विचार-रत्नावली' के नाम से, गंगा प्रसाद अग्निहोत्री ने मराठी लेखक चिपलूणकर के निबन्धों का अनुवाद प्रकाशित कराया। लेकिन यहाँ यह बात ध्यान रखने की है कि द्विवेदी-युग का निबन्ध-साहित्य भारतेन्दु-युग के निबन्ध-साहित्य के समान सम्पन्न नहीं है। महावीर प्रसाद द्विवेदी, माधव प्रसाद मिश्र, अध्यापक पूर्णसिंह और चन्द्रधर शर्मा गुलेरी इस युग के प्रमुख निबन्धकार हैं। गोविन्द नारायण मिश्र, पद्मसिंह शर्मा और श्यामसुन्दरदास का नाम दूसरी श्रेणी में लिया जा सकता है।

द्विवेदी-युग में महावीर प्रसाद द्विवेदी का नाम सबसे पहले आता है। अपने युग के यह आचार्य थे। आचार्य का काम होता है शिक्षा देना, ज्ञान-वद्धर्न कराना, समाज पर नया संस्कार डालना और सुधार करना। ये सब काम इन्होंने किये, इसलिए यह आचार्य कहलाए और इनके नाम पर ही इस काल का नाम द्विवेदी-युग रखा गया। अपने निबन्धों और समालोचनाओं के द्वारा सबसे मुख्य काम इन्होंने भाषा-सुधार का किया। 'किंकर्तव्य' नामक निबन्ध में यह लिखते हैं : 'कविता लिखने में व्याकरण के नियमों की अवहेलना नहीं करनी चाहिए। शुद्ध भाषा का जितना मान होता है, अशुद्ध का नहीं होता। जहां तक सम्भव हो, शब्दों का मूल रूप न बिगाड़ना चाहिए। मुहावरे का विचार रखना चाहिए। क्रोध क्षमा कीजिए, इत्यादि वाक्य कान को अतिशय पीड़ा पहुंचाते हैं।कृ' इस अवतरण से इनके भाषा सम्बन्धी विचार स्पष्ट हो जाते हैं।

द्विवेदी जी ने सभी प्रकार के निबन्ध लिखे। 'कवि और कविता' 'प्रतिभा', 'साहित्य की महत्ता' इनके विचारात्मक निबन्ध हैं। 'लोभ', 'क्रोध' 'संतोष' : भावात्मक, 'हंस का क्षीरनीर विवेक', 'जापान में पतंगबाजी', 'हजारों वर्ष पुराने खंडहर' और 'प्रताप सुषमा' : वर्णनात्मक है और 'हंस-संदेश' तथा 'नल का दुस्तर दूत-कार्य' :

विवरणात्मक। यहाँ यह बात ध्यान रखने की है कि इनके निबन्धों में जानकारी अधिक रहती है, इनकी रचनाओं को पढ़कर ऐसा लगता है कि एक आचार्य शिष्य-मण्डली को पढ़ा रहा है।

माधवप्रसाद मिश्र भारतीय संस्कृति, धर्म-दर्शन, साहित्य कला के सच्चे उपासक थे। इनका अपना व्यक्तित्व था। यदि ये किसी को भारतीय और प्राचीन साहित्य का गौरव घटाने का प्रयत्न करते हुए पाते थे, तो उनकी आलोचना करते थे। आचार्य द्विवेदी और श्रीधर पाठक की भी उन्होंने निर्भय आलोचना की थी। इनकी भाषा निर्दोष, साफ-सुथरी, विषयानुकूल, व्यंग्यात्मक और प्रभावशाली है। संस्कृत का प्रभाव उन पर स्पष्ट है। इनके लिखे 'धृति', 'क्षमा', 'श्री वैष्णव सम्प्रदाय', 'काव्यालोचना', 'वेबर' का भ्रम' : विचारात्मक और 'सब मिट्टी हो गया' : भावात्मक निबन्ध हैं। भारतेन्दु युग की यह परम्परा मिश्र जी के निबन्धों के साथ ही समाप्त हो गई।

अध्यापक पूर्णसिंह इस युग के सबसे प्रमुख, भावुक और विचारक निबन्धकार हैं। इससे अधिक गौरव की बात और क्या होगी कि इन्होंने केवल छः निबन्ध लिखे और पिफर भी अपने समय के श्रेष्ठ लेखक माने गए। उनमें से प्रमुख हैं 'मजदूरी और प्रेम', 'आचरण की सभ्यता', और 'सच्ची वीरता'। अध्यापक जी के निबन्धों में प्रेरणा देने वाले नए-नए विचार हैं। इनकी भाषा बड़ी ही शक्तिशाली है। उसमें एक खास बाँकपन है जिससे भाव का प्रकाशन भी निराले ढंग से होता है। विषय भी ऐसे नए कि अब तक किसी को सूझे ही नहीं। साथ, ही इनमें भावुकता का माधुर्य भरा है। वीरता, आचरण, शारीरिक परिश्रम का जो महत्व उन्होंने समझाया, उसको ठीक समझा जाए तो आज धर्म का नया रूप सामने आ जाए। समाज में क्रांति हो जाए, मनुष्य और सारा देश उन्नति के शिखर पर पहुंच जाए। "जब तक जीवन के अरण्य में पादरी, मौलवी, पंडित और साधु-संन्यासी, हल कुदाल और खुरपा लेकर मजदूरी न करेंगे तब तक उनका आलस्य जाने का नहीं।" 'मजदूरी और प्रेम' का यह उद्धरण कितना महान् संदेश देता है। भाषा की लाक्षणिकता इनकी विशेषता है।

चन्द्रधर शर्मा गुलेरी भी स्वतंत्र विचारों के लिए प्रसिद्ध हैं। निबन्ध इन्होंने भी थोड़े ही लिखे। इनकी रचनाओं में भी जीवन को उठाने की प्रेरणा और नए विचारों का खजाना मिलता है। संस्कृत के महापण्डित होते हुए भी पुरानी लकीर पीटने वाले ये नहीं थे। प्राचीन धार्मिक कथाओं की ये वैज्ञानिक और बुद्धसम्मत व्याख्या करते थे। 'कछुआ धर्म' नामक निबंध भी गम्भीर तर्कपूर्ण, प्रभावशाली, विचार-प्रधान शैली इनकी विद्वता और तर्क-कुशलता का सुन्दर उदाहरण है।

गोविन्दनारायण मिश्र का नाम उनकी विचित्र अलंकारपूर्ण संस्कृत शब्दावली से लदी काव्यमय और बनावटी शैली के लिए लिया जा सकता है। आपको याद होगा भारतेन्दु-काल में 'प्रेमघन' जी भी इसलिए याद किए जाते हैं।

प्रसाद-युग

प्रसाद युग हिन्दी साहित्य का स्वर्ण काल है। क्या कविता, क्या गद्य दोनों का विकास इस काल में ऊँचे शिखर पर पहुंचा। कहानी, उपन्यास, नाटक, निबन्ध, आलोचना सभी का खूब विकास हुआ। वर्णन और विवरण प्रधान निबन्धों की रचना बहुत कम हुई, विचारात्मक और भावात्मक की अधिक। इन दोनों प्रकार के सर्वश्रेष्ठ निबन्ध इसी युग में लिखे गए। विचारात्मक निबन्धकारों में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और भावात्मक निबन्धकारों में डॉ. रघुवीर सिंह, सिरमौर हैं। गुलाबराय, वासुदेवशरण अग्रवाल, शांतिप्रिय द्विवेदी, माखनलाल चतुर्वेदी, वियोगी हरि और रायकृष्णदास का नाम भी उल्लेखनीय है।

गुलाबराय जी के सामने द्विवेदी-युग का सारा साहित्य-भण्डार था। इनके साहित्य का बहुत कुछ रंग द्विवेदी-युग का रहा। यह निबन्धकार पहले हैं, आलोचक बाद में। 'पिफर निराशा क्यों? 'मेरी असफलताएं', 'अंधेरी कोठरी' इनके निबन्ध संग्रह हैं। 'मेरी असफलताएं' आत्मपरक या वैयक्तिक व्यंग्यात्मक निबन्धों का संग्रह है। शेषदोनों संग्रहों में विचारात्मक निबन्ध हैं। अन्तिम संग्रह मनोवैज्ञानिक निबन्धों का है। आपकी भाषा बड़ी सरल और सुबोध होती है। विचारात्मक और मनोवैज्ञानिक निबन्धों तक में भाषा या भाव की उलझन नहीं मिलेगी।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का निबन्ध-संग्रह 'चिन्तामणि' भारतीय साहित्य में ही नहीं, विश्व-साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। विचारात्मक निबन्धों में शुक्ल जी के निबन्ध सर्वश्रेष्ठ हैं। इनमें विचारों की बारीकी और गंभीरता, भावों की मनोवैज्ञानिकता, भाषा का गठन और उसकी शक्ति आदि आदर्श हैं। 'चिन्तामणि' में 'क्रोध', 'ईर्ष्या', 'लोभ और प्रीति', 'उत्साह', 'श्रद्धाभक्ति', 'भय', 'करुणा', 'घृणा', 'लज्जा' और 'ग्लानि' आदि विषयों पर लिखे निबन्ध मानसिक भावों, वृत्तियों और विचारों से सम्बन्ध रखते हैं। 'कविता क्या है?' 'साधारणीकरण और व्यक्तिवैचित्रय' साहित्यिक व्याख्या और विश्लेषण सम्बन्धी हैं और 'तुलसीदास का भक्ति मार्ग', 'मानस की धर्म-भूमि' आदि साहित्य-समीक्षा-सम्बन्धी। 'मित्रता' और 'प्राचीन भारतीयों का पहरावा' परिचयात्मक वर्णनात्मक निबन्ध हैं।

मनोभावों या चित्तवृत्तियों का विवेचन करते हुए वे राजनीति, समाजनीति, धर्म, पारस्परिक व्यवहार आदि पर भी यह अपने मौलिक विचार प्रकट करते चलते हैं। इन निबन्धों की शैली में लेखक का गहन ज्ञान और गम्भीर व्यक्तित्व प्रकट होता है। थोड़े शब्दों में बड़ी से बड़ी बात कहने की शक्ति इनमें है। जो उच्च स्थान इनका आलोचक के रूप में है, वही निबन्धकार के रूप में भी है। लोक मंगल की भावना भी इनके निबन्धों की प्रमुख विशेषता है।

छायावाद-युग के कवियों ने भी कुछ रेखाचित्र, संस्मरण और ललित निबन्धों की सम्मिश्रित विधा में रचनाएं की हैं। ऐसी रचनाओं में महादेवी वर्मा की ये पुस्तकें उल्लेखनीय मानी जाती हैं : 'स्मृति की रेखाएँ', 'अतीत के चलचित्र' तथा 'शृंखला की कड़ियां'। इनके अतिरिक्त गम्भीर विचारपूर्ण निबन्धों के लेखक सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'को भी नहीं भुलाया जा सकता। उसके तीन निबन्ध-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। 'पृथिवी पुत्र' में आपने एक स्थान पर कहा है : "विदेशी विचारों को मस्तिष्क में भर कर उन्हें अधपके ही बाहर उंडेल देने से किसी साहित्य का लेखक लोक में चिर जीवन नहीं पा सकता। हिन्दी साहित्यकारों को अपनी खुराक भारत की सांस्कृतिक और प्राकृतिक भूमि से प्राप्त करना चाहिए।" ये भारतीयता के पुजारी और पक्ष-पोषक थे। 'कला संस्कृति' में प्राचीन और नवीन

भारतीय ऋषियों, दार्शनिकों, कवियों और कलाकारों के विषय में निबन्ध हैं। इन्होंने ‘समुद्र-मंथन’, ‘कल्पवृक्ष’ आदि की व्याख्या नवीन वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक ढंग से की है। आपके सभी निबन्ध विचारात्मक हैं।

निबन्ध-लेखकों में शांतिप्रिय द्विवेदी को भी नहीं भुलाया जा सकता। ‘संचारिणी’, ‘सामयिकी’, ‘पदचि”’ ‘युग और साहित्य’, ‘परिव्राजक की प्रथा’ इनकी पुस्तकें हैं। गांधीवादी नैतिकता और छायावादी भाषा रचनाओं की विशेषता है। ‘धरातल’ में आप अपने को समाजवाद का हिमायती बताते हैं। इस संग्रह में जीवन की समस्याओं का भौतिक समाधान खोजा गया है। विचारात्मक और भावात्मक दोनों प्रकार के निबन्ध उन्होंने लिखे हैं। हिन्दी निबन्ध-साहित्य को इनकी देन है इनके वैयक्तिक निबन्ध। इस क्षेत्र में यह अद्वितीय है। अपने माता-पिता-बहन के जो चित्र इन्होंने खींचे हैं उनमें करुणा की नमी है और हृदय को स्पर्श करने वाली सच्चाई। इनके ये अनुपम वैयक्तिक निबन्ध ‘पदचि”’ और ‘परिव्राजक की प्रथा’ में संगृहीत हैं। आप काव्यमय, कोमल-कान्त भाषा का प्रयोग करते हैं।

डॉ. रघुवीर सिंह, माखनलाल चतुर्वेदी, रायकृष्ण दास, वियोगी हरि आदि ने भावात्मक निबन्ध लिखे। रघुवीर सिंह और माखनलाल जी के निबन्ध काफी बड़े हैं, शेष दोनों के बहुत छोटे-छोटे एक डेढ़ पृष्ठ के। इनके निबन्धों की शैली अन्य निबन्धकारों की शैली से भिन्न हैं : छोटे-छोटे वाक्य, कहीं खण्डित, कहीं अपूर्ण। आश्चर्य, शोक, करुणा, प्रेम का आवेश इसमें उमड़ता सा दिखता है, ऐसी रचनाओं को हिन्दी गद्यकाव्य का नाम दिया गया है। हम इन्हें निबन्ध मानते हैं। गद्य-काव्य के भीतर तो कहानी, नाटक, उपन्यास, शब्दचित्र, निबन्ध, आलोचना, सभी कुछ सम्मिलित हैं।

रघुवीर सिंह इतिहास के विद्वान हैं। मुगलकालीन घटनाओं, इमारतों, चरित्रों को लेकर इन्होंने ‘अतीत स्मृति’ और ‘शेष स्मृतियाँ’ दो पुस्तकें लिखी। वैसे तो इन निबन्धों में वर्णन और विवरण है, पिफर भी ये भावात्मक हैं। क्योंकि लेखक ने इनमें वर्णन को महत्व नहीं दिया, इनको देखकर अपने हृदय में उठने वाले भावों को ही प्रकाशित किया है।

माखनलाल जी ने विचार-प्रधान निबन्धों को भी भावात्मक शैली में लिखा। 'युग और कला', 'साहित्य देवता', 'रंगों की बोली', 'व्यक्तित्व' आदि निबन्ध : कला, साहित्य, चित्रकला और व्यक्तित्व विषयों पर हैं, ये विचारात्मक हो सकते हैं। लेकिन विचार भी प्रभावात्मक ढंग से दिये गये हैं। लेखक की मुग्धता, श्रद्धा, करुणा, सहानुभूति ही इसमें प्रकट हुई है।

वियोगी हरि और रायकृष्णदास जी की रचनाओं में भक्ति, प्रेम, विस्मय, पश्चाताप, आत्म-निवेदन, मनोमुग्धता, करुणा, संवेदना आदि अनेक भाव और भावना प्रकट हुई हैं। 'भावना' और 'अन्तर्नाद' वियोगी हरि की और 'साधना' रायकृष्ण दास की पुस्तक है। इन सभी निबन्धकारों ने उर्दू शब्दों का भी यथावसर प्रयोग किया है।

प्रसादोत्तर युग

प्रसादोत्तर या प्रगतियुग में निबन्ध-साहित्य ने सबसे अधिक विकास किया। विषयों की संख्या और विविधता की दृष्टि से तो इस युग का मुकाबला ही नहीं। यह युग उथल-पुथल का युग है। दूसरा विश्वयुद्ध हुआ, समाजवादी विचारों का आगमन हुआ। भारत स्वतंत्र होकर विभाजित हुआ। प्राचीन साहित्य, संस्कृति और कला की ओर हमारा ध्यान गया। अनेक आर्थिक एवं सामाजिक समस्याएं भी पैदा हुईं। इन सब बातों की छाया निबन्धों में भी मिलती है। इस युगके चार निबन्धकार विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। : आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, जैनेन्द्र कुमार भवन्त आनन्द कौशल्यायन तथा यशपाल।

कौसल्यायन जी बौद्धभिक्षु थे और समाजवादी विचारों का इन पर बहुत प्रभाव था। निबन्ध तो इन्होंने बहुत नहीं लिखे, पर पृथक् विषय की दृष्टि से इनका महत्व है। 'जो न भूल सका' इनके संस्मरणात्मक निबन्धों का संग्रह है, जिनमें सामाजिक विषमता, धार्मिक शोषण, आर्थिक उत्पीड़न के तीखे चित्र हैं। धर्म को यह शोषण का संगठित साधन बताते हैं और अमीरों के भवनों को गरीबों की हड्डियों की ईंटों और खून के चूने से बना मानते हैं। जनवादी लेखक होने से इनकी भाषा सरल है।

प्रगतिवादी निबन्ध-साहित्य में यशपाल बेजोड़ हैं। इनके ये निबन्ध-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं : 'चक्कर क्लब', 'न्याय का संघर्ष, 'गांधीवाद की शव परीक्षा', 'देखा, सोचा, समझा', 'बात में बात', 'राम-राज्य की कथा' इन सभी पुस्तकों के नामों से भी पता चलता है कि ये समाजवाद के समर्थक ही नहीं, प्रचारक भी हैं। पुरानी परम्पराओं, समाज के ढांचे, धर्म की बुनियादों पर उन्होंने बड़े जोश के साथ वार किए हैं। इनका विश्वास है कि पुराने दर्शन और संस्कृति, मानव की उन्नति में रोड़े हैं। इसलिए इनका विरोध यह निडर होकर करते हैं। वर्तमान समाज में धन के गलत बंटवारे के कारण कोई राजा बन गया और कोई गुलाम। वे कहते हैं कि 'मानव की घृणा', मानव से मानव की शत्रुता, मानव द्वारा मानव का शोषण और अपमान तभी दूर हो सकेगा, जब सबको अपने परिश्रम का फल मिले, विकास का अवसर प्राप्त हो।" सभ्यता, संस्कृति, कला, साहित्य, समाज सभी के विषय में इन्होंने अपने मौलिक विचार प्रकट किए। विविधता की दृष्टि से इन्होंने हिन्दी निबन्ध-साहित्य को धनी बताया है।

जैनेन्द्र कुमार शुद्ध रूप से विचारक हैं। धर्म, युद्ध, न्याय, राष्ट्रीयता, दान की बात, दीन की बात, पैसा कमाई और भिखाई, गांधीवाद का भविष्य, रोटी का मोर्चा, संस्कृति की बात, उपवास और लोकतंत्र, दुःख, सत्यं शिवं सुन्दरं, साहित्य की सच्चाई, प्रगतिवाद, जड़चेतन, सम्पादकीय मैटर-इनके इन निबन्धों से विषय की विविधता का तो पता चलता ही है, यह भी पता चलता है कि लेखक समाज, साहित्य, धर्म, राजनीति, जीवन की यथार्थ उलझनों आदि किसी से भी बेखबर नहीं। इनके ये निबन्ध-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं : 'जड़ की बात', पूर्वोदय', 'जैनेन्द्र के विचार' 'इतस्ततः'। इनके निबन्धों की विशेषताएं हैं : गांधीवाद, नैतिकता, संस्कृति-प्रेम, मौलिक विचार, स्वतंत्रता और सबल, संक्षिप्त गठी हुई शैली। व्यक्तित्व और शैली को निबन्ध का प्राण मानें, तो जैनेन्द्र जी एक महान लेखक हैं। भाषा सरल, हाट-घाट-बाट की है, लेकिन उसमें अर्थ गजब का मिलेगा। इनकी शैली के लिए कुछ अवतरण देखिए :

व्यवस्था का दल कागजी है।
काम उसके दफ्रतरी है।

मत पता लगने दो कि नीचे जान है।
दिलेरी डर से पैदा होती है।
उस नीयत का मुंह बाहर चाहे न दीखता हो, पेट में छिपी उसकी जड़ है जरूर।

निबन्धकारों में राहुल सांकृत्यायन का नाम भी महत्वपूर्ण है। इनके निबन्ध देश-दशा, राजनीति, यात्रा-वृत्तान्त तथा इतिहास को लेकर ही होते हैं। देश-दशा और राजनीति से सम्बन्धित निबन्धों के एक संग्रह का नाम है : 'तुम्हारा क्षय'। इस संग्रह के सभी निबन्धों का निष्कर्ष यह है कि जो रूढ़िवादी है, जो रास्ता रोककर खड़े हैं, उनका क्षय हो। इनके कुछ संस्मरणात्मक निबन्धों के संग्रह ये हैं बचपन की स्मृतियां, जिनका मैं कृतज्ञ, मेरे असहयोग के साथी, राहुल जी का अपराध आदि। राहुल जी के असली व्यक्तित्व और निबन्धकार की आत्मा का यदि दर्शन करना हो तो उनका 'घुमक्कड़ शास्त्र' पढ़ना चाहिए।

राहुल जी जैसी मस्ती और जैनेन्द्र कुमार जैसी शैली की झलक कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' के निबन्धों में मिलती है। इनके निबन्धों के 6 संग्रह हैं : 'जिन्दगी मुस्कराई', 'आकाश के तारे', 'धरती के फूल', 'दीप जले' 'शंख बजे', 'माटी हो गयी सोना', 'महके आंगन, चहके द्वार' तथा 'बूँद-बूँद सागर लहराया'।

आधुनिक निबन्धकारों में विद्यानिवास मिश्र का नाम उल्लेखनीय है। इन्होंने अधिकतर ललित निबन्ध लिखे हैं। इन निबन्धों में कविता और पाण्डित्यपूर्ण शास्त्र का आनन्द एक साथ मिलता है। इनके तीन निबन्ध संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं : (1) छितवन की छाँह, (2) कदम की फूली डाल तथा (3) तुम चन्दन हम पानी। नये निबन्धकारों में प्रभाकर माचवे, नामवर सिंह, हरिशंकर परसाई, श्रीनिधि सिद्धान्तालंकार, शरद जोशी, श्री लाल शुक्ल आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। प्रभाकर माचवेके निबन्धों के संग्रह का नाम है : 'खरगोश के सींग' और नामवर सिंहका निबन्ध-संग्रह है : बकलम-खुद'। हरिशंकर परसाई के व्यंग्य-विनोदपूर्ण निबन्धों में मस्ती और जान है। 'भूत के पाँव' 'सदाचार का ताबीज' और 'निठल्ले की डायरी' में उनके व्यंग्य लेख संग्रहीत हैं। विद्या निवास मिश्र का 'छितवन की छाह', 'तुम चन्दन हम पानी', 'आंगन का पंछी' 'बनजारामन'

और 'मेरे राम का मुकुट' भीग रहा है', कुबेर नाथ राय का 'प्रिया-नीलकंठी', 'गन्ध मादन', 'माया बीज', विवेकी राय का 'आम रास्ता नहीं है', 'देवेन्द्र सत्यार्थी का 'एक युग का प्रतीक' हरिशंकर परसाई का 'शिकायत मुझे भी है' हरीशनवल का 'बागपत के खरबूजे आदि प्रसिद्ध निबन्ध संकलन हैं।

हिन्दी निबन्ध लेखन की परम्परा अत्यन्त समृद्ध है लेकिन इधर कुछ वर्षों में इस क्षेत्र में नये लेखकों का आगमन बहुत कम हुआ है। ललित भावात्मक, विचारात्मक निबन्ध लेखन की प्रवृत्ति कम हुई है और जो लिख भी रहे हैं वे पुराने पीढ़ी के ही लेखक हैं। नये लेखकों की निबन्ध लेखन की ओर से यह उदासीनता अत्यन्त चिन्ताजनक है।

हिन्दी निबन्ध का जन्म भारतेन्दु-काल में हुआ। यह नवजागरण का समय था। भारतीयों की दीन-दुखी दशा की ओर लेखकों का बहुत ध्यान था। पुराने गौरव, मान, ज्ञान, बल-वैभव को पिफर लाने का प्रयत्न हो रहा था। लेखक अपनी भाषा को भी हर प्रकार से सम्पन्न और उन्नत करने में लग गए थे, और सबसे बड़ी बात यह थी कि इस काल के लेखक स्वतंत्र विचारों के थे। उनमें अक्खड़पन और फक्कड़पन भी था। ऐसा युग निबन्ध के बहुत अनुकूल होता है, इसलिए इस युग में जितने अच्छे निबन्ध लिखे गये उतने अच्छे नाटक, आलोचना, कहानी आदि नहीं लिखे गए।

## *10.6 प्रमुख निबंधकार की रचनाएँ*

### सरदार पूर्ण सिंह

- **जीवनी**: निबंधकार एवं कवि पूर्णसिंह (प्रभात शास्त्री)
- **प्रमुख निबंध**:
  - सच्ची वीरता
  - कन्या-दान
  - पवित्रता
  - आचरण की सभ्यता

- मजदूरी और प्रेम
- अमेरिका का मस्त जोगी वाल्ट व्हिटमैन

**आचार्य रामचन्द्र शुक्ल**

- **ग्रंथ**: चिंतामणि
- **प्रमुख निबंध**:
  - भाव या मनोविकार
  - उत्साह
  - श्रद्धा-भक्ति
  - करुणा
  - लज्जा और ग्लानि
  - लोभ और प्रीति
  - घृणा
  - ईर्ष्या
  - भय
  - क्रोध
  - कविता क्या है?
  - भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
  - तुलसी का भक्ति-मार्ग
  - 'मानस' की धर्म-भूमि
  - काव्य में लोक-मंगल की साधनावस्था
  - साधारणीकरण और व्यक्ति-वैचित्र्यवाद
  - रसात्मक बोध के विविध रूप

**भारतेन्दु हरिश्चंद्र**

- **प्रमुख निबंध**:
  - एक अद्‌भुत अपूर्व स्वप्न

- भारतवर्षोन्नति कैसे हो सकती है?
- वैष्णवता और भारतवर्ष

**महादेवी वर्मा**

- **प्रमुख निबंध**:
  - हमारी श्रृंखला की कड़ियाँ (भाग 1-2)
  - युद्ध और नारी
  - नारीत्व का अभिशाप
  - आधुनिक नारी
  - घर और बाहर (भाग 1-2-3)
  - हिंदू स्त्री का पत्नीत्व
  - जीवन का व्यवसाय (भाग 1-2)
  - स्त्री के अर्थ स्वातंत्र्य का प्रश्न (भाग 1-2)
  - हमारी समस्याएँ (भाग 1-2)
  - समाज और व्यक्ति
  - जीने की कला
  - करुणा का सन्देशवाहक
  - संस्कृति का प्रश्न
  - कसौटी पर
  - स्वर्ग का एक कोना
  - कला और हमारा चित्रमय साहित्य

**सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'**

- **प्रमुख निबंध**:
  - साहित्य और भाषा
  - सोयी हुई जातियाँ पहले जगेंगी

**जैनेन्द्र कुमार**

- **प्रमुख निबंध**:
    - बाजार का जादू
    - बाजार-दर्शन
    - इतस्तत:
    - उपन्यास में वास्तविकता (आलोचनात्मक निबंध)

**सुमित्रानंदन पंत**

- **प्रमुख निबंध**:
    - कवि के स्वप्नों का महत्त्व
    - ग़ालिब
    - मैं क्यों लिखता हूँ

**हजारीप्रसाद द्विवेदी**

- **प्रमुख निबंध**:
    - अशोक के फूल
    - अंधकार से जूझना है
    - आपने मेरी रचना पढ़ी?
    - आम फिर बौरा गए
    - कुटज
    - घर जोड़ने की माया
    - देवदारु

## *10.7 सार संक्षेप*

निबंध हिन्दी गद्य साहित्य का एक आधुनिक रूप माना जा सकता है। आधुनिक निबंध का संबंध निबंधों की परम्परा से जोड़ना उचित नहीं होगा। निबंध का आधुनिक रूप अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव से विकसित हुआ है। इसके प्रचार और प्रसार में पत्र-पत्रिकाओं का विशेष हाथ रहा है। निबंध साहित्य के प्रारंभिक इतिहास में हम प्रायः पत्रकारों को ही अग्रण्य मानते हैं। जैसे 'हिन्दी

प्रदीप' के पं. बालकृष्ण भट्ट, 'कविवचन सुधा' और 'आनन्द कादम्बिनी 'के पं. बदरीनारायण चौधरी, 'ब्राह्मण' के पं. प्रताप नारायण मिश्र, 'हिन्दुस्तान' के श्री बालमुकुन्द गुप्त, 'सुदर्शन' के पं. माधव मिश्र ही प्रमुख थे। इसमें कोई संदेह नहीं कि हिन्दी में जिस प्रकार की गद्य रचना के लिए आज हम निबंध शब्द का प्रयोग करते हैं, भारतेन्दु युग से पूर्व हमें उसके दर्शन नहीं होते। 'रानी केतकी की कहानी' अथवा 'राजाभोज का सपना' आदि गद्य रचनाओं को आधुनिक अर्थों में निबंध नहीं कहा जा सकता है।

## *10.8 मुख्य शब्द*

1. **भावात्मक**:
   यह शब्द भावनाओं से संबंधित है। इसका अर्थ है जो मनुष्य के हृदय में उत्पन्न होने वाले विभिन्न भावों (जैसे प्रेम, करुणा, क्रोध, उत्साह आदि) से जुड़ा हुआ हो। यह किसी विचार, अनुभव या स्थिति के प्रति गहरे भावनात्मक जुड़ाव को दर्शाता है।
2. **जीवंत**:
   इसका अर्थ है सजीव, प्राणवान, या ऊर्जा से भरा हुआ। यह किसी ऐसी चीज़ या स्थिति को दर्शाता है जो उत्साह और गतिशीलता से भरपूर हो और जिसमें जीवन की सक्रियता झलके।
3. **आस्था**:
   आस्था का अर्थ है विश्वास, श्रद्धा या भरोसा। यह किसी विचार, धर्म, व्यक्ति, या शक्ति पर अटूट विश्वास और निष्ठा को प्रकट करता है। इसे मानसिक और आध्यात्मिक सहारा देने वाली शक्ति के रूप में भी देखा जाता है।
4. **अग्रणीय:** जो सर्वोपरि, प्रमुख या अग्रणी हो।
5. **परंपरा:** इसका अर्थ है सांस्कृतिक, सामाजिक या धार्मिक रीति-रिवाजों, मान्यताओं और प्रथाओं की धारा जो पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ती है।

इस प्रकार, अग्रणीय परंपरा का अर्थ हुआ ऐसी परंपरा जो सर्वोच्च स्थान रखती हो और अन्य परंपराओं का नेतृत्व करती हो।

## *10.9 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर*

प्रगति की जांच

1. उत्तर - बाँधना
2. उत्तर - अंग्रेजी
3. उत्तर - वर्णनात्मक
4. उत्तर - चिंतनात्मक

## *10.10 संदर्भ सूची*


1. द्विवेदी, अ. ह. (2020). *निबंध और उसकी विकास यात्रा.* हिंदी साहित्य अकादमी।
2. कुमार, र. (2021). *निबंध की विधाएँ और उनका सामाजिक परिप्रेक्ष्य.* राष्ट्रीय पुस्तक न्यास।
3. शर्मा, स. (2022). *हिंदी निबंध के अंतरराष्ट्रीय प्रभाव.* प्रगति प्रकाशन।
4. पांडे, म. (2023). *निबंध: इतिहास और समर्थन.* साहित्य अकादमी।
5. यादव, स. (2024). *नई दृष्टि से निबंध का विकास.* वाणी प्रकाशन।


## *10.11 अभ्यास प्रश्न*

1. हिंदी निबंध के उद्‌भव एवं विकास को लिखिए
2. निबंध की अवधारणा एवं प्रकार को स्पष्ट कीजिए
3. भारतेंदु युग के प्रमुख निबंधकारों का वर्णन कीजिए

# इकाई - 11
# अन्य गद्य विधाएँ - I

11.1 प्रस्तावना
11.2 उद्देश्य
11.3 रेखा चित्र
11.4 संस्मरण
11.5 आत्मकथा
11.6 सार संक्षेप
11.7 मुख्य शब्द
11.8 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर
11.9 संदर्भ सूची
11.10 अभ्यास प्रश्न

## *11.1 प्रस्तावना*

गद्य साहित्य के विस्तृत संसार में अनेक विधाएँ अपनी अनोखी पहचान रखती हैं। इनमें रेखाचित्र, संस्मरण, आत्मकथा, और अन्य गद्य विधाएँ साहित्य को जीवन के विभिन्न रंगों और अनुभवों से समृद्ध करती हैं। ये विधाएँ व्यक्ति, समाज, और इतिहास के सूक्ष्म तथा सजीव चित्रण के माध्यम से पाठकों को भावनात्मक और बौद्धिक स्तर पर जोड़ती हैं।

रेखाचित्र में व्यक्तित्व और घटनाओं का सजीव वर्णन होता है, जो मानवीय संवेदनाओं और चरित्र की गहराई को उजागर करता है। संस्मरण हमें अतीत की स्मृतियों में ले जाते हैं, जिनमें लेखक के अनुभवों और दृष्टिकोण का अनूठा चित्रण मिलता है। आत्मकथा एक व्यक्ति के जीवन का आत्म-आख्यान है, जिसमें उसके विचार, संघर्ष, और उपलब्धियों का वर्णन होता है।

इन विधाओं की विशेषता यह है कि ये वास्तविकता और रचनात्मकता के अद्भुत संतुलन से रची जाती हैं। इनके माध्यम से पाठक केवल घटनाओं और तथ्यों को नहीं बल्कि जीवन की अनुभूतियों और उनके गहन अर्थ को भी समझने का प्रयास करता है।

इस इकाई में इन गद्य विधाओं का अध्ययन करते हुए न केवल उनकी विशेषताओं को समझा जाएगा, बल्कि उनके साहित्यिक और सामाजिक महत्व पर भी प्रकाश डाला जाएगा। यह अध्ययन पाठकों और छात्रों को इन विधाओं के प्रति रुचि और उनके साहित्यिक आयामों को जानने का अवसर प्रदान करेगा।

## *11.2 उद्देश्य*

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझ सकेंगे:

- अन्य गद्य विधाओं, जैसे रेखाचित्र, संस्मरण, तथा आत्मकथा से भली-भांति परिचित हो सकेंगे।
- रेखाचित्र और संस्मरण के स्वरूप एवं उनके विकास की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- आत्मकथा की मुख्य प्रवृत्तियों और इसके गद्य साहित्य में योगदान को समझ सकेंगे।

## *11.3 रेखा चित्र*

'रेखाचित्र' शब्द अंग्रेजी के 'स्केच' का समानार्थी है। इसका प्रयोग चित्रकला में होता है। जिस प्रकार कलाकार कुछ रेखाओं द्वारा सूक्ष्म भावों को मूर्त करके एक सजीव चित्र प्रस्तुत कर देता है, ठीक उसी प्रकार रेखाचित्र लेखक शब्दों द्वारा विभिन्न घटनाओं का सजीव चित्र उपस्थित कर देता है। रेखाचित्र में एक ही वस्तु, घटना अथवा चरित्र प्रधान होता है, जिससे सम्बन्धित प्रमुख विशेषताओं

को उभारा जाता है। इस सम्बन्ध में डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी लिखते हैं- "इस प्रकार कहानी और निबन्ध दोनों के तत्वों से युक्त होते हुए भी रेखाचित्र का अपना अलग अस्तित्व है। इसमें जीवन का सम्पूर्ण चित्र न होकर एकांगी चित्र ही होता है। सफल रेखाचित्रों का लेखक वहीं हो सकता है, जिसने जीवन को भोगा हो, उसे निकट से देखा हो और उसकी गहराइयों में उतरकर उसका सूक्ष्म निरीक्षण किया हो। रेखा चित्रकार के लिए एक सहृदय, संवेदनशील किन्तु तटस्थ दृष्टि का होना बहुत आवश्यक है। सफल रेखाचित्र लेखक में चित्रण की बारीकी और विश्लेषण की सूक्ष्मता का होना भी जरूरी है।

**परिभाषा एवं स्वरूप**

विभिन्न विद्वानों ने रेखाचित्र की लगभग एक ही प्रकार की परिभाषा दी है। 'प्रकीर्णिका' के सम्पादकों ने रेखाचित्र को पारिभाषित करते हुए लिखा है- "जब लेखक अपने सम्पर्क में आये

व्यक्ति, सान्निध्य में आयी वस्तु अथवा देखी-भोगी घटना का यथा-तथ्य चित्रण शब्द रेखाओं के माध्यम से करता है, तो उसे रेखाचित्र कहते हैं।"

इसके लिए संस्मरणात्मक शैली के अतिरिक्त दो बातें आवश्यक होती हैं-

1. चित्र-विधायी भाषा का प्रयोग, 2. संवेदना उभारने वाली मार्मिक शैली ।

श्रीमती महादेवी वर्मा अपने विचारों को इस प्रकार व्यक्त करती है- " 'रेखाचित्र' शब्द चित्रकला से साहित्य में आया है, परन्तु अब यह शब्द-चित्र के स्थान में रूढ़ हो गया है।" चित्रकार अपने सामने रखी वस्तु या व्यक्ति का रंगहीन चित्र जब कुछ रेखाओं में इस प्रकार आँक देता है कि उसकी विशेष मुद्रा पहचानी जा सके, तब उसे हम 'रेखाचित्र' की संज्ञा देते हैं। साहित्य में भी साहित्यकार कुछ शब्दों में ऐसा चित्र अंकित कर देता है जो उस व्यक्ति या वस्तु का परिचय दे सके, परन्तु दोनों में अन्तर है।

चित्रकार चाक्षुष प्रत्यक्ष के आलोचक में बैठे हुए व्यक्ति का रेखाचित्र आँक सकता है, कभी कहीं देखे हुए व्यक्ति का रेखाचित्र अंकित नहीं हो पाता और दीर्घकाल

के उपरान्त अनुमान से भी ऐसे चित्र नहीं आँके जाते। इसके विपरीत साहित्यकार अपना शब्द-चित्र दीर्घकाल के अन्तराल के उपरान्त भी अंकित कर सकता है। उसने जिसे कभी नहीं देखा हो, उसकी आकृति, मुख-मुद्रा आदि को शब्द में बाँध देना कठिन नहीं होता। शब्द के लिए जो सहज है वह रेखाओं के लिए कठिन है। 'रेखाचित्र' वस्तुतः अंग्रजी के 'पोट्रेट पेन्टिंग' के समान है पर साहित्य में आकर इस शब्द ने बिम्ब और संस्मरण दोनों का कार्य सरल कर दिया है।

इसे और अधिक स्पष्ट करते हुए डॉ. रामचन्द्र तिवारी लिखते हैं- "रेखाचित्र में किसी व्यक्ति, वस्तु या सन्दर्भ का अंकन किया जाता है। यह अंकन पूर्णतः तटस्थ भाव से निर्लिप्त रहकर किया जाता है। रेखाचित्र में रेखाएं बोलती हैं। कुछ थोड़ी-सी रेखाओं का प्रयोग करके रेखा चित्रकार किसी व्यक्ति या वस्तु को उसकी मूलभूत विशेषता के साथ सजीव कर देता है। रेखांकन करते समय वह अपने को तटस्थ रखने की चेष्टा करता है। वस्तु को ही महत्व देता है। विषय को ही रूपायित करता है। । जब कभी उसकी तटस्थता भंग होती है तो त रंगों की चटक में रेखायें डूब जाती हैं।" संस्मरण, रेखाचित्र एवं आत्मचरित्र की एकता और घनिष्ठता का उद्घाटन करते हुए श्री बनारसीदास चतुर्वेदी लिखते हैं- "संस्मरण, रेखाचित्र और आत्मचरित्र इन तीनों का एक दूसरे से इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि एक की सीमा दूसरे से कहाँ मिलती है और कहाँ अलग हो जाती है, इसका निर्णय करना कठिन है।"

कहना न होगा कि संस्मरण और रेखाचित्र दोनों एक दूसरे के अति निकट हैं।

**रेखाचित्र के रूप विधायक तत्व**

रेखाचित्रों के निम्नलिखित रूप विधायक तत्व माने जाते हैं-

1. **यथार्थता-** इनमें जीवन की यथार्थ अनुभूतियों का चित्रांकन होता है।
2. **एकात्मकता-** ये एक ही व्यक्ति, वस्तु अथवा घटना पर आधारित होते हैं।
3. **चारित्रिक रेखाओं का उभार-** चित्रांकित व्यक्ति की आन्तरिक चारित्रिक विशेषताओं तथा बाह्य रूप-रंग आदि का चित्रांकन आवश्यक होता है।
4. **संवेदनाओं का उभार-** चित्रांकित पात्र के प्रति जाग्रत संवेदना रेखाचित्र को 'संस्मरण'से पृथक करती है।

**5. शैली-** इनमें मुख्यतः आलंकारिक, चित्रात्मक, कथात्मक या काव्यात्मक शैली ही प्रयुक्त होती है।

**6. उद्देश्य-** रेखातित्रकार का स्पष्ट उद्देश्य चित्रित व्यक्ति, वस्तु घटना को मूर्तिमान करते हुए पाठक के मन पर अपनी रमणीयता से अमिट छाप छोड़ना होता है।

**हिन्दी में रेखाचित्र का उद्भव एवं विकास**

हिन्दी के प्रारम्भिक काल में रेखाचित्र नाम से कोई रचना विधा दृष्टिगोचर नहीं होती है, किन्तु इस रचनाकाल में भी इसके मूलभूत तत्वों को ढूंढा जा सकता है। उदाहरण के लिए चन्दवरदायी के 'पृथ्वीराजरासो', जायसी के 'पद्मावत', तुलसीदास के 'रामचरित मानस', देव, बिहारी, मतिराम आदि के श्रृंगारिक वर्णनों में रेखाचित्र के अनेक चित्र उपलब्ध है। जयशंकर प्रसाद की 'कामायनी' पंत की 'ग्राम्या'और निराला की 'परिमल' आदि रचनाओं में भी आधुनिक रेखाचित्र के जागृत अंश प्राप्त होते हैं। भारतेन्दु-युग में लिखे गए निबन्धों में रेखाचित्रों का आभास मात्र होता है। इस युग के अन्त में पाश्चात्य गद्य साहित्य से हिन्दी साहित्य प्रभावित होने लगा था। पाश्चात्य गद्य साहित्य में चार्ल्स डिकेन्स के 'स्केचेज वाइबाज', गाल्र्सवर्दी के 'पोट्रेट'तथा गोर्की, चेखब आदि के 'स्केचेज 'को बहुत मान्यता मिली। इन्हीं स्केचों के प्रभाव से हिन्दी साहित्य में रेखाचित्रों का उद्भव हुआ है। हिन्दी में इस विद्या का जनक पद्मसिंह शर्मा को माना जाता है। सन् 1929 में उनका संग्रह 'पद्म पंराग'शीर्षक से प्रकाशित हुआ, जिसमें निबन्धों के साथ ही रेखाचित्र भी थे। ये पूर्ण रेखाचित्र न होकर रेखाचित्रों की पृष्ठ-भूमि को प्रस्तुत करते हैं। स्वतंत्र रूप से 'रेखाचित्र 'का सूत्रपात करने का श्रेय पं. श्रीराम शर्मा को ही है। वास्तव में उन्हें ही प्रथम रेखाचित्रकार माना जाना चाहिए। पं. श्रीराम शर्मा का सन् 1937 में 'बोलती प्रतिमा' नामक संग्रह प्रकाशित हुआ, जिसमें 'ठाकुर की आन', 'रतन की अम्मा', 'वरदान' जैसे सफल रेखाचित्र अभिचित्रित हैं। सन् 1939 में निराला जी द्वारा विरचित 'कुल्लीभाट' तथा सन् 1941 में 'विल्लेसुर बकरिहा' जैसी अमर रचनाओं ने इस विधा के स्वरूप को भली प्रकार विकसित किया है। 'कुल्लीभाटे' में कुल्ली नामक भाट की चारित्रिक रेखाओं को उभारा गया है। यह एक 'लाइफ स्केच है। इस विधा के

विकास में महादेवी वर्मा का अविस्मरणीय योगदान रहा है। उनके संस्मरणों और रेखाचित्रों के बीच विभाजन रेखा खींचना कठिन है। 'स्मृति की रेखाएं' 'अतीत के चलचित्र' 'पथ के साथी' उनके महत्वपूर्ण संकलन है। 'रामा', 'बिन्दो', 'घीसा' 'पर्वत-पत्र', 'लछमा' आदि उनके अमर रेखाचित्र हैं। समाज के दीन-हीन और शोषित व्यक्तियों का जीवन इनमें साकार हो उठा है। उनके रेखचित्रों में भाव-प्रवीणता और कविता पूर्ण भाषा दर्शनीय है। बनारसीदास चतुर्वेदी ने समाज सेवियों साहित्यकारों से सम्बन्धित संस्मरणात्मक रेखाचित्रों की रचना करके रेखाचित्र के विकास में सर्वाधिक योगदान दिया है। उन्होंने उत्कृष्ट श्रेणी के लगभग 40 रेखाचित्रों की रचना की है। उन्होंने भूमिका के रूप में रेखाचित्र के रचना स्वरूपों का विस्तारपूर्वक प्रतिपादन किया है।

रेखाचित्र विधा को महत्व प्रदान करने में 'हंस'के रेखाचित्र विशेषांक (1939) और 'मधुकर के रेखाचित्र विशेषांक (1946) का विशेष योगदान रहा है। रामवृक्ष बेनीपुरी के आविर्भाव से रेखाचित्र का रूप चमक उठा। 'लाल तारा', 'माटी के मुरतें', 'गेहूं और गुलाब' तथा 'मील के पत्थर' आदि उनके कई महत्वपूर्ण संग्रह हैं। इनमें अधिकांशतः उपेक्षित लोगों के चित्र अंकित किए गये हैं।

इसके अतिरिक्त डॉ. प्रकाशचन्द्र गुप्त के 'पीपल', 'खंडहर', 'मिट्टी के पुतले', देवेन्द्र सत्यार्थी का 'रेखाएं बोल उठी', कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर का भले हुए चेहरे 'जगदीश चन्द्र माथुर का दस तस्वीरें, सत्यजीवन वर्मा का 'एलबम', राजाराधिकारमण सिंह के 'सावनी समाँ', 'टूट तारा' 'सूरदास' 'इन्द्रविद्या वाचस्पति का 'मैं इनका ऋणि हूं', विनोदशंकर व्यास का 'प्रसाद और उनके समकालीन' शिवचन्द्र नागर का 'महादेवी वर्मा और व्यक्तित्व', शान्तिप्रिय द्विवेदी का 'पथचिन्ह', डॉ.नगेन्द्र का चेतना के बिम्ब डॉ. रामविलास शर्मा का 'विरामचिन्ह', मच्छिन्द्रनाथ का 'धासावली' राहुल सांकृत्यायन का रूपी, हर्षदेव-मालवीय का 'पण्डित और प्रसाद' और चतुरसेन शास्त्री का 'वातायन' आदि उल्लेखनीय आर्कषक और मनोरम रेखाचित्र है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि थोड़े समय में ही हिन्दी साहित्य की इस विधा ने आशातीत सफलता प्राप्त की है। आज यह विधा रंग-रूप में किसी से कम नहीं है। इस विधा के सभी रूप श्रीराम शर्मा, बेनीपुरी तथा महादेवी वर्मा के

रेखाचित्रों में दृष्टिगोचर होते हैं। आज भी इस विधा में सृजन हो रहा है। अतः इसका भविष्य उज्जवल है।

स्वप्रगति परिक्षण

1. रेखाचित्र में लेखक द्वारा चित्रित व्यक्ति, वस्तु या घटना का _________ चित्रण किया जाता है।
2. रेखाचित्र में _________ और _________ का महत्वपूर्ण योगदान होता है।
3. पं. श्रीराम शर्मा को हिन्दी साहित्य में रेखाचित्र विधा का _________ माना जाता है।
4. महादेवी वर्मा के रेखाचित्रों में _________ और _________ की विशेषता देखने को मिलती है।

## *11.4 संस्मरण*

संस्मरण आधुनिक गद्य की एक महत्वपूर्ण विधा है। संस्मरण किसी स्वर्यमाण की स्मृति का शब्दांकन है। स्वर्यमाण के जीवन के वे पहलू, वे सन्दर्भ और वे चारित्रिक वैशिष्ट्य जो स्मरणकर्ता को स्मृत रह जाते हैं, उन्हें वह शब्दांकित करता है। स्मरण वही रह जाता है,जो महत्, विशिष्ट, विचित्र और प्रिय हो। स्वर्यमाण को अंकित करते हुए लेखक स्वयं भी अंकित होता चलता है। संस्मरण में विषय और विषयी दोनों ही रूपायित होते हैं। इसलिए इसमें स्मरणकर्ता पूर्णतः तटस्थ नहीं रह पाता। अपने स्वं का पूर्ण विसर्जन वह नहीं कर पाता। वस्तुतः वह स्वर्यमाण से सन्दर्भित अपने स्वं का पुनः सर्जन करता है।

इस प्रकार इस विद्या का जन्म तब होता है जब लेखक अपने सम्पर्क में आये व्यक्तियों, विगत घटनाओं, देखे हुए दृश्यों और संसर्ग में आयी वस्तुओं पर अपनी लेखनी चलाता है। संस्मरण में मुख्यतः निम्नलिखित तत्व होते हैं-

(1) भावुक कलाकार की अतीत की स्मृतियाँ। (2) स्मृतियों पर आधारित रमणीय अनुभूतियाँ। (3) कोमल कल्पना का रंग। (4) व्यंजनामूलक संकेत शैली का उपयोग। (5) रोचक ढंग से यथार्थ की अभिव्यक्ति। (6) लेखक के व्यक्तित्व की विशेषताओं का पुट।

**हिन्दी संस्मरण-साहित्य का विकास**

पद्मसिंह शर्मा और श्रीराम शर्मा हिन्दी के प्रारम्भिक संस्मरण लेखक है। श्रीराम शर्मा कृत सन बयालीस संस्मरण तथा बोलती प्रतिभा उल्लेखनीय रचनाएँ हैं। महादेवी वर्मा कृत अतीत के चलचित्र, स्मृति की रेखाएँपथ के साथी तथा संस्मरण आदि संस्मरण-संग्रह महत्वपूर्ण माने जाते हैं किन्तु यहाँ यह ज्ञातव्य है कि इनमें संस्मरण और रेखाचित्र दोनों विधाओं के लक्ष्य मिल-जुल गये हैं। रामवृक्ष बेनीपुरी की 'माटी की मूरतें', 'गेहूं और गुलाब' तथा 'झील के पत्थर' नामक संस्मरण-संग्रह अपना विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। शान्तिप्रिय द्विवेदी के ये पद-चिन्ह तथा परिब्राजक की प्रजा नामक संग्रहों में अत्यन्त रोचक संस्मरण मिलते हैं। कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर लिखित 'भूले हुए चेहरे, 'दीप जले शंख बजे' नामक संस्मरण-संग्रह प्रवाहपूर्ण एवं कलात्मक शैली में लिखे गये हैं। देवेन्द्र सत्यार्थी कृत क्या गोरी क्या साँवरी तथा रेखाएं बोल उठी के संस्मरण अपनी भावात्मक शैली के लिए प्रसिद्ध हैं। बनारसीदास चतुर्वेदी के मार्मिक संस्मरण 'हमारे आराध्य' तथा संस्मरण नामक संग्रहों में प्रकाशित हुए हैं। इलाचन्द जोशी कृत गोर्की के संस्मरण, श्री नारायण चतुर्वेदी कृत 'मनोरंजन संस्मरण', गुलाबराय कृत 'मेरी असफलताएं', राहुल सांस्कृत्यायन कृत 'बचपन की स्मृतियाँ, श्रीमती ललिता शास्त्री कृत 'मेरे पति मेरे देवता' तथा सेठ गोविन्ददास कृत 'महापुरुषों के साथ' आदि रचनाएं संस्मरण साहित्य की अमर निधि हैं। गत दो-तीन दशकों में अभिनन्दन ग्रन्थों की बाढ़-सी आयी है जिसमें अनेक लेखकों ने संस्मरण लेखन का आश्रय लिया है। इस प्रकार हिन्दी का संस्मरण-साहित्य आज समृद्ध है तथा इसका भविष्य भी उज्जवल है।

**निष्कर्ष**

प्रस्तुत विवेचन के आधार पर अन्त में डॉ. रामचन्द्र तिवारी के शब्दों में कह सकते हैं- "हिन्दी साहित्य में गद्य की नवीन आधुनिक विधाओं के विकास की सम्भावना इधर बढ़ती जा रही है। जितना ही हम जीवन की व्याप्ति को यथार्थ के स्तर पर ग्रहण करने की चेष्टा करेंगे उतना ही गा के नये रूपों और नयी विद्याओं के विकास का द्वार मुक्त होगा।"

## *11.5 आत्मकथा*

**आत्मकथा: स्वरूप और विकास**

आत्मकथा साहित्य की वह विधा है जिसमें लेखक अपने जीवन का वर्णन स्वयं करता है। यह व्यक्तिपरक होती है और लेखक के दृष्टिकोण को दर्शाती है। आत्मकथा और संस्मरण में अंतर यह है कि संस्मरण में लेखक समाज, परिस्थितियों और घटनाओं पर केंद्रित रहता है, जबकि आत्मकथा में लेखक स्वयं केंद्र में होता है। आत्मकथा में लेखक अपने जीवन के कुछ महत्वपूर्ण तथ्यों को छुपा सकता है या उनके वर्णन में स्वाभाविक रूप से बदलाव आ सकता है। पाठकों के लिए यह मनोरंजन और जानकारी का स्रोत होती है, लेकिन इतिहासकार इसे प्रमाणिक मानने से पूर्व अन्य स्रोतों से इसकी पुष्टि करते हैं।

**प्रथम चरण: प्रारंभिक आत्मकथाएँ (सत्रहवीं शताब्दी से 1876 तक)**

हिंदी में आत्मकथा लेखन का आरंभ सत्रहवीं शताब्दी में बनारसीदास की *अर्द्धकथानक* (1641 ई.) से हुआ। यह ब्रजभाषा में लिखी गई पद्यात्मक आत्मकथा अपनी बेबाक शैली के लिए जानी जाती है। इसके बाद लंबे समय तक इस विधा में सन्नाटा रहा, जिसे स्वामी दयानंद सरस्वती की *आत्मचरित* (1860) ने तोड़ा। इसके अलावा सीताराम सूबेदार की *सिपाही से सूबेदार तक* भी उल्लेखनीय है, हालांकि यह अपनी मूल हिंदी में अनुपलब्ध है।

**द्वितीय चरण: विकास और प्रयोग (1876-1946)**

आत्मकथा लेखन के दूसरे चरण की शुरुआत भारतेन्दु हरिश्चंद्र के आत्मकथात्मक लेख *एक कहानी: कुछ आपबीती, कुछ जगबीती* से मानी जाती है। इस दौर में पं. अंबिकादत्त व्यास की *निजवृत्तांत*, स्वामी श्रद्धानंद की *कल्याण-पथ का पथिक* और राधाचरण गोस्वामी की *राधाचरण गोस्वामी का जीवन चरित्र* जैसी कृतियाँ प्रकाशित हुईं।

1920 और 1930 के दशकों में भाई परमानंद की *मेरी राम कहानी*, रामप्रसाद बिस्मिल की *आत्मकथा*, और स्वामी श्रद्धानंद की *कल्याण मार्ग का पथिक* जैसी रचनाएँ सामने आईं। मुंशी प्रेमचंद ने 1932 में *हंस* पत्रिका में आत्मकथा अंक प्रकाशित कर इस विधा को आगे बढ़ाने में योगदान दिया। श्यामसुंदर दास की *मेरी आत्म कहानी* (1941) और राहुल सांकृत्यायन की *मेरी जीवन यात्रा* (1946) भी इस चरण की महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं।

**तृतीय चरण: स्वतंत्रता के बाद का काल (1947 से अब तक)**

1947 में डॉ. राजेंद्र प्रसाद की *आत्मकथा* ने इस विधा में नई धार दी। यह कृति लेखक के बचपन से लेकर सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तनों का सजीव चित्रण करती है। इसी दौर में स्वामी सत्यदेव परिव्राजक की *स्वतंत्रता की खोज में* और यशपाल की *सिंहावलोकन* जैसी आत्मकथाएँ प्रकाशित हुईं।

हरिवंश राय बच्चन की आत्मकथा के चार खंड- *क्या भूलूँ क्या याद करूँ*, *नीड़ का निर्माण फिर*, *बसेरे से दूर* और *दशद्वार से सोपान तक* हिंदी साहित्य में आत्मकथा लेखन के लिए मील का पत्थर साबित हुए।

दलित और महिला लेखकों ने भी आत्मकथा लेखन में महत्वपूर्ण योगदान दिया। मोहनदास नैमिशराय की *अपने-अपने पिंजरे*, ओमप्रकाश वाल्मीकि की *जूठन*, सूरजपाल चौहान की *तिरस्कृत*, तुलसीराम की *मुर्दहिया*, मैत्रेयी पुष्पा की *कस्तूरी कुंडल बसे* और रमणिका गुप्ता की *हादसे* और *आपहुदरी* इस विधा में विशेष उल्लेखनीय हैं।

आधुनिक आत्मकथाओं ने सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक बदलावों को दर्शाते हुए इस विधा को नए आयाम दिए हैं, जो पाठकों को आत्मान्वेषण और समाज की गहरी समझ प्रदान करते हैं।

## *11.6 सार संक्षेप*

खाचित्र, संस्मरण, और आत्मकथा जैसी गद्य विधाएँ साहित्य को जीवन के विविध अनुभवों से समृद्ध करती हैं। रेखाचित्र व्यक्तित्व और घटनाओं का सजीव चित्रण प्रस्तुत करता है, संस्मरण अतीत की स्मृतियों को उजागर करता है, और आत्मकथा व्यक्ति के जीवन का आत्म-आख्यान होती है। इन विधाओं में वास्तविकता और रचनात्मकता का संतुलन पाठकों को जीवन की गहराई समझने का अवसर देता है। इस इकाई में इन गद्य विधाओं की विशेषताओं और उनके साहित्यिक-सामाजिक महत्व का अध्ययन किया जाएगा।

## *11.7 मुख्य शब्द*

1. **प्राचीन काल**: बहुत पुराने समय की अवधि, जिसे इतिहास में मानव सभ्यता के आरंभिक दौर के रूप में देखा जाता है।
2. **भ्रमण**: यात्रा करना या इधर-उधर घूमना।
3. **स्मरण कर्ता**: जो स्मरण करता है, अर्थात याद करता है।
4. **विसर्जन**: किसी वस्तु को त्यागना, समाप्त करना, या जल में प्रवाहित करना। यह पूजा या अनुष्ठान में मूर्ति विसर्जन के संदर्भ में भी प्रयुक्त होता है।
5. **विशिष्ट**: जो साधारण से अलग हो; विशेष, खास।

6. **प्रवाहपूर्ण**: जो बिना रुकावट के बहता हो या निरंतर गति में हो। यह भाषण या लेखन के संदर्भ में भी इस्तेमाल होता है, जैसे: "प्रवाहपूर्ण भाषा।"
7. **वैज्ञानिकता**: वैज्ञानिक दृष्टिकोण या आधार, जिसमें तर्क, प्रमाण, और विश्लेषण पर जोर दिया जाता है।
8. **जन्मजात**: जो जन्म से ही स्वाभाविक रूप से प्राप्त हो।
9. **शब्दांकन**: विचारों को शब्दों में ढालने की प्रक्रिया; शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्ति।

## *11.8 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर*

प्रगति की जांच

1. उत्तर - यथा-तथ्य
2. उत्तर - चित्र-विधायी भाषा, संवेदना उभारने वाली मार्मिक शैली
3. उत्तर - जनक
4. उत्तर - भाव-प्रवीणता, कविता पूर्ण भाषा

## *11.9 संदर्भ सूची*

1. शर्मा, आर. के. (2021). *रेखाचित्र और हिंदी साहित्य.* नई दिल्ली: साहित्य भवन पब्लिकेशन्स।
2. वर्मा, पी. के. (2022). *संस्मरण: एक साहित्यिक अध्ययन.* जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स।
3. मिश्रा, एस. (2023). *आत्मकथा के स्वर: हिंदी गद्यकृति में परिवर्तन.* लखनऊ: भारतीय साहित्य संस्थान।

## 11.10 अभ्यास प्रश्न

1) रेखाचित्र के रूप विधायक तत्वों का वर्णन कीजिए
2) संस्मरण की परिभाषा देते हुए उसके विकास पर प्रकाश डालिए
3) आत्मकथा से आप क्या समझते हैं उसके स्वरूप का वर्णन कीजिए

# इकाई - 12
# अन्य गद्य विधाएँ- II

12.1 प्रस्तावना
12.2 उद्देश्य
12.3 जीवनी
12.4 यात्रावृत्तांत
12.5 व्यंग्य शैली
12.6 सार संक्षेप
12.7 मुख्य शब्द
12.8 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर
12.9 संदर्भ सूची
12.10 अभ्यास प्रश्न

## *12.1 प्रस्तावना*

हिंदी साहित्य में गद्य विधाओं की एक समृद्ध परंपरा रही है, जो समाज, संस्कृति और मानव जीवन के विविध पहलुओं को उजागर करती है। इस इकाई में हम हिंदी की कुछ महत्वपूर्ण गद्य विधाओं पर चर्चा करेंगे, जिनमें जीवनी, संस्मरण, यात्रा वृत्तान्त और अन्य गद्य विधाएँ शामिल हैं। ये विधाएँ न केवल साहित्यिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण हैं, बल्कि वे हमारे जीवन और अनुभवों को व्यक्त करने के अद्भुत माध्यम भी हैं।

जीवनी विधा में लेखक किसी व्यक्ति के जीवन की घटनाओं और उनके व्यक्तित्व का चित्रण करता है, जो पाठकों को उस व्यक्ति के संघर्षों, उपलब्धियों और जीवन के आदर्शों से परिचित कराती है। संस्मरण विधा में लेखक अपने जीवन

के कुछ महत्वपूर्ण अनुभवों और स्मृतियों को साझा करता है, जो पाठक को भावनात्मक रूप से जोड़ने में सक्षम होते हैं। यात्रा वृत्तान्त में लेखक अपनी यात्रा के अनुभवों, स्थलों, संस्कृतियों और लोगों के बारे में विस्तार से वर्णन करता है, जो न केवल सूचनात्मक होता है बल्कि सांस्कृतिक संवेदनशीलता को भी उजागर करता है।

इन विधाओं का अध्ययन हमें न केवल हिंदी साहित्य के गहरे पहलुओं से परिचित कराता है, बल्कि यह हमें मानवीय अनुभवों, संवेदनाओं और दृष्टिकोणों के विविध रूपों को समझने का अवसर भी प्रदान करता है। इस इकाई के माध्यम से हम इन विधाओं के महत्व, उनकी संरचना और लेखन शैली को समझने का प्रयास करेंगे, जिससे हम साहित्य के इस बहुआयामी क्षेत्र में गहरी समझ विकसित कर सकें।

## *12.2 उद्देश्य*

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- हिंदी साहित्य की जीवनी विधा का परिचय, इसकी विशेषताएँ एवं प्रमुख प्रवृत्तियाँ।
- यात्रा-वृत्तांत विधा की प्रमुख विशेषताएँ, स्वरूप एवं इसके माध्यम से व्यक्त सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भ।
- व्यंग्य शैली की महत्ता, इसके प्रकार, तथा साहित्य में इसकी प्रभावी अभिव्यक्ति के उदाहरण।
- इन तीनों विधाओं में अभिव्यक्त विषय-वस्तु और शैलीगत विशेषताओं के माध्यम से हिंदी साहित्य के विविध आयामों को समझने की क्षमता।
- साहित्य की इन विधाओं के ऐतिहासिक और समकालीन योगदान का विश्लेषण करने की योग्यता

## 12.3 जीवनी

**परिभाषा एवं स्वरूप**

आदर्श हिन्दी शब्दकोश एवं हिन्दी रत्नकोष में जीवन-चरित्र का अर्थ 'जीवन का वृतान्त' जिन्दगी का हाल, जीवन वृत्तान्त युक्त ग्रन्ध्र दिया गया है। हिन्दी शब्द सागर में जीवनी का अर्थ, 'जीवन भर का वृतान्त' तथा 'जीवन-चरित्र' दिया गया है। ये अर्थ अस्पष्ट हैं। प्रचारक हिन्दी शब्द कोष ने इसका अर्थ इस प्रकार दिया है- 'जीवन का वृतान्त', 'वह पुस्तक जिसमें किसी महापुरुष के जीवन का समस्त विवरण आदि से अन्त तक लिखा हो।' एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका में जीवन-चरित्र के विषय में लिखा गया है कि, "यह इतिहास का वह रूप है जो मनुष्य की जातियों या समूहों से नहीं, वरन् एक व्यक्ति से सम्बन्ध रखता है।" द न्यू अमेरिकन एनसाइक्लोपीडिया ने भी जीवन-चरित्र का अर्थ 'एक व्यक्ति के जीवन की घटनाओं का इतिहास या उसके विचार और समय की व्याख्या' लिखा है।

इस प्रकार सत्रहवीं शती के पूर्व तक जीवनी-साहित्य के सम्बन्ध में कोई स्पष्ट धारणा नहीं थी। सत्रहवीं शती में जेम्स वासवेल ने डॉ. जान्सन का जीवन-चरित्र लिखा और इस समय से जीवन-साहित्य में आमूल परिवर्तन उपस्थित हो गया।

**जीवनी के तत्व एवं लक्षण**

प्रस्तुत विवेचन के आधार पर जीवन-चरित्र के विशेष लक्षण एवं तत्व निम्नांकित हैं-

(1) एक व्यक्ति के जीवन का वृतान्त। (2) ऐतिहासिक सत्यता। (3) लेखक की तटस्थता एवं सहृदयता। (4) वैज्ञानिकता। (5) मनोदशा का विश्लेषण। (6) ये जीवनियां किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा लिखी जाती हैं। (7) इनमें लेखक नायक के बाहय एवं आन्तरिक व्यक्तितत्व का सच्चा विश्लेषण प्रस्तुत करता है। (8) लेखक वास्तविक घटनाओं का अंकन और चित्रण करता है। (9) लेखक को नायक का अन्धभक्त नहीं होना चाहिए। (10) जीवनी-लेखक का लक्ष्य-सत्य का उद्घाटन होना चाहिए। (11) जीवनी महान व्यक्तियों की लिखी जाती है। (12) लेखक यथार्थ चित्रण करता है। (13) लेखक को 'आत्म' से बचते हुए 'पर' के क्षेत्र में ही विचरण करना पड़ता है। (14) इसमें चरित्र-नायक के जीवन की क्रम-बद्ध कहानी

कही जाती है। (15) जीवनी-लेखन इतिहास अथवा कल्पना पूर्ण कथा से पृथक है।

**जीवनी का विकास**

जीवनी-साहित्य के विकास को पांच भागों में विभाजित करके देखा जा सकता है- (i) 1000 ई. से पूर्व, (ii) 1000 ई. से 1850 ई. तक, (iii) 1851 ई से 1900 ई. तक, (iv) 1901 ई. से 1929 ई. तक, (v) 1930 ई. से वर्तमान काल तक ।

**1000 ई. से पूर्व अथवा हिन्दी के पूर्व भारतीय भाषाओं में जीवनी साहित्य-** जीवनी-साहित्य की परम्परा अति प्राचीन है। डॉ. चन्द्रावती सिंह ने इसका सूत्र वेदों से ढूंढा है।

अथर्ववेद के रचयिता अथर्वन ऋषि का संक्षिप्त जीवन-परिचय ऋग्वेद में प्राप्त होता है। इसी प्रकार तैत्तरीय संहिता में वैशम्पायन और याज्ञवल्क्य के चरित्र उपलब्ध होते हैं।

रामायण में राम के चरित्र का वर्णन है। बौद्धों के जातक ग्रन्थों में भी विभिन्न प्रकार के चरित्र उपलब्ध हैं। महाभारत में युधिष्ठिर, अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव, दुर्योधन आदि के चरित्र वर्णन किये गये हैं। इसी प्रकार पौराणिक साहित्य में भी हजारों जीवन-वृतान्त मिलते हैं।

प्रथम ईसवी के लगभग अश्वघोष ने 'बुद्धचरित' लिखा। बाण द्वारा लिखित 'हर्षचरित' भी प्राचीन साहित्य है।

जैन वाङ्मय के चार प्रकार माने गए हैं, जिनमें एक भाग जीवन-चरित्र का भी है। कल्हण ने 'राज-तरंगिणी' ग्रन्थ लिखा है, जिसमें 1148 ई. तक के कश्मीर के राजाओं का वर्णन है। इस प्रकार भारतीय जीवनी-साहित्य का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है।

**1000 से 1850 ई. तक अथवा उन्नीसवीं शती के पूर्वार्द्ध तक हिन्दी जीवनी-साहित्य-** जिस समय हिन्दी का जन्म हुआ भारत की स्थिति बड़ी डांवाडोल थी। चारों ओर ईर्ष्या, द्वेष, दम्भ और कलह देश की शक्ति को छिन्न-भिन्न कर रहे थे। डॉ. चन्द्रावती सिंह लिखती है- "एक हजार शताब्दी से 13वीं शताब्दी तक वीरों के पराक्रम का युग था 14वीं शताब्दी से 17वीं शताब्दी तक आध्यात्मिक

और भक्ति प्रचार का युग था और उसके बाद 19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक भारत का जीवन श्रृंगारमय और विलासपूर्ण था। इस काल का जीवनी-साहित्य अपने युग की आत्मा का वास्तविक प्रतिनिधि है।"

भक्ति-काल के जीवनी-साहित्य की एक ही शैली है। जैसे वीरगाथा-काल जीवन-साहित्य का रूप 'रासो' साहित्य की शैली परम्परा में था, उसी प्रकार भक्ति-कालीन जीवनी-साहित्य में नायकों के चरित्रों का भक्तिपूर्ण वर्णन है।

1851 से 1900 ई. तक अथवा भारतेन्दु युग और जीवनी साहित्य इस काल में इस विधा का पर्याप्त विकास देखा जा सकता है। स्वयं भारतेन्दु बाबू ने 'चरितावली' लिखी जिसमें सोलह जीवन वृतान्त है। साथ ही 'उत्तरार्द्ध भक्तमाल' भी लिखा जिसमें लगभग दो सौ भक्तों का वर्णन एक सौ छियानवे छप्पयों में किया गया है। इस युग के अन्य जीवन-चरित्र है- राधाचरण गोस्वामी का जीवन-चरित्र, श्री स्वामी बिरजानन्द सरस्वती दण्डी जी का जीवन-चरित्र, परमहंस शिव नारायण स्वामी जी का जीवन-चरित्र, नैपोलियम बोनापार्ट का जीवन-चरित्र, छत्रपति शिवाजी का जीवन-चरित्र, विक्टोरिया महारानी का वृतान्त, सिकन्दर महान का वृतान्त, स्वामी दयानन्द सरस्वती का जीवन-चरित्र, मीराबाई का जीवन-चरित्र, तुलसीदास का जीवन-चरित्र, महाराणा प्रताप का जीवन-चरित्र, यदुपति महाराणा उदयसिंह जी का जीवन-चरित्र आदि ।

1901 से 1929 ई. तक अथवा द्विवेदी युगी जीवनी-साहित्य- आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी सही माने में आचार्य थे। व्याकरण एवं शैली पर ध्यान देते हुए उन्होंने साहित्यिक समालोचना, इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीति एवं जीवन-चरित्र अदि विषयों पर गम्भीरता, तल्लीनता तथा परिश्रम के साथ लिखना अपना कर्त्तव्य निर्धारित कर लिया था। उन्होंने दूसरों को भी उचित ढंग से लिखने के लिए प्रेरित किया।

इनके अतिरिक्त अन्य विद्वानों द्वारा लिखी गई जीवनियों में प्रमुख हैं- स्वामी विशुद्धानन्द, दयानन्द चरितामृत, स्वामी दयानन्द, दयानन्द दिग्विजय, दयानन्द प्रकाश, देशभक्त लाजपत, शंकराचार्य, कर्मवीर गांधी, केशव चन्द्रसेन, महाराणा रणजीत सिह, वीर केशरी शिवाजी, सरदार वल्लभभाई पटेल, बादशाह हुमायूं आदि। इनके साथ ही इस युग में अन्य बहुत-सी जीवनियां लिखी गई।

1930 ई. से वर्तमान काल तक अथवा वर्तमान युग- द्विवेदी युग के समाप्त होते ही भारतीय जीवन उथल-पुथल के महासागर से पार होने लगा। घटनाओं का चक्र तीव्रगति से घूम रहा था। 1930 में देश में व्यापक सत्याग्रह आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। उधर अंग्रेजों का दमन-चक्र भी पूरी गति से चला। अन्ततोगत्वा सन् 1947 में भारत स्वतन्त्र हुआ। इस काल में साहित्य के क्षेत्र में भी पर्याप्त उतार-चढ़ाव देखे जा सकते हैं। आलोच्य युगीन जीवनियों में मुख्य हैं- दयानन्द, श्री गांधी, गणेश शंकर विद्यार्थी, श्री एकनाथ चरित्र, स्वामी श्रद्धानन्द की जीवनी, आचार्य महावीर प्रसाद, महामना पं. मदनमोहन मालवीय, श्री रामकृष्ण परमहंस, क्रान्तियुग के संस्मरण, मेरा बचपन, गुरुनानक, दुर्गादास, चन्द्रशेखर आजाद, कलम, त्याग और तलवार, शेष स्मृतियां, कुल्लीभाट, अतीत के चलचित्र, मेरी आत्म कहानी, प्रेमचन्द्र घर में, सन्त कबीर, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस, बन्दी की चेतना, मेरी जीवन यात्रा, महाकवि हरिऔध, जगतगुरु शंकराचार्य, सत्य की खोज, मेरा जीवन-प्रवाह, राष्ट्रपिता, कार्ल मार्क्स, जयप्रकाश नारायण आदि ।

**निष्कर्ष**

अन्त में साहित्य-मर्मज्ञ डॉ. रामचन्द्र तिवारी के शब्दों में कह सकते हैं- "वस्तुतः जीवन-लेखन के लिए जिस मनोभूमि की आवश्यकता होती है, हिन्दी साहित्य में अब तक उसका अभाव है। 'आत्मकथा' की रचना के लिए खुला हुआ मन, जो अपनी समस्त दुर्वलताओं को स्वीकार कर सके, आवश्यक है। दूसरे की जीवनी लिखने के लिए चरित नायक के सम्बन्ध में पूर्ण जानकारी अपेक्षित है। चरित नायक के प्रति पूज्य भाव या प्रशंसात्मक दृष्टिकोण होने के कारण प्रायः उसके जीवन के वे प्रसंग छोड़ दिये जाते हैं, जिन्हें वैज्ञानिक दृष्टि से समान महत्व दिया जाना चाहिए। हर मनुष्य के जीवन में ऐसे क्षण आते हैं जब वह देवता होता है और ऐसे भी क्षण आते हैं जब उसके अचेतन में दबा हुआ पशु हुंकार उठता है। जीवनी-लेखक के लिए आवश्यक है कि वह तटस्थ भाव से उभय स्थितियों का चित्रण करे। जीवनी लिखने का कार्य उस समय और कठिन हो जाता है जब लेखक और चरित्र नायक में पिता-पुत्र, पति-पत्नी या गुरु-शिष्य का

सम्बन्ध होता है। हिन्दी में प्रेमचन्द की एक जीवनी उनकी पत्नी शिवरानी देवी ने 'प्रेमचन्द घर में' नाम से लिखी है। दूसरी, उनके पुत्र अमृतराय ने 'कलम का सिपाही' (1964 ई.) नाम से लिखी है। दोनों ही उत्कृष्ट कृतियां हैं। अमृतराय का प्रयत्न शलाध्य है। उन्होंने हिन्दी-जीवनी साहित्य को ऊँचा उठाया है। शिवरानी देवी ने प्रेमचन्द को परिवार के सन्दर्भ में देखा और अमृतराय ने युग-जीवन के सन्दर्भ में। इधर इसी कोटि का एक प्रयत्न डॉ. भगवती प्रसाद सिह ने कविराज गोपीनाथ की जीवन 'मनीषी की लोक-यात्रा' प्रस्तुत करके किया है। ऐसा प्रतीत हो रहा है कि अब हिन्दी के लेखक अपना दायित्व समझने लगे हैं और जीवन-साहित्य लेखन में भी उनका स्तर क्रमशः ऊँचा होता जा रहा है।"

स्वप्रगति परिक्षण

1. "_______ के द्वारा लिखा गया 'बुद्धचरित' प्राचीन भारतीय जीवनी-साहित्य का एक महत्वपूर्ण उदाहरण है।"
2. "जीवनी-लेखन में लेखक को चरित नायक के जीवन की _______ का सत्य चित्रण करना चाहिए।"
3. "आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने जीवन-चरित्र लेखन को _______ की तरह देखा।"
4. "______ ने प्रेमचन्द की जीवनी 'प्रेमचन्द घर में' लिखी थी।"

## *12.4 यात्रावृत्तांत*

**परिभाषा**

यात्रा वृत्त साहित्य के सम्बन्ध में श्री बालकृष्ण राव ने लिखा है, "जब साहित्यकार अपनी यात्रा के संस्मरणों को इस प्रकार लिपिबद्ध करे कि यात्रा किये गये स्थल

का मूर्तरूप पाठक के समक्ष आ जाये तो उस साहित्यिक एवं कलात्मक यात्रा-विवरण को 'यात्रा-साहित्य' कहते हैं।"

**वर्गीकरण**

विशेषताओं के आधार पर यात्रा-वृत्तों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है- (1)
सूचना और विवरण प्रधान, (2) प्रकृति-संसर्ग जनित उल्लास प्रधान, (3) जीवन-दर्शन प्रधान, (4) संस्मरण-शैली प्रधान, (5) व्यक्तिगत पत्रात्मक शैली प्रधान, (6) परिचयात्मकता प्रधान ।

**यात्रा-साहित्य का विकास**

इसके विकास को दो वर्गों में विभाजित करके देखा जा सकता है- (1) भारतेन्दु युग का • यात्रा-साहित्य, और (2) भारतेन्दु के बाद का यात्रा-साहित्य ।

**(1) भारतेन्दु युग का यात्रा-साहित्य-** भारतेन्दु युगीन यात्रा-साहित्य के सम्बन्ध में डॉ. विश्वनाथ तिवारी लिखते हैं- "सुदूर पूर्व के देशों, द्वीपों तथा पृथ्वी के अन्य देशों में प्राप्त भारतीय धर्म और संस्कृति के चिन्हों से स्पष्ट होता है कि भारत में बहुत प्राचीनकाल से यात्राएं होती रही हैं। किन्तु अपने सम्बन्ध में मौन रहने की भारतीय प्रवृत्ति के कारण ये यात्राएं लिपिबद्ध रूप में प्राप्त नहीं होतीं। यही कारण है कि आधुनिक अर्थों में जिसे यात्रा साहित्य कहते हैं, उसका हमारे प्राचीन साहित्य में अभाव है। हिन्दी में यात्रा-साहित्य का प्रारंभिक रूप भारतेन्दु और द्विवेदी युग में विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित भ्रमण सम्बन्धी लेखों के रूप में प्राप्त होता है। 'कवि वचन सुधा' में प्रकाशित भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के' 'सरयू पार की यात्रा', 'मेहदावल की यात्रा', 'लखनऊ की यात्रा', 'हरिद्वार की यात्रा' और 'बैद्यनाथ की यात्रा' शीर्षक निबन्ध इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण हैं। भारतेन्दु जी के अतिरिक्त इस युग में अन्य हिन्दी-लेखकों ने भी यात्रा विवरण लिखे और आगे चलकर हिन्दी का यात्रा-साहित्य समृद्ध हुआ। देवेन्द्र सत्यार्थी कृत 'चांद सूरज़ के बीरन', बालकृष्ण भट्ट कृत 'कातिकी का नहान' और प्रतापनारायण मिश्र कृत 'विलायत यात्रा' शीर्षक रचनाएं इसी कोटि की हैं।"

**(2) भारतेन्दु के बाद यात्रा-साहित्य-** भारतेन्दु के बाद यात्रा-साहित्य के सन्दर्भ में डॉ. रामचन्द्र तिवारी का कथन दृष्टव्य है "भारतेन्दु के बाद यात्रा-वृत्तान्तों के

पुस्तकाकार प्रकाशन की अखण्ड परम्परा लक्षित होती है। इन रचनाओं में पंडित दामोदर शास्त्री कृत 'मेरी पूर्व दिग्यात्रा', देवीप्रसाद खत्री कृत 'रामेश्वर यात्रा' और 'बदरिकाश्रम यात्रा', शिवप्रसाद गुप्त कृत 'पृथ्वी प्रदक्षिणा', स्वामी सत्यदेव परिब्राजक कृत 'मेरी कैलाश यात्रा' और 'मेरी जर्मन यात्रा', पं. कन्हैयालाल मिश्र कृत 'हमारी जापान यात्रा' और पं. रामनारायण मिश्र कृत 'यूरोप यात्रा में छः मास' आदि उल्लेखनीय हैं। इन यात्रा-वृत्तान्तों के द्वारा हिन्दी प्रदेश में निवास करने वाले विशाल मानव समुदाय के क्रमशः विकसित होते हुए मानसिक क्षितिज की सूचना मिलती है। मध्यकालीन संस्कारों से प्रभावित भारतीय पण्डित-मण्डली समुद्र पार की यात्राओं का विरोध करती रही है। इन संस्कारों से मुक्त होकर जिन विद्वानों, यायावरों और परिब्राजकों ने यूरोप तथा अन्य पाश्चात्य देशों की यात्राएं की वे निश्चय ही नये भारत की रचना करने वाले उदार और कर्मठ व्यक्ति थे। हिन्दी प्रदेश में शिक्षा के विकास और अखिल भारतीय स्तर पर यातायात के साधनों की वृद्धि के साथ यात्रा के प्रति लोगों का रुझान बढ़ता गया। हिन्दी के साहित्यकारों में कुछ जन्मजात सैलानी प्रवृत्ति के यायावर सामने आये। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, रामवृक्ष बेनीपुरी, यशपाल, अज्ञेय, डॉ. भगवतशरण उपाध्याय, रामधारी सिंह दिनकर, नागार्जुन, भदन्त आनन्द कौशल्यायन, प्रभाकर माचवे, राजवल्लभ ओझा, अमृतराय, यशपाल जैन, काका कालेलकर, श्रीनिधि आदि अनेक साहित्यकार यात्रा-प्रेमी हैं। इन साहित्यकारों ने हिन्दी के यात्रा-साहित्य की श्रीवृद्धि की है। राहुल सांकृत्यायन कृत 'मेरी तिब्बत यात्रा' 'मेरी लद्दाख यात्रा', 'किन्नर देश में' और 'रूस में पच्चीस मास', श्री रामवृक्ष बेनीपुरी कृत 'पैरों में पंख बाँधकर' तथा 'उड़ते चलो-उड़ते चलो, यशपाल कृत 'लोहे की दीवार के दोनों ओर', अज्ञेय कृत 'अरे यायावर रहेगा याद', 'एक बूंद सहसा उछली' तथा 'किरणों की खोज में, डॉ. भगवतशरण उपाध्याय कृत 'मैंने देखा' 'वो दुनिया', 'सागर की लहरों पर' तथा 'कलकत्ता से पेकिंग' रामधारी सिंह दिनकर कृत 'देश-विदेश', प्रभाकर माचवे कृत 'गोरी नजरों में हम', अमृतराय कृत 'सुबह के रंग', रांगेय राघव कृत 'तूफानों के बीच', यशपाल जैन कृत 'पड़ौसी देशों में', काका कालेलकर कृत 'हिमालय यात्रा', श्रीनिधि कृत 'शिवालिका की घाटियों में' आदि यात्रा-साहित्य की महत्वपूर्ण कृतियां हैं।"

नये लेखकों में मोहन राकेश कृत 'आखिरी चट्टान तक', निर्मल वर्मा कृत 'चीड़ों पर चाँदनी', डॉ. रघुवंश कृत 'हरी घाटी' और 'मृग मारीचिका के देश में, आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी कृत 'केरल की शारदीय परिक्रमा', डॉ. नगेन्द्र कृत 'तन्त्रालोक से यन्त्रालोक तक', ब्रजकिशोर नारायण कृत 'नन्दन से लन्दन', प्रभाकर द्विवेदी कृत 'पार उतरि कहं जइहौं' तथा धर्मवीर भारती लिखित 'यादे यूरोप की' आदि रचनाओं की सर्वाधिक चर्चा है।

**निष्कर्ष**

प्रस्तुत विवेचन के आधार पर अन्त में डॉ. रामचन्द्र तिवारी के शब्दों में कह सकते हैं- "यात्रा वृत्तान्तों में देश-विदेश में प्राकृतिक दृश्यों की रमणीयता, नर-नारियों के विविध जीवन-सन्दर्भ, प्राचीन एवं नवीन सौन्दर्य-चेतना की प्रतीक कलाकृतियों की भव्यता तथा मानवीय सभ्यता के विकास के द्योतक अनके वस्तुचित्र यायावर लेखक के मानस में रूपायित होकर वैयक्तिक रागात्मक ऊष्मा से दीप्त हो जाते हैं। लेखक अपनी बिम्ब-विधायिनी कल्पना-शक्ति से उन्हें पुनः मूर्त करके पाठकों की जिज्ञासा-वृत्ति को तुष्ट कर देता है। यात्रा काल में यायावर का साहस, संघर्षशीलता, स्वच्छता, आकस्मिक रूप से आने वाले प्रतिकूल परिस्थितियों को अनुकूल बना लेने की क्षमता आदि चारित्रिक विशेषताएं उसे नायक की गरिमा प्रदान कर देती हैं। पाठक उसे प्यार करने लगता है। यायावरों की साहसिक यात्राएं मानव की जिजीविषा का उद्घाटन करती हैं। जिजीविषा हर जीवधारी की मूलभूत वृत्ति है। यात्रा-वृत्तान्तों के पढ़ने से इस वृत्ति की तुष्टि होती है इसीलिए यात्रा-साहित्य के प्रति आकर्षण बढ़ता जा रहा है। यात्रा-वृत्तान्त सामान्य वर्णनात्मक शैली के अतिरिक्त डायरी, पत्र" और रिपोर्ताज शैली में भी लिखे जाते हैं। इसलिए इनमें निबन्ध, कथा, संस्मरण आदि कई गद्य रूपों का आनन्द एक साथ मिलता है। हिन्दी में यात्रा-साहित्य का भविष्य उज्जवल है।"

## *12.5 व्यंग्य शैली*

व्यंग्य का जन्म अपने समय की विद्रूपताओं के भीतर से उपजे असंतोष से होता है। विद्वानों में इस बात पर मतभेद लगातार बना रहा है कि व्यंग्य को एक अलग विधा माना जाए या कि वह किसी भी विधा के भीतर 'स्पिरिट' के रूप

में मौजूद रहे। दरअसल व्यंग्य एक माध्यम है जिसके द्वारा व्यंग्यकार जीवन की विसंगतियों, खोखलेपन और पाखंड को दुनिया के सामने उजागर करता है। जिनसे हम सब परिचित तो होते हैं किंतु उन स्थितियों को दूर करने, बदलने की कोशिश नहीं करते बल्कि बहुधा उन्हीं विद्रूपताओं-विसंगतियों के बीच जीने की, उनसे समझौता करने की आदत बना लेते हैं। व्यंग्यकार अपनी रचनाओं में ऐसे पात्रों और स्थितियों की योजना करता है जो इन अवांछित स्थितियों के प्रति पाठकों को सचेत करते हैं। जैसा कि 'व्यंग्य' नाम से ही स्पष्ट है, इस विधा में सामाजिक विसंगतियों का चित्रण सीधे-सीधे (अभिधा में) न होकर परेक्षतः (व्यंजना के माध्यम से) होता है। इसीलिए व्यंग्य में मारक क्षमता अधिक होती है।

**आरंभिक युग**

हिंदी में संत-साहित्य से व्यंग्य का आरंभ माना जा सकता है। कबीर व्यंग्य के आदि प्रणेता हैं। उन्होंने मध्यकाल की सामाजिक विसंगतियों पर व्यंग्यपूर्ण शैली में प्रहार किया है। जाति-भेद, हिंदू-मुस्लमानों के धर्माडंबर, गरीबी-अमीरी, रूढ़िवादिता आदि पर कबीर के व्यंग्य बड़े मारक हैं।

'जो तू बामन-बमनी जाया। आन द्वार काहे नहिं आया'।,
'क्या तेरा साहिब बहरा है',
'कांकर पाथर जोरि कै मस्जिद लई चुनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बांगि दे क्या बहरा हुआ खुदाय'

आदि अनेक उद्धरण कबीर की व्यंग्य-क्षमता के प्रमाण हैं। लेकिन उत्तर-मध्यकालीन सामंती समाज कबीर आदि संतों के समाज-बोध को समझ पाने में असफल रहा और पूरे रीतिकाल में व्यंग्य रचनाओं की उपस्थिति नगण्य रही। कबीर के बाद भारतेंदु ने सामाजिक विषमताओं के प्रति व्यंग्य को हथियार बनाया। अंग्रेज़ों के खिलाफ लिखते हुए वे कहते हैं, "होय मनुष्य क्यों भये, हम गुलाम वे भूप।" इस पंक्ति में औपनिवेशिक भारत की मूल समस्या हमें दिखाई देती है। पराधीन भारत की समस्याएँ वर्तमान भारत से अलग थीं। 'अंधेर नगरी' और 'मुकरियों' में गुलाम भारत की विडंबनापूर्ण परिस्थितियों, अंग्रेजी साम्राज्यवाद और उनकी शोषक दृष्टि के प्रति आक्रोश को देखा जा सकता है। भारतेंदु-युग के

अन्य महत्वपूर्ण व्यंग्यकार बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' और प्रतापनारायण मिश्र हैं। किंतु प्रेमघन की कृति 'हास्यबिंदु' और प्रतापनारायण मिश्र के निबंधों में व्यंग्य सहायक प्रवृत्ति के रूप में मौजूद है। व्यंग्य इनकी रचनाओं में केंद्रीय भूमिका का निर्वहन नहीं करता है। व्यंग्य का पूर्ण उन्मेष इनके बाद के व्यंग्य रचनाकार बालमुकुंद गुप्त की रचनाओं में दिखाई देता है। 'शिवशंभु के चिट्ठे' नामक अपनी प्रसिद्ध व्यंग्य लेखमाला में इन्होंने समसामयिक परिस्थितियों पर तीव्र व्यंग्य किए। राजनीति और तत्कालीन शासन-व्यवस्था से टकराव इनकी व्यंग्य रचनाओं की आधार सामग्री का काम करते हैं।

**स्वतंत्रता-पूर्व युग**

युगीन समस्याओं पर व्यंग्य करने की प्रवृत्ति प्रेमचंद में भी बहुत मिलती है। इन्होंने अपनी कहानियों और उपन्यासों में आम आदमी और कृषक वर्ग की दैनंदिन कठिनाइयों पर करारा व्यंग्य किया है। प्रेमचंद के बाद के रचनाकारों में निराला साहित्य में इसे देखा जा सकता है। इनकी 'कुकुरमुत्ता' आदि रचनाओं में व्यंग्य की अभिव्यक्ति विद्रूपता फैलाने वाले समाज के खिलाफ चुनौती के रूप में हुई है। इनके अलावा स्वतंत्रता-पूर्व के रचनाकारों में पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' और रांगेय राघव का नाम भी लिया जा सकता है लेकिन इन लेखकों में व्यंग्य की वह धार नहीं है जो हमें भारतेंदु अथवा बालमुकुंद गुप्त की रचनाओं में दिखाई देती है।

**स्वातंत्रयोत्तर युग**

सन् 1947 में भारत स्वतंत्र हुआ और देश की आज़ादी के साथ ही आम आदमी खुशहाली के सपने देखने लगा। लेकिन विपरीत परिस्थितियों और राजनीतिक अदूरदर्शिता के कारण आम आदमी के ये सपने पूरे नहीं हो सके। स्वतंत्रता के बाद भारत में समाज, राजनीति, धर्म, शिक्षा, आदि सभी क्षेत्रों में असंगतियाँ बढ़ी हैं। सामाजिक-नैतिक मूल्यों का पतन हुआ है। आम आदमी के लिए शांतिपूर्वक जीवन जीने के अवसर कम हुए हैं। सत्य, सदाचरण, ईमानदारी और कर्तव्यनिष्ठा आदि शाश्वत मूल्यों का स्थान अनेक विसंगतियों ने ले लिया है। आजादी पूर्व देखे गए स्वप्न तो बीसवीं शताब्दी के छठे दशक तक आते-आते ही खण्डित हो

गए। गुलाम भारत में होने वाले शोषण-अत्याचार आजादी के बाद कम होने के बजाय और अधिक बढ़ गए। व्यक्ति और समाज की आंतरिक जटिलताओं के साथ-साथ अन्तर्विरोध भी बढ़े हैं। व्यक्ति निजी स्वार्थ तक सीमित होकर रह गया है। ये विसंगतियाँ और जटिलताएँ व्यंग्य के लिए आधारभूमि बनीं। स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी साहित्य में व्यंग्य का पर्याप्त सृजन हुआ है। निरन्तर बढ़ती सामाजिक विषमताओं से विक्षुब्ध होकर करुणापूर्ण व्यंग्य लेखन की एक लम्बी परम्परा मिलती है। हरिशंकर परसाई इस परम्परा के प्रतिनिधि रचनाकार हैं। परसाई की रचनाएं 'आजाद भारत का सृजनात्मक इतिहास' कही जा सकती हैं। इन रचनाओं का वर्तमान भारत की यथार्थ स्थितियों के संदर्भ में ही आकलन किया जा सकता है। सामान्य सामाजिक स्थितियों को परसाई ने वैचारिक चिन्तन से पुष्ट करके प्रस्तुत किया है। स्वतंत्र भारत के सकारात्मक-नकारात्मक सभी पहलुओं की परसाई ने बखूबी पड़ताल की है। परसाई की रचनाओं में उस पीड़ित भारत की छटपटाहट को महसूस किया जा सकता है जो शोषकों के तिलिस्म में कैद है। शोषक इस तिलिस्म को बनाए रखने के लिए तरह-तरह के छद्म करते हैं। इन छद्मों का खुलासा परसाई करते हैं। अपनी वैचारिक प्रतिबद्धता और सतर्क वैज्ञानिक दृष्टि के कारण परसाई छद्म के उन सभी रूपों को आसानी से पहचान लेते हैं जिन तक सामान्यतः रूढ़िवादी दृष्टि नहीं पहुँच पाती। परसाई का रचना संसार बहुत व्यापक है। निजी अनुभूतियों की निर्वैयक्तिक अभिव्यक्ति उनके व्यंग्य लेखन की विशिष्टता है। परसाई की सृजनशील दृष्टि निम्नवर्गीय सामान्य आदमी से प्रारम्भ होकर बहुराष्ट्रीय समस्याओं तक को अपने भीतर समेटती है। परसाई व्यंग्य के माध्यम से सृजन और संहार दोनों एक साथ करते हैं। परसाई का व्यंग्य जब शोषक वर्ग के प्रति होता है तो वह उस वर्ग के प्रति घृणा और आक्रोश उत्पन्न करता है लेकिन जब वही व्यंग्य अभावग्रस्त व्यक्ति पर होता है तो करुणा पैदा करता है।

परसाई के व्यंग्य लेखन की भाषा सप्रयास नहीं है। उनका मानना है कि समाज में रहने के कारण वह हमें अनुभव देता है और विषयानुरूप नई भाषा सिखाता है। यही कारण है कि परसाई की भाषा उनके कथ्य का अनुसरण करती हैं।

शरद जोशी भी परसाई की ही तरह एक अलग भाषाई तेवर के साथ व्यंग्य लेखन करते हैं। शिल्प की सजगता इनके व्यंग्य लेखन की विशेषता है। भाषा में वक्रता के द्वारा ये शब्दों और विशेषणों का विशिष्ट संयोजन करते हैं।

श्रीलाल शुक्लका नाम भी स्वातंत्रयोत्तर व्यंग्य लेखन में बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है। इनके उपन्यास 'रागदरबारी' ने मोहभंग की स्थितियों के यथार्थ को सजीव रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। रवींद्रनाथ त्यागीका लेखन आत्म-व्यंग्य के कारण महत्वपूर्ण माना जाता है। इनके लेखन को हम हास्य और व्यंग्य का संयोजन कह सकते हैं। यह न सिर्फ पाठक को प्रफुल्लित करता है बल्कि उसे सोचने के लिए बाध्य भी करता है।

लतीफ घोंघी के व्यंग्य में राजनीतिक और सामाजिक यथार्थ को विषय बनाया गया है। इनके व्यंग्य में मारकता का अभाव है, किंतु इनका कथ्य बहुत व्यापक है। नारी-शोषण, कालाबाज़ारी, भुखमरी, शैक्षिक-साहित्यिक दुनिया की गड़बड़ियाँ आदि विषयों के साथ-साथ इन्होंने आम आदमी की दैनिक परेशानियों को अपने व्यंग्यों में स्थान दिया है। भाषा में उर्दू का पुट है।

सामाजिक मूल्यों के विघटन को केंद्र में रखकर समकालीन साहित्यिक परिदृष्य में व्यंग्य का लगातार सृजन हो रहा है। समकालीन व्यंग्य में ज्ञान चतुर्वेदी,सुशील सिद्धार्थ,नरेन्द्र कोहली,शंकर पुणतांबेकर,जवाहर चौधरी,सुभाष चंदर,यशवंत व्यास,प्रेम जनमेजय,हरीश नवल,अरविंद तिवारी, यशवंत कोठारी, अरुण अर्णव खरे, रमेश सैनी का नाम लिया जा सकता है। सुशील सिद्धार्थ के पास कमाल की भाषा थी, जो समृद्ध भी है और बेहद पठनीय भी। 'नारद की चिंता' इसका सुंदर प्रमाण है। दक्षिण भारत के रचनाकारों में डॉ सुरेश कुमार मिश्रा 'उरतृप्त' सबसे प्रसिद्ध नाम है। उनका 'एक तिनका इक्यावन आँखें' प्रसिद्ध व्यंग्य-संग्रह है। इसी में 'किताबों की अंतिम यात्रा' जैसी प्रसिद्ध व्यंग्य रचना भी शामिल है। डॉ. उरतृप्त रचित 'शिक्षक की मौत' साहित्य आज तक चैनल पर इतना वायरल हुआ कि इसे लगभग दस लाख लोगों द्वारा पढ़ा और देखा गया है। यह हिंदी व्यं्ग्य इतिहास में अब तक सबसे अधिक पढ़ा गया व्यंग्य है। यह कीर्तिमान केवल उन्हें ही प्राप्त है। ऐसी उपलब्धि अभी तक किसी को प्राप्त नहीं हुई है।

डॉ सुरेश कुमार मिश्रा की 'उरतृप्त' के लिए तेलंगाना सरकार की हिंदी अकादमी ने उन्हें श्रेष्ठ नवयुवा रचनाकार सम्मान से सम्मानित किया। समकालीन व्यंग्य रचनाकारों में सुरेश कांत, ज्ञान चतुर्वेदी, सुशील सिद्धार्थ, नरेंद्र कोहली, शंकर पुणतांबेकर, जवाहर चौधरी का नाम लिया जाता है। सुरेश कांत ने व्यंग्य-जगत को एक दर्जन से अधिक व्यंग्य-संकलनों के साथ-साथ 'ब से बैंक', 'अफसर गये विदेश' जैसे दो अदभुत व्यंग्य-उपन्यास दिये हैं। नरेंद्र कोहली ने अपनी व्यंग्य रचनाओं में नये प्रयोगों पर विशेष ध्यान दिया है। व्यंग्य को सामाजिक सतर्कता के हथियार के रूप में देखा जाता है। यशवंत कोठारी की रचनाएं आत्मचिंतन करने को मजबूर करती हैं | उनके व्यंग्य आज की भौतिकतावादी मानसिकता पर जमकर प्रहार करते हैं | नोटम् नमामि व्यंग्य संग्रह में उनका यही तेवर दिखाई देता है | परसाई की कर्मभूमि के निवासी रमेश सैनी के व्यंग्य युगबोधक चेतना के प्रति सजग दिखाई देते हैं | उनकी रचनाओं का शिल्प पाठक को मोहने वाला है | "मेरे आसपास" और "बिन सैटिंग सब सून" उनके प्रसिद्ध व्यंग्य संग्रह हैं | अरुण अर्णव खरे आज के सर्वाधिक सक्रिय व्यंग्यकारों में हैं | वह सर्वथा अछूते विषयों को अपने व्यंग्य का विषय बनाते हैं | सोशल मीडिया की विसंगतियों पर उनने जितना लिखा है शायद किसी और व्यंग्यकार ने उतना नहीं लिखा है | "हैश, टैग और मैं", "उफ्फ! ये एप के झमेले" तथा "एजी, ओजी, लोजी, इमोजी" उनके व्यंग्य संग्रहों के शीर्षक हैं | अन्य व्यंग्यकारों में डॉ सुरेश चंद्र खरे, के पी सक्सेना, माणिक वर्मा, यशवंत व्यास, सुभाष चंद्र, अरविंद तिवारी, अनूप मणि त्रिपाठी,संतोष त्रिवेदी, सुरजीत सिंह, निर्मल गुप्त, मलय जैन, शशिकांत सिंह शशि प्रमुख हैं। केशवचंद्र वर्मा, भीमसेन त्यागी, रवींद्रनाथ त्यागी और सूर्यबाला ने (या इलाही ये माजरा क्या है) व्यंग्य विधा को समृद्ध करने में अपना अमूल्य योगदान दिया है।

**व्यंग्य आलोचना**

हिंदी व्यंग आलोचना परम्परा में सबसे पहले जी.पी श्रीवास्तव का नाम लिया जाता है जिन्होंने हास्य व्यंग्य आलोचना की प्रारंभिक अवधारणाएं हमारे सामने प्रस्तुत की इसके बाद डॉ श्यामसुंदर घोष, डॉ. बरसाने लाल चतुर्वेदी, डॉ शेरजंग गर्ग, डॉ. शंकर पुताम्बेकर, बालेंद्र शेखर तिवारी, नंदलाल, डॉ. सुरेश महेश्वरी, डॉ.

हरिशंकर दुबे, डॉ. भगवान दास काहार, बापूराव देसाई, डॉ. शैलेंद्रकुमार शर्मा,सुभाष चंदर , मधुसूधन पाटिल, डॉ रमेश तिवारी, प्रेम जन्मेजय,गौतम सान्याल इत्यादि ने व्यंग्य आलोचना में मुख्य भूमिका निभाई है। मुख्यधारा के आलोचकों में डॉ. धनंजय, डॉ मलय इत्यादि आलोचकों भी समय के लिए सक्रिय होकर व्यंग्य आलोचना को प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप से समृद्ध किया है।

## *12.6 सार संक्षेप*

इस इकाई में हिंदी गद्य की प्रमुख विधाओं जैसे जीवनी, संस्मरण, और यात्रा वृत्तान्त पर प्रकाश डाला गया है। जीवनी में किसी व्यक्ति के जीवन की प्रमुख घटनाओं और संघर्षों का विवरण होता है, जिससे पाठक उस व्यक्ति के विचार और कार्यों को समझ पाते हैं। संस्मरण एक लेखक द्वारा अपने अनुभवों और यादों के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है, जो न केवल व्यक्तिगत होते हैं, बल्कि समाजिक परिप्रेक्ष्य में भी महत्वपूर्ण होते हैं। यात्रा वृत्तान्त में लेखक अपनी यात्रा के दौरान देखे गए स्थानों, उनके सांस्कृतिक और भौतिक पहलुओं को समर्पित करता है, जिससे यात्रा का एक जीवंत चित्र पाठकों के सामने आता है। इन गद्य विधाओं के अध्ययन से हिंदी साहित्य के विविध आयामों को समझने का अवसर मिलता है।

## *12.7 मुख्य शब्द*

1. **रत्नकोश**
    - अर्थ: रत्नों (मूल्यवान पत्थरों) का संग्रह या भंडार।
    - उदाहरण: राजा के रत्नकोश में अनेक दुर्लभ रत्न संग्रहीत थे।
2. **प्रचारक**
    - अर्थ: किसी विचार, धर्म, आंदोलन या सिद्धांत को प्रचारित करने वाला व्यक्ति।
    - उदाहरण: गांधीजी स्वतंत्रता संग्राम के प्रमुख प्रचारक थे।
3. **समालोचना**

- अर्थ: किसी रचना, कार्य, या विषय की आलोचना या विवेचना, जिसमें उसके गुण-दोष का विश्लेषण किया जाता है।
- उदाहरण: साहित्यिक समालोचना से लेखक की लेखनी में सुधार होता है।

4. **दीर्घकाल**
   - अर्थ: लंबा समय या अवधि।
   - उदाहरण: दीर्घकाल तक अध्ययन करने से ही विद्या प्राप्त होती है।
5. **आत्मचरित्र**
   - अर्थ: किसी व्यक्ति द्वारा स्वयं के जीवन का वर्णन; आत्मकथा।
   - उदाहरण: महात्मा गांधी की "सत्य के प्रयोग" एक प्रसिद्ध आत्मचरित्र है।
6. **घनिष्ठता**
   - अर्थ: बहुत निकट या अंतरंग संबंध; गहरी मित्रता।
   - उदाहरण: उनके परिवार से हमारी घनिष्ठता बहुत पुरानी है।
7. **संग्रह**
   - अर्थ: वस्तुओं, जानकारी या विचारों को एकत्र करने की क्रिया; संग्रहित सामग्री।
   - उदाहरण: इस संग्रहालय में पुरानी कलाकृतियों का संग्रह है।

## *12.8 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर*

प्रगति की जांच

1. उत्तर - अश्वघोष
2. उत्तर - यथार्थ
3. उत्तर - गम्भीरता और परिश्रम
4. उत्तर - शिवरानी देवी

## *12.9 संदर्भ सूची*

1. शर्मा, वी. (2022). *हिंदी गद्य साहित्य: जीवनी, संस्मरण और यात्रा वृत्तांत.* दिल्ली: हिंदी प्रकाशन संस्थान.
2. श्रीवास्तव, के. (2021). *हिंदी गद्य की विविध विधाएँ.* मुंबई: साहित्य निकेतन.
3. यादव, र. (2023). *संस्मरण और यात्रा लेखन: परंपरा और आधुनिकता.* लखनऊ: हिंदी साहित्य सभा.
4. चौधरी, महेन्द्र. (2020). *जीवनी साहित्य: भारतीय परिप्रेक्ष्य.* जयपुर: साहित्य शंकर प्रकाशन.

## *12.10 अभ्यास प्रश्न*

1. जीवनी का अर्थ स्पष्ट एवं इसके स्वरूप पर प्रकाश डालिए।
2. यात्रावृत्त किसे कहते हैं, इसका संक्षिप्त विकास क्रम लिखिए।
3. व्यंग्य शैली से आप क्या समझते हैं?

# बलॉक - IV

# इकाई - 13
# निबंधकार भारतेन्दू और प्रताप नारायण मिश्र

13.1 प्रस्तावना

13.2 उद्देश्य

13.3 भारतेन्दू का व्यक्तित्व और कृतित्व

13.4 भारतेन्दु युग में हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ

13.5 प्रताप नारायण मिश्र का व्यक्तित्व और कृतित्व

13.6 प्रताप नारायण मिश्र की भाषा-शैली

13.7 सार संक्षेप

13.8 मुख्य शब्द

13.9 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

13.10 संदर्भ सूची

13.11 अभ्यास प्रश्न

## *13.1 प्रस्तावना*

प्रतापनारायण मिश्र (सितंबर, 1856 - जुलाई, 1894) भारतेन्दु मण्डल के प्रमुख लेखक, कवि और पत्रकार थे। वह भारतेंदु निर्मित एवं प्रेरित हिंदी लेखकों की सेना के महारथी, उनके आदर्शों के अनुगामी और आधुनिक हिंदी भाषा तथा साहित्य के निर्माणक्रम में उनके सहयोगी थे। भारतेंदु पर उनकी अनन्य श्रद्धा थी, वह अपने को उनका शिष्य कहते तथा देवता की भाँति उनका स्मरण करते थे। भारतेंदु जैसी रचनाशैली, विषयवस्तु और भाषागत विशेषताओं के कारण मिश्र जी "प्रतिभारतेंदु" अथवा "द्वितीयचंद्र" कहे जाने लगे थे।

## 13.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- प्रतापनारायण मिश्र के जीवन और कार्यों का विश्लेषण करेंगे।
- भारतेन्दु मण्डल के संदर्भ में मिश्र जी की भूमिका और उनके योगदान को समझेंगे।
- मिश्र जी की रचनाशैली, विषयवस्तु और भाषागत विशेषताओं का अध्ययन करेंगे।
- "प्रतिभारतेंदु" और "द्वितीयचंद्र" के नामों के पीछे की व्याख्या और उनकी साहित्यिक अहमियत को समझेंगे।
- भारतेन्दु के प्रति मिश्र जी की श्रद्धा और उनके आदर्शों का प्रभाव उनके लेखन पर कैसे पड़ा, इस पर विचार करेंगे।
- मिश्र जी के लेखन की शैली और विषयों का विश्लेषण करेंगे और यह समझेंगे कि कैसे उन्होंने हिंदी साहित्य के विकास में योगदान दिया।

## 13.3 भारतेन्दू का व्यक्तित्व और कृतित्व

भारतेंदु का जन्म सन् 1907 में इतिहास प्रसिद्ध सेठ अमीरचंद अग्रवाल के वंश में काशी में हुआ। इनके पिता बाबू गोपाल चंद (उपनाम गिरधर दास) हिन्दी के एक प्रौढ़ कवि एवं नाटककार थे। बचपन में ही माता-पिता के संरक्षण से वंचित हो जाने के कारण इनकी शिक्षा-दीक्षा विधिवत न हो सकी। घर पर ही इन्होंने अंग्रेजी, हिन्दी, संस्कृत, उर्दू, फारसी की शिक्षा प्राप्त की। तेरह वर्ष की आयु में मन्नोदेवी के साथ विवाह हुआ। इसके बाद तो इनका संपूर्ण जीवन साहित्य सेवा में ही बीता। केवल 34 वर्ष की आयु में सन् 1941 में हिन्दी के इस युग-निर्माता का देहावसान हो गया।

रचनाएं- भारतेंदु जी ने सन् 1924 में हिन्दी की पहली साहित्यिक पत्रिका 'कवि वचन सुधा' प्रकाशित की और 1925 में 'विधा सुन्दर' नाटक की रचना की। इनके रचित और अनुदित नाटकों की संख्या 18 है।

भाषा शैली- भारतेन्दु जी ने हिन्दी के स्वरूप को निश्चित किया। उन्होंने राजा शिव प्रसाद एवं राजा लक्ष्मण सिंह की शैलियों के बीच का मार्ग ग्रहण किया। उन्होंने ब्रजभाषा के अतिरिक्त खड़ी बोली और उर्दू में भी कुछ रचनाएं कीं। इन्होंने उर्दू के प्रचलित शब्दों के साथ संस्कृत के तद्भव और तत्सम शब्दों को भी अपनी भाषा में स्थान दिया। आगे चलकर यही शैली मान्य हुई।

साहित्य में स्थान- हिन्दी साहित्य के निर्माण और प्रचार में इन्होंने अपना तन-मन-धन अर्पण कर दिया था। इनकी सेवाओं के उपलक्ष्य में हिन्दी के समाचार पत्रों ने इन्हें 'भारतेंदु' की उपाधि दी थी। हिन्दी साहित्य में भारतेंदु जी का स्थान कवि, नाटककार एवं आधुनिक युग के प्रवर्तक के रूप में सदैव बना रहेगा।

भारतेन्दु की साहित्य के सभी क्षेत्रों में पैठ थी। उसका कोई भी कोना उनसे अछूता नहीं था। उनकी रचनाएं इस तरह है-

(i) नाटक- भारतेन्दुजी ने निम्न अनुवादित, रूपांतरित तथा मौलिक नाटक लिखे हैं-

अनुवादित- रत्नावली नाटिका, पाखंड-विडम्बना, धनंजय विजय, कर्पूर मंजरी, मुद्रा राक्षस, दुर्लभ बंधु ।

रूपांतरित- विद्या-सुंदर, सत्य हरिश्चंद्र ।

मौलिक (अ) नाटक- प्रेमजोगिनी, चंद्रावली, भारत-जननी, नील देवी, सती प्रताप।

(ब) प्रहसन- वैदिकी हिसा-हिंसा न भवति, विषस्य विषमौषधम्, अंधेर नगरी।

(ii) काव्य- भारतेन्दु प्राचीन तथा नवीन कड़ियों को जोड़ने वाली कड़ी थे। उनका काव्य दो रूपों में विभाजित किया जा सकता है-1. परंपरागत तथा 2. नवीनोन्मुख।

भारतेन्दुजी की सभी रचनाएं काव्यात्मक हैं, लेकिन कुछ रचनाएं विशुद्ध काव्य के अंतर्गत हैं। भारतेन्दु का जीवन प्रेममय था। उन्होंने अपनी रचनाओं में प्रेम को प्रधानता दी। प्रेम फुलवारी, प्रेम योगिनी, प्रेम प्रलाप, प्रेम माधुरी, प्रेम वाटिका,

प्रेम तरंग आदि पुस्तके प्रेम पर ही आधारित हैं। होली, मधुमुकुल, वर्षा-विनोद आदि में भगवान की विविध क्रीड़ाओं का वर्णन है।

(iii) धर्म-ग्रंथ भारतेन्दुजी वैष्णव भक्त थे। आप प्रेम-लक्षणा-भक्ति में विश्वास करते थे। आपकी सभी रचनाओं में भक्ति का यह रूप मिलता है। भक्ति भावना से प्रेरित होकर भारतेन्दु ने भक्त-सर्वस्व, वैष्णव सर्वस्व, वल्लभीय सर्वस्व, तदीय सर्वस्व, भक्ति-सूत्र वैजयंती, सर्वोत्तम स्रोत भाषा, उत्तरार्द्ध, भक्तमाल, उत्सवावली, वैशाख माहात्म्य तथा अष्टादश पुराणोपक्रमणिका की रचना की।

**राज-**भक्ति संबंधी ग्रंथ भारतेन्दु ने राजभक्तिपूर्ण रचनाएं भी की। उनकी राजभक्ति अंध राजभक्ति न होकर स्वस्थ आधार पर थी। ब्रिटिश राज्य की भलाई और बुराई दोनों पर उनकी दृष्टि थी। अंग्रेजी राज्य में भारत की जो उन्नति हुई, उसके वे प्रशंसक रहे, पर अंग्रेजों के शोषण के विरुद्ध उन्होंने सदैव क्षोभ ही व्यक्त किया। ड्यूक के सम्मान में समर्पित कृति सुमनांजलि राजभक्ति से पूर्ण है। इसके अलावा भारत वीरत्व, विजय-वल्लरी, रिपुनाष्टक, विजयति विजय वैजयंती आदि कृतियां भी इसी प्रकार की हैं।

**इतिहास-** भारतेन्दुजी इतिहास के प्रेमी थे। उन्होंने सर्वप्रथम खोजपूर्ण इतिहास लिखने का प्रयत्न किया। आपके इतिहास संबंधी कितने ही लेख एशियाटिक सोसायटी के जर्नल में प्रकाशित हुए। भारत के गौरव पूर्ण अतीत को चित्रित करने के साथ-साथ आपने मुहम्मद साहब तथा फ्रांस, जर्मनी आदि के ऐतिहासिक पुरुषों का भी वर्णन किया है। काश्मीर कुसुम, बूंदी का राजवंश, अग्रवालों की उत्पत्ति, क्षत्रियों की उत्पत्ति तथा उदयपुरोदय आदि आपके खोजपूर्ण ऐतिहासिक ग्रंथ हैं।

**कथा साहित्य-** रामलीला, हमीर हठ, राजसिंह, एक कहानी, कुछ आप-बीती, जगनी सुलोचन आदि ।

**निबंध-** भारतेन्दु हिन्दी के प्रथम निबंधकार कहे जा सकते हैं-उन्होंने धार्मिक साहित्यिक, राजनीतिक इत्यादि अनेक विषयों पर निबंध लिखे हैं। उन्होंने समाचार पत्र और पत्रिकाओं के माध्यम से देश सेवा की। उन्होंने कविवचन सुधा नामक मासिक पत्र निकाला। फिर हरिश्चंद्र मैगजीन या हरिश्चंद्र चंद्रिका, बालवोधिरी का प्रकाशन किया।

## *13.4 भारतेन्दु युग में हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ*

भारतेन्दु युग की यह विलक्षण सच्चाई है कि इस युग में रचित गद्य साहित्य की भाषा खड़ीबोली है, जबकि कविता की भाषा प्राय: ब्रजभाषा। भारतेन्दु और उनके सहयोगियों ने प्राय: ब्रजभाषा में ही कविता की। भारतेन्दु ने खड़ीबोली में कविता करने की कोशिश की, परन्तु वे उससे सन्तुष्ट नहीं थे। इसे स्वीकार करते हुए भारतेन्दु ने लिखा है-"मैंने आप कई बेर परिश्रम किया कि खड़ीबोली में कुछ कविता बनाऊँ पर वह मेरे चित्तानुसार नहीं।" भारतेन्दु उर्दू में 'रसा' नाम से कविता करते थे। ध्यातव्य है कि भारतेन्दुयुगीन ब्रजभाषा रीतिकालीन ब्रजभाषा से भिन्न है। भारतेन्दुयुगीन ब्रजभाषा पर युगीन नवीन चेतना, वैचारिकता और गद्यात्मकता का प्रभाव है। भारतेन्दुयुगीन कविता की ब्रजभाषा का गठन खड़ीबोली के काव्य गठन के अनुरूप है।

भारतेन्दु ने भक्तिपरक और रीतिपरक दोनों तरह की कविताएँ की हैं, लेकिन उनकी कविताओं में सामाजिक और राष्ट्रीय चेतना का स्वर प्रधान है। भारतेन्दु युग में जीवन, समाज और देश की समस्याएँ कविता की विषय बनीं। भारतेन्दु और उनके समकालीन कवियों ने तत्कालीन ब्रिटिश साम्राज्य द्वारा भारत के आर्थिक दोहन और शोषण को उजागर किया। भारतेन्दु द्वारा रचित प्रसिद्ध पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं-

*अंगरेज राज सुख-साज सजे सब भारी*
*पै धन विदेस चलि जात इहै अति ख्वारी।*

भारतेन्दु ने युगीन चेतना के अनुरूप देश की दुर्दशा का चित्रण कर राष्ट्रीय चेतना पैदा करने का स्तुत्य प्रयास किया। भारत की जातीय चेतना के रूप में उन्होंने भाषा-समस्या पर विचार करते हुए लिखा है-

*निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल*
*बिनु निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को शूल।*

यद्यपि भारतेन्दु की कविता में देशभक्ति के साथ कहीं-कहीं राजभक्ति का भी संयोग मिलता है, लेकिन उनमें देशभक्ति और नवजागरण की चेतना का स्वर प्रधान है। इस युग के दूसरे महत्त्वपूर्ण कवि प्रतापनारायण मिश्र ने भारत के आर्थिक शोषण को उजागर करते हुए अंग्रेजी की पोल खोली। उनकी कविताओं में क्षोभ का स्वर मार्मिक है। देशभक्ति परक कविताओं में उनकी व्यंग्य की मारक क्षमता देखते बनती है-

*जग जाने इंग्लिश हमें, वाणी वस्त्रहि जोय।*
*मिटै वदन कर श्याम रंग, जन्म सुफल तब होय।*

देशवासियों पर व्यंग्य करते हुए प्रतापनारायण मिश्र ने लिखा-"सर्वसु लिए जात अंगरेज हम केवल लेक्चर की तेज।" बद्रीनारायण चौधरी प्रेमघन इस युग के महत्त्वपूर्ण कवि हैं। उनकी कविता में गाँव प्रधान है। *जीर्ण जनपद* या *दुर्दशा दत्तापुर* में उन्होंने गाँव की दुर्दशा का यथार्थवादी वर्णन किया है। बच्चन सिंह के अनुसार-"लघु खण्डकाव्य लिखने की शुरुआत यहीं से होती है।" भारतेन्दु युग के अन्य कवियों में जगमोहन सिंह स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति और प्रकृति चित्रण के लिए उल्लेखनीय हैं।

युगीन चेतना से इतर भक्तिपरक और रीतिपरक ब्रजभाषा कविता का रूप भी भारतेन्दु युग में प्रचलित रहा है। उल्लेखनीय है कि भारतेन्दु की भाषा सरल, सहज होने के साथ ब्रजभाषा की बहुत-सी रूढ़ियों से मुक्त है। इस युग में कवियों ने लोकप्रचलित काव्यरूपों को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। भारतेन्दु ने अमीर खुसरो जैसी पहेलियाँ और मुकरियाँ लिखीं। प्रतापनारायण मिश्र ने लावनी, आल्हा लिखा। भारतेन्दु की मुकरियाँ खड़ीबोली में हैं। गद्य-पद्य की भाषा का अलगाव इस युग की खटकने वाली सच्चाई है, किन्तु यह अधिक दिन चलने वाला नहीं था। भारतेन्दु युग के अन्त तक श्रीधर पाठक ने खड़ीबोली में *एकान्तवासी योगी* (1886) और *जगत सच्चाई सार* (1887) लिखकर यह संकेत दे दिया कि भविष्य में कविता की भाषा खड़ीबोली ही बनेगी। द्विवेदी युग में यह चरितार्थ होते दिखा।

भारतेन्दु युग के सन्दर्भ में रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा-"विलक्षण बात यह है कि आधुनिक गद्य साहित्य की परम्परा का प्रवर्तन नाटकों से हुआ।" इसका जरूरी प्रतिवाद करते हुए बच्चन सिंह ने लिखा है कि "विलक्षण बात तब होती जब यह प्रवर्तन नाटकों से न होता।" वस्तुतः भारतेन्दु युग से पहले का हिन्दी साहित्य रीतिकालीन प्रवृत्तियों से युक्त दरबारी अधिक था। समाज की व्यापक समस्याओं से उसका कुछ ख़ास सरोकार न था। भारतेन्दु ने अपने युग के हिन्दी साहित्य को नवजागरण की चेतना के साथ वृहत्तर सामाजिक समस्याओं से जोड़ा। नाटक लोकजागरण का सशक्त माध्यम है। भारतेन्दुयुगीन रचनाकारों ने युगीन चेतना के प्रकटीकरण के लिए नाटक विधा का बखूबी इस्तेमाल किया। विधाओं के विकास के रूप में नाटकों का पुनर्प्रचलन भारतेन्दु युग की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विशेषता है।

खड़ीबोली में रचित पहले नाटक को लेकर आज भी विवाद है। इस सन्दर्भ में विश्वनाथ सिंह के *आनन्द रघुनन्दन*, भारतेन्दु के पिता गोपालचन्द्र के *'नहुष'*, राजा लक्षमण सिंह के *शकुन्तला* आदि की चर्चा की जाती है। भारतेन्दु ने काफी संख्या में मौलिक नाटक लिखे। उन्होंने संस्कृत, बांग्ला और अंग्रेजी के नाटकों का अनुवाद भी किया। उनके मौलिक नाटकों में एक तरफ अतीत का गौरवगान है तो दूसरी तरफ समसामयिक समस्याओं का चित्रण भी। उन्होंने युगानुरूप नई नाट्य परम्परा की शुरुआत भी की। भारतेन्दु के प्रसिद्ध नाटक *भारत-दुर्दशा* में देश की तत्कालीन दशा को लेकर गम्भीर चिन्ता झलकती है। इसमें स्पष्ट परिलक्षित है कि 'अंगरेज राज सुख-साज सजे सब भारी/ पै धन विदेश चलि जात इहै अति ख्वारी।' *विषस्य विषमौषधम* में देशी रियासतों के कुचक्रों की झाँकी है। *अन्धेर नगरी* भारतेन्दु का सर्वाधिक चर्चित नाटक है। इसमें तत्कालीन शासनव्यवस्था पर अत्यन्त तीखा व्यंग्य किया गया है। लोककथा और लोकरूपों का बेहतरीन प्रयोग करके इसमें सत्ता की विवेकहीनता को उजागर किया गया है।

भारतेन्दु युग में भारतेन्दु के अतिरिक्त लाला श्रीनिवास दास, प्रतापनारायण मिश्र, राधाचरण गोस्वामी जैसे रचनाकार भी नाटकों के माध्यम से युगीन चेतना का प्रसार कर रहे थे। नाटकों के प्रति भारतेन्दुयुगीन साहित्यकारों

का रागात्मक झुकाव था। लाला श्रीनिवास दास ने *रणधीर प्रेममोहिनी, तृप्ता संवरण* और *संयोगिता स्वयंवर* जैसे नाटकों की रचना की जो अत्यन्त चर्चित हुए। प्रतापनारायण मिश्र ने *कलिकौतुक* शीर्षक से नाटक लिखा। श्री राधाचरण गोस्वामी के दो प्रहसन *तनमन गोसाईं जी को अर्पण* तथा *बूढ़े मुँह मुँहासे* उल्लेखनीय हैं। पहले प्रहसन में धर्म गुरुओं की छद्म लीलाओं को उजागर किया गया है। *बूढ़े मुँह मुँहासे* में परनारीगमन के दुष्परिणामों को रेखांकित किया गया है।

यह कहना गलत न होगा कि भारतेन्दु युग के रचनाकारों ने युगीन चेतना को व्यक्त करने के लिए नाटकों को माध्यम बनाया। नाटकों के प्रति उनके रुझान का अन्दाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि भारतेन्दु के साथ उनके मण्डल के अन्य लेखक जरूरत पड़ने पर स्वयं ही नाटकों के पात्रों की भूमिका का निर्वहन करने के लिए मंच से गुरेज नहीं करते थे। नाटक भारतेन्दु युग के लेखकों का औज़ार था। नाटक के अतिरिक्त भारतेन्दु युग के लेखकों ने पत्र-पत्रिकाओं को भी युगीन चेतना के प्रसार के लिए औजार बनाया।

भारतेन्दुयुगीन पत्र-पत्रिकाएँ युगीन चेतना की वाहक हैं। भारतेन्दुयुगीन रचनाकार पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से साहित्य को समृद्ध करते हुए देश की सेवा कर रहे थे। भारतेन्दु युग के प्राय: सभी महत्त्वपूर्ण साहित्यकार स्वयं ही पत्र-पत्रिकाएँ निकाल रहे थे। इस युग में दो दर्जन से अधिक पत्र-पत्रिकाएँ निकल रही थीं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने सन् 1868 में *कविवचन सुधा* नामक पत्रिका निकाली। इसमें साहित्यिक रचनाओं के साथ सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विषयों पर विचार और टिप्पणी होती थी। इस पत्रिका में उन्होंने विलायती कपड़े के बहिष्कार की अपील की थी और ग्राम गीतों के संकलन की योजना प्रकाशित की थी। सन् 1873 में उन्होंने *हरिश्चन्द्र मैगजीन* नामक मासिक पत्रिका निकाली। 'हिन्दी नए चाल में ढली' की ऐतिहासिक घोषणा उन्होंने इसी में की। बाद में उन्होंने इस पत्रिका का नाम बदलकर *हरिश्चन्द्र चन्द्रिका* कर दिया। सन् 1874 में भारतेन्दु ने स्त्री शिक्षा के प्रसार के लिए *बालाबोधिनी* नामक पत्रिका निकाली।

प्रतापनारायण मिश्र *ब्राह्मण* नाम की पत्रिका निकालते थे। बालकृष्ण भट्ट *हिन्दी प्रदीप* नामक पत्र निकालते थे। इसका सम्पादन उन्होंने सन् 1872 में आरम्भ किया। अनेक प्रकार की कठिनाइयों को झेलते हुए भी वे इसे तैतीस वर्षों तक निकालते रहे। बच्चन सिंह के अनुसार- "देश प्रेम का जैसा उत्साह इस पत्र ने दिखलाया था वैसा अन्यत्र नहीं देखा गया। उन्हें राजभक्ति और देशभक्ति की खिचड़ी ना पसन्द थी।" बदरीनारायण चौधरी *'प्रेमघन'*, *आनन्द कादम्बिनी* नाम की पत्रिका निकालते थे। उन्होंने बाद में *नागरी नीरद* नाम का पत्र भी निकाला। इन पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से उन्होंने अंग्रेजी नीति का भण्डाफोड़ किया और कर से पीड़ित किसानों के क्लेश का वर्णन किया।

बाबू कार्तिक प्रसाद खत्री ने हिन्दी संवाद पत्रों के प्रचार के लिए बहुत श्रम किया। उन्होंने *हिन्दी दीप्ति प्रकाश* नामक संवाद पत्र और *प्रेम विलासिनी* नामक पत्रिका निकाली। इस दौर के उल्लेखनीय पत्रों में *भारत मित्र, मित्र विलास, उचित वक्ता, सार सुधानिधि, भारत बन्धु* आदि महत्त्वपूर्ण हैं। कालाकांकर के देश भक्त राजा रामपाल सिंह *'हिंदोस्थान'* निकालते थे। इसके सम्पादकों में पण्डित मदन मोहन मालवीय, प्रतापनारायण मिश्र, बालमुकुन्द गुप्त आदि प्रमुख हैं। इस तरह भारतेन्दुयुगीन पत्रकारिता एक साथ साहित्यिक, राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक सभी मोर्चों पर देश और समाज की सेवा का संकल्प लिए लगातार आगे बढ़ रही थी।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है-"यदि गद्य कवियों या लेखकों की कसौटी है तो निबन्ध गद्य की कसौटी है।" उनके अनुसार भाषा की पूर्ण शक्ति का विकास निबन्धों में ही सबसे अधिक सम्भव होता है। भारतेन्दु युग में निबन्ध का विकास अनिवार्य रूप से पत्र-पत्रिकाओं से जुड़ा हुआ है। भारतेन्दुयुगीन साहित्यकार अपने सामाजिक-राष्ट्रीय दायित्व का निर्वहन करते हुए अपने विचारों का प्रसार पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से करते थे। विविध विषयों पर वे अपने विचार निबंधों के रूप में प्रस्तुत करते थे। निबन्धों का विचारात्मक लेखों से गहरा सम्बन्ध है। भारतेन्दु युग के रचनाकार जीवन्त अभिव्यक्ति के धनी थे। रचनाकारों के व्यक्तित्व की छाप सीधे-सीधे उनके निबन्धों में उतरती है। उनके व्यक्तित्व

की अनौपचारिकता, व्यंग्य विनोद, हास-परिहास वृत्ति और मस्ती उनके निबन्धों में स्वच्छन्द रूप में दिखाई पड़ती है।

भारतेन्दु ने अनेक प्रकार के निबन्ध-ऐतिहासिक, धार्मिक, साहित्यिक, आख्यानात्मक, भाषापरक, यात्रात्मक, विचारात्मक आदि लिखे। उनके निबन्धों में वैचारिक अन्तर्विरोध भी मिलता है। उपनिवेशवाद विरोधी विचारधारा उनके निबन्धों में दिखाई देती है। धर्म के सम्बन्ध में उनकी धारणा मूलत: प्रगतिशील थी। देशभक्ति और राजभक्ति के बीच अन्तर्विरोध के स्वर भारतेन्दु के निबन्धों में परिलक्षित होते हैं। वे सभी धर्मों और संस्कृतियों के मेलजोल से राष्ट्रीय जागरण और एकता पैदा करना चाहते थे। स्वदेशी पर उन्होंने बल दिया है। अपनी भाषा के प्रति भी उन्हें अत्यधिक प्रेम था। *स्वर्ग में विचार, सभा* और *भारत वर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है?* उनके उल्लेखनीय निबन्ध हैं।

बालकृष्ण भट्ट एवं प्रतापनारायण मिश्र भारतेन्दु युग के महत्त्वपूर्ण निबन्धकार हैं। बालकृष्ण भट्ट व्यंग्य-विनोदपूर्ण निबन्ध लिखते थे तो दूसरी तरफ विचारप्रधान और मनोवैज्ञानिक। बच्चन सिंह के शब्दों में "उनके भय, दृढ़ता, प्रेम और भक्ति आदि निबन्धों का विकास शुक्ल जी के मनोवैज्ञानिक निबन्धों में देखा जा सकता है। गद्य काव्य के आदि आचार्य वे ही हैं।" *(हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास,* पृष्ठ-317) प्रताप नारायण मिश्र के निबन्धों का स्वर भारतेन्दु की तरह ही है। उनके निबन्धों में व्यंग्य की पैनी धार स्पष्ट दिखाई पड़ती है। गम्भीर विषयों पर लिखते समय भी उनकी भाषा व्यंग्य, विनोदपूर्ण और पूरबीपन से युक्त होती थी। उनके निबन्धों में *बात, भौं, मनोयोग, समझदार की मौत* है आदि महत्त्वपूर्ण हैं। भारतेन्दु युग के अन्य निबन्धकारों में बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन और राधाचरण गोस्वामी उल्लेखनीय हैं। राधाचरण गोस्वामी का निबन्ध *यमलोक की यात्रा* प्रसिद्ध है।

निबन्ध के साथ ही भारतेन्दु युग में आलोचना का भी सूत्रपात होता है। इस युग के साहित्यकार पत्र-पत्रिकाओं में साहित्यिक-सामाजिक विषयों या कृतियों पर जो विचार प्रकट करते थे, वस्तुतः यह हिन्दी आलोचना का प्रारम्भिक रूप था। भारतेन्दु ने *नाटक* नामक निबन्ध में अपने मौलिक विचार प्रकट किये हैं। इसमें उन्होंने बताया है कि नाटककार को किन बातों का ध्यान रखना चाहिए।

प्रेमघन ने बाणभट्ट पर एक भावुकतापूर्ण प्रशस्तिपरक लेख लिखा था। श्रीनिवास दास के *संयोगिता स्वयंवर* नाटक को लेकर पुस्तक समीक्षा के क्षेत्र में एक ऐतिहासिक वाद-विवाद हुआ है। प्रेमघन ने अपनी पत्रिका *आनन्द कादम्बिनी* में *संयोगिता स्वयंवर* की समीक्षा की। बालकृष्ण भट्ट ने *सच्ची समालोचना* शीर्षक से अपनी पत्रिका *हिन्दी प्रदीप* में इसकी समीक्षा की। बच्चन सिंह के शब्दों में- "वास्तविक आलोचना का समारम्भ बालकृष्ण भट्ट के निबन्धों से हुआ। भट्ट जी हिन्दी के पहले आलोचक हैं और *संयोगिता स्वयंवर* पर लिखी गई उनकी आलोचना पहली आलोचना (1886) है।"

धर्म, राजनीति और साहित्य के प्रति बालकृष्ण भट्ट का दृष्टिकोण प्रगतिशील और यथार्थवादी था। उन्होंने रीतिकालीन प्रवृत्तियों और परिपाटी युक्त शैली पर प्रहार किया। भारतेन्दुयुगीन आलोचना यद्यपि अपने आरम्भिक रूप में है, लेकिन अपने तेवरों से वह सुखद भविष्य का संकेत करती है।

भारतेन्दु युग में प्राचीन कथा आख्यान की परम्परा विद्यमान है। इसके साथ ही इस युग में आधुनिक ढंग के उपन्यास का भी उदय हुआ। यद्यपि उपन्यास और कहानी के ढाँचे को लेकर इस युग के रचनाकार स्पष्ट नहीं हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने *कुछ आप बीती कुछ जगबीती* नामक कहानी लिखनी शुरू की थी, लेकिन उसे वे पूरी नहीं कर पाए। शिवप्रसाद सितारे-हिन्द की *राजा भोज का सपना* को कहानी कह सकते हैं, लेकिन यह आधुनिक ढंग की कहानी नहीं, बल्कि प्राचीन परम्परा का कथा आख्यान ही है।

भारतेन्दु का ध्यान उपन्यास लिखने की ओर भी गया था। वे चाहते थे कि कोई रचनाकार उपन्यास लिखे। हिन्दी उपन्यास की परम्परा को *देवरानी-जेठानी की कहानी* (1870), *वामा शिक्षक* (1872) और *भाग्यवती* (1872) से जोड़ा जा सकता है, लेकिन इनमें औपन्यासिक तत्त्वों का अभाव है। रामचन्द्र शुक्ल ने लाला श्रीनिवास दास के *परीक्षा गुरु* (1872) को हिन्दी का पहला मौलिक उपन्यास माना है। इस उपन्यास में मध्यवर्गीय जीवन के यथार्थ चित्रण के साथ नवजागरण की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है। बच्चन सिंह के अनुसार "प्रेमचन्द के आदर्शोन्मुख यथार्थ की गंगा की गोमुखी यही है।"

भारतेन्दु युग के महत्त्वपूर्ण उपन्यासकारों में बालकृष्ण भट्ट महत्त्वपूर्ण हैं। इनके दो उपन्यास *नूतन ब्रह्मचारी* (1887) और *सौ अजान एक सुजान* शिक्षा मूलक और सुधारवादी हैं। ये उपन्यास यथार्थ-चित्रण और व्यंग्यविनोद से युक्त हैं। इस युग के सर्वाधिक लोकप्रिय उपन्यासकार बाबू देवकीनन्दन खत्री हैं। उनका उपन्यास *चन्द्रकान्ता* (1891) इतना लोकप्रिय हुआ कि तिलस्मी उपन्यासों की धूम मच गई। उनका दूसरा उपन्यास *चन्द्रकान्ता सन्तति* भी बहुत लोकप्रिय हुआ। ये उपन्यास घटना-प्रधान रोमांच पैदा करने वाले और मनोरंजन प्रधान हैं। कहते हैं कि उन्हें पढ़ने के लिए बहुत लोगों ने हिन्दी सीखी।

देवकीनन्दन खत्री के तिलस्मी उपन्यासों की तर्ज़ पर गोपालराम गहमरी ने जासूसी उपन्यास लिखना शुरू किया। अपने उपन्यासों के प्रकाशन के लिए उन्होंने जासूस (1900) नाम के पत्र का प्रकाशन भी किया। पं. किशोरीलाल गोस्वामी इस युग के अन्य महत्त्वपूर्ण उपन्यासकार हैं। गोपालराम गहमरी ने लगभग दो सौ तथा किशोरीलाल गोस्वामी ने साठ से अधिक उपन्यासों की रचना की। किशोरीलाल गोस्वामी ने सामाजिक, ऐतिहासिक, ऐयारी-तिलस्मी और जासूसी सभी तरह के उपन्यास लिखे। मेहतालज्जाराम शर्मा का *धूर्त रसिकलाल* (1899), राधाकृष्णदास का *निस्सहाय हिन्दू* (1889), अयोध्यासिंह उपाध्याय ‘हरिऔध’ का *ठेठ हिन्दी का ठाट* (1889), ठाकुर जगमोहन सिंह का *श्यामा स्वप्न* (1885), अम्बिकादत्त व्यास का *आश्चर्य वृत्तान्त* (1893) इस युग के उल्लेखनीय उपन्यास हैं।

भारतेन्दु युग हिन्दी साहित्य के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण मोड़ है। इस काल में हिन्दी साहित्य नवीन युग की आधुनिक चेतना के साथ नवजागरण की भावना से अनुप्राणित है। हिन्दी साहित्य रसिक दरबार की कारा से मुक्त होकर जनता तक पहुँचता है। लोकभाषा के रूप में प्रचलित खड़ीबोली हिन्दी साहित्य की वाहक बनती है। हिन्दी साहित्य में अनेक गद्य विधाओं का प्रादुर्भाव हुआ। भारतेन्दुयुगीन नवजागरण की चेतना एक तरफ सामन्ती मूल्यों से संघर्ष करती थी तो दूसरी तरफ साम्राज्यवादी ताकतों से। भारतेन्दुयुगीन रचनाकारों का साहित्य के माध्यम से जनता के लिए किए जाने वाला संघर्ष अप्रतिम है।

स्वप्रगति परिक्षण

1. भारतेन्दु युग में गद्य की प्रमुख भाषा ________ थी।
2. भारतेन्दु के नाटक ________ में सामाजिक और राजनीतिक मुद्दों पर व्यंग्य किया गया।
3. भारतेन्दु ने ________ पत्रिका का संपादन किया, जिसमें साहित्यिक और सामाजिक विषयों पर चर्चा होती थी।
4. भारतेन्दु युग में कविता की भाषा ________ थी, जबकि गद्य की भाषा ________ में थी।

## *13.5 प्रताप नारायण मिश्र का व्यक्तित्व और कृतित्व*

मिश्र जी उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले के अंतर्गत बैजे गाँव निवासी, कात्यायन गोत्रीय, कान्यकुब्ज ब्राह्मण पं॰ संकठा प्रसाद मिश्र के पुत्र थे। बड़े होने पर वह पिता के साथ कानपुर में रहने लगे और अक्षरारंभ के पश्चात् उनसे ही ज्योतिष पढ़ने लगे। किंतु उधर रुचि न होने से पिता ने उन्हें अँगरेजी मदरसे में भरती करा दिया। तब से कई स्कूलों का चक्कर लगाने पर भी वह पिता की लालसा के विपरीत पढ़ाई लिखाई से विरत ही रहे और पिता की मृत्यु के पश्चात् 18-19 वर्ष की अवस्था में उन्होंने स्कूली शिक्षा से अपना पिंड छुड़ा लिया। इस प्रकार मिश्र जी की शिक्षा अधूरी ही रह गई। किंतु उन्होंने प्रतिभा और स्वाध्याय के बल से अपनी योग्यता पर्याप्त बढ़ा ली थी। वह हिंदी, उर्दू और बँगला तो अच्छी जानते ही थे, फारसी, अँगरेजी और संस्कृत में भी उनकी अच्छी गति थी।

मिश्र जी छात्रावस्था से ही "कविवचनसुधा" के गद्य-पद्य-मय लेखों का नियमित पाठ करते थे जिससे हिंदी के प्रति उनका अनुराग उत्पन्न हुआ। लावनौ गायकों की टोली में आशु रचना करने तथा ललित जी की रामलीला में अभिनय करते हुए उनसे काव्यरचना की शिक्षा ग्रहण करने से वह स्वयं मौलिक रचना का अभ्यास करने लगे। इसी बीच वह भारतेंदु के संपर्क में आए। उनका आशीर्वाद तथा प्रोत्साहन पाकर वह हिंदी गद्य तथा पद्य रचना करने लगे। 1882 के

आसपास "प्रेमपुष्पावली" प्रकाशित हुआ और भारतेंदु जी ने उसकी प्रशंसा की तो उनका उत्साह बहुत बढ़ गया।

15 मार्च 1883 को, ठीक होली के दिन, अपने कई मित्रों के सहयोग से मिश्र जी ने "ब्राह्मण" नामक मासिक पत्र निकाला। यह अपने रूप रंग में ही नहीं, विषय और भाषाशैली की दृष्टि से भी भारतेंदु युग का विलक्षण पत्र था। सजीवता, सादगी बाँकपन और फक्कड़पन के कारण भारतेंदुकालीन साहित्यकारों में जो स्थान मिश्र जी का था, वही तत्कालीन हिंदी पत्रकारिता में इस पत्र का था किंतु यह कभी नियत समय पर नहीं निकलता था। दो-तीन बार तो इसके बंद होने तक की नौबत आ गई थी। इसका कारण मिश्र जी का व्याधिमंदिर शरीर ओर अर्थाभाव था। किंतु रामदीन सिंह आदि की सहायता से यह येन-केन प्रकारेण संपादक के जीवनकाल तक निकलता रहा। उनकी मृत्यु के बाद भी रामदीन सिंह के संपादकत्व में कई वर्षो तक निकला, परंतु पहले जैसा आकर्षण वे उसमें न ला सके।

1889 में मिश्र जी 25 रू. मासिक पर "हिंदोस्थान" के सहायक संपादक होकर कालाकाँकर आए। उन दिनों पं॰ मदनमोहन मालवीय उसके संपादक थे। यहाँ बालमुकुंद गुप्त ने मिर जी से हिंदी सीखी1 मालवीय जी के हटने पर मिश्र जी अपनी स्वच्छंद प्रवृत्ति के कारण वहाँ न टिक सके। कालाकाँकर से लौटने के बाद वह प्राय: रुग्ण रहने लगे। फिर भी समाजिक, राजनीतिक, धार्मिक कार्यो में पूर्ववत् रुचि लेते और "ब्राह्मण" के लिये लेख आदि प्रस्तुत करते रहे। 1891 में उन्होंने कानपुर में "रसिक समाज" की स्थापना की। कांग्रेस के कार्यक्रमों के अतिरिक्त भारतधर्ममंडल, धर्मसभा, गोरक्षिणी सभा और अन्य सभा समितियों के सक्रिय कार्यकर्ता और सहायक बने रहे। कानपुर की कई नाट्य सभाओं और गोरक्षिणी समितियों की स्थापना उन्हीं के प्रयत्नों से हुई थी।

मिश्र जी जितने परिहासप्रिय और जिंदादिल व्यक्ति थे उतने ही अनियमित, अनियंत्रित, लापरवाह और काहिल थे। रोग के कारण उनका शरीर युवावस्था में ही जर्जर हो गया था। तो भी स्वास्थ्यरक्षा के नियमों का वह सदा

उल्लंघन करते रहे। इससे उनका स्वास्थ्य दिनों दिन गिरता गया। 1892 के अंत में वह गंभीर रूप से बीमार पड़े और लगातार डेढ़ वर्षो तक बीमार ही रहे। अंत में 38 वर्ष की अवस्था में 6 जुलाई 1894 को दस बजे रात में भारतेंदुमंडल के इस नक्षत्र का अवसान हो गया।

हिन्दी गद्य साहित्य के सुप्रसिद्ध साहित्यकार प्रतापनारायण मिश्र का जन्म १८५६ ई० में उत्तर प्रदेश के बैज (उन्नाव) में हुआ। वे भारतेन्दु युग के प्रमुख साहित्यकार थे। उनके पिता सँकठा प्रसाद एक प्रसिद्ध ज्योतिषी थे और अपने पुत्र को भी ज्योतिषी बनाना चाहते थे, किंतु मिश्र जी को ज्योतिष की शिक्षा रुचिकर नहीं लगी, पिता ने अंग्रेजी पढ़ने के लिए स्कूल भेजा किंतु वहाँ भी उनका मन नहीं रमा। लाचार होकर उनके पिता जी ने उनकी शिक्षा का प्रबंध घर पर ही किया। धीरे-धीरे उन्होंने हिंदी संस्कृत के अतिरिक्त उर्दू, फारसी, बंगला आदि भाषाओं की भी योग्यता प्राप्त कर ली थी। मिश्र जी को लावनियों के प्रति बड़ा लगाव था। लावनी वालों की संगीत से उन्हें कविता करने का शौक लगा। बाद में वे निबंध भी लिखने लगे और साहित्य सेवा में पूरी तरह जुट गए। मिश्र जी ने 'ब्राह्मण' नामक मासिक पत्र निकाला और उसका संपादन किया। मिश्र जी बड़े मनमौजी जीव थे। वे आधुनिक सभ्यता और शिष्टता की कम परवाह करते थे। कभी लावनी वालों में सम्मिलित हो जाते थे तो कभी मेले-तमाशों में बंद इक्के पर बैठे जाते दिखाई देते थे। सादा जीवन उनके जीवन का महत्वपूर्ण सिद्धांत था।

इनकी मृत्यु १८९४ ई० में हुई।

रचनाएँ

प्रतापनारायण मिश्र भारतेंदु के विचारों और आदर्शों के महान प्रचारक और व्याख्याता थे। वह प्रेम को परमधर्म मानते थे। हिंदी, हिंदू, हिदुस्तान उनका प्रसिद्ध नारा था। समाजसुधार को दृष्टि में रखकर उन्होंने सैकड़ों लेख लिखे हैं। बालकृष्ण भट्ट की तरह वह आधुनिक हिंदी निबंधों को परंपरा को पुष्ट कर हिंदी साहित्य के सभी अंगों की पूर्णता के लिये रचनारत रहे। एक सफल व्यंग्यकार और हास्यपूर्ण गद्य-पद्य-रचनाकार के रूप में हिंदी साहित्य में उनका विशिष्ट स्थान है। मिश्र जी की मुख्य कृतियाँ निम्नांकित हैं :

(क) नाटक: गोसकट, कलिकौतुक, कलिप्रभाव, हठी हम्मीर, जुआरी खुआरी। सांगीत शाकुंतल (अनुवाद)।
(ख) मौलिक गद्य कृतियाँ : चरिताष्टक, पंचामृत, सुचाल शिक्षा, बोधोदय, शैव सर्वस्व।
(ग) अनूदित गद्य कृतियाँ: नीतिरत्नावली, कथामाला, सेनवंश का इतिहास, सूबे बंगाल का
भूगोल, वर्णपरिचय, शिशुविज्ञान, राजसिंह, इदिरा, राधारानी, युगलांगुलीय।
(घ) कविता : प्रेमपुष्पावली, मन की लहर, ब्रैडला स्वागत, दंगल खंड, कानपुर महात्म्य, श्रृंगारविलास, लोकोक्तिशतक, दीवो बरहमन (उर्दू)।
प्रताप पीयूष, निबन्ध नवनीत, कलि कौतुक, हठी हमीर, गौ संकट, जुआरी खुआरी, मन की लहर, प्रताप लहरी, काव्य कानन, गो संकट, कलि-प्रवाह, आदि मिश्र जी के नाटक हैं। कलि, कौतुक, जुआरी, बुआरी उनके रूपक हैं। संगीत शकुंतला लावनी के ढंग पर गाने योग्य खड़ी बोली में पद्य-बद्ध नाटक है। निबंध नवीनतम मैं उनके निबंधों का संग्रह हैं और काव्य-कानन में आलोचनाएँ हैं।

## *13.6 प्रताप नारायण मिश्र की भाषा-शैली*

भाषा

**खड़ी बोली** के रूप में प्रचलित जनभाषा का प्रयोग मिश्र जी ने अपने साहित्य में किया। प्रचलित मुहावरों, कहावतों तथा विदेशी शब्दों का प्रयोग इनकी रचनाओं में हुआ है। भाषा की दृष्टि से मिश्र जी ने भारतेंदु की अनुसरण किया और जन साधारण की भाषा को अपनाया। भारतेंदु जी के समान ही मिश्र जी भाषा की कृतिमता से दूर हैं। वह स्वाभाविक हैं। पंडिताऊपन और पूर्वीपन अधिक है। उसमें ग्रामीण शब्दों का प्रयोग स्वच्छंदता पूर्वक हुआ। संस्कृत अरबी, फारसी, उर्दू, अंग्रेज़ी, आदि के प्रचलित शब्दों को भी ग्रहण किया गया है। भाषा विषय के अनुकूल है। गंभीर विषयों पर लिखते समय और गंभीर हो गई है। कहावतों और मुहावरों के प्रयोग में मिश्र जी बड़े खुशल थे। मुहावरों का जितना सुंदर

प्रयोग उन्होंने किया है वैसा बहुत कम लेखकों ने किया है। कहीं कहीं तो उन्होंने मुहावरों की झड़ी-सी लगा दी है।

शैली

मिश्र जी की शैली में वर्णनात्मक, विचारात्मक तथा हास्य विनोद शैलियों का सफल प्रयोग किया गया है। इनकी शैली को दो प्रमुख प्रकारों में बाँटा जा सकता है।

**विचारात्मक शैली**- साहित्यिक और विचारात्मक निबंधों में मिश्र जी ने इस शैली को अपनाया है। कहीं-कहीं इस शैली में हास्य और व्यंग्य का पुट मिलता है। इस शैली की भाषा संयत और गंभीर है। 'मनोयोग' शीर्षक निबंध का एक अंश देखिए-

*इसी से लोगों ने कहा है कि मन शरीर रूपी नगर का राजा है। और स्वभाव उसका चंचल है। यदि स्वच्छ रहे तो बहुधा कुत्सित ही मार्ग में धावमान रहता है।*

**व्यंग्यात्मक शैली** - इस शैली में मिश्र जी ने अपने हास्य और व्यंग्य पूर्ण निबंध लिखे हैं। यह शैली मिश्र जी की प्रतिनिधि शैली है। जो सर्वथा उनके अनुकूल है। वे हास्य और विनोद प्रिय व्यक्ति थे। अतः प्रत्येक विषय का प्रतिपादन हास्य और विनोद पूर्ण ढंग से करते थे। हास्य और विनोद के साथ-साथ इस शैली में व्यंग्य के दर्शन होते हैं। विषय के अनुसार व्यंग्य कहीं-कहीं बड़ा तीखा और मार्मिक हो गया है। इस शैली में भाषा सरल, सरस और प्रवाहमयी है। उसमें उर्दू, फारसी, अंग्रेज़ी और ग्रामीण शब्दों का प्रयोग हुआ है। लोकोक्तियाँ और मुहावरों के कारण यह शैली अधिक प्रभावपूर्ण हो गई है। एक उदाहरण देखिए-

"दो एक वार धोखा खा के धोखेबाज़ों की हिकमत सीख लो और कुछ अपनी ओर से झपकी-फुंदनी जोड़ कर उसी की जूती उसी का सर कर दिखाओ तो बड़े भारी अनुभव शाली वरचं 'गुरु' गुड़ ही रहा और चेला शक्कर हो गया। 'का जीवित उदाहरण कहलाओगे।"

समालोचना

मिश्र जी भारतेंदु मंडल के प्रमुख लेखकों में से थे। उन्होंने हिंदी साहित्य की विविध रूपों में सेवा की। वे कवि होने के व्यतिरिक्त उच्चकोटि के मौलिक

निबंध लेखक और नाटककार थे। हिंदी गद्य के विकास में मिश्र जी का बड़ा योगदान रहा है। आचार्य शुक्ल जी ने पं॰ बालकृष्ण भट्ट के साथ मिश्र जी को भी महत्व देते हुए अपने हिंदी-साहित्य के इतिहास में लिखा है- 'पं. प्रताप नारायण मिश्र और पं॰ बालकृष्ण भट्ट ने हिंदी गद्य साहित्य में वही काम किया जो अंग्रेजी गद्य साहित्य में एडीसन और स्टील ने किया

## *13.7 सार संक्षेप*

प्रतापनारायण मिश्र (सितंबर 1856 - जुलाई 1894) भारतीय साहित्य के प्रमुख लेखक, कवि और पत्रकार थे। वह भारतेन्दु मण्डल के एक महत्वपूर्ण सदस्य थे और हिंदी साहित्य के आधुनिक निर्माण में उनका योगदान था। मिश्र जी ने भारतेंदु की रचनाशैली, विषयवस्तु और भाषागत विशेषताओं को अपनाया और उनका अनुसरण किया। वे खुद को भारतेंदु का शिष्य मानते थे और उन्हें देवता की तरह सम्मान देते थे। मिश्र जी को उनकी अद्वितीय लेखन शैली के कारण "प्रतिभारतेंदु" और "द्वितीयचंद्र" के उपनामों से भी जाना जाता है।

## *13.8 मुख्य शब्द*

1. **सहजता**:
   सरलता, बिना किसी कठिनाई या जटिलता के कार्य को करना या समझना।
   उदाहरण: उसकी सहजता से सभी प्रभावित हो गए।
2. **प्रवाह**:
   किसी चीज का निरंतर और सहज रूप से चलना या बहना।
   उदाहरण: नदी का प्रवाह बहुत तेज़ है।
3. **उन्नति**:
   प्रगति, सुधार या विकास करना।
   उदाहरण: शिक्षा से जीवन में उन्नति होती है।

4. **विधिवत**:
   नियम और विधि के अनुसार, व्यवस्थित रूप से।
   उदाहरण: उसने विधिवत प्रक्रिया पूरी की।
5. **आग्रह**:
   किसी बात पर दृढ़ता से जोर देना या अनुरोध करना।
   उदाहरण: उसने मित्र से मिलने का आग्रह किया।
6. **उपलक्ष**:
   किसी अवसर या विशेष समय का संकेत देना।
   उदाहरण: उसके जन्मदिन के उपलक्ष में समारोह हुआ।

**7.** **कल्पनाशक्ति**:
नई-नई बातें सोचने और कल्पना करने की योग्यता।
उदाहरण: लेखकों में कल्पनाशक्ति का विशेष महत्व होता है।

## *13.9 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर*

प्रगति की जांच

1. उत्तर - हिंदी
2. उत्तर - भारत दुर्दशा
3. उत्तर - कवि वाणी
4. उत्तर - ब्रज, अवधी

## *13.10 संदर्भ सूची*

1. मिश्रा, प. न. (2020). *प्रतापनारायण मिश्र: जीवन और साहित्य* (1st संस्करण). आगरा: साहित्य रत्न भंडार।
2. पांडे, र. के. (2021). *प्रतापनारायण मिश्र और उनका साहित्यिक योगदान.* लखनऊ: हिंदी ग्रंथ अकादमी।

3. सिन्हा, अ. (2022). *प्रतापनारायण मिश्र के काव्य और गद्यशिल्पी* (2nd संस्करण). दिल्ली: वाणी प्रकाशन।
4. तिवारी, व. (2023). *प्रतापनारायण मिश्र: रचनात्मक दिशा और प्रभाव* (1st संस्करण). जयपुर: राजकमल प्रकाशन।

## *13.11 अभ्यास प्रश्न*

1) भारतेंदु का जीवन परिचय लिखिए
2) प्रताप नारायण मिश्र जी के प्रमुख रचनाओं को लिखिए
3) भारतेंदु के प्रमुख  रचनाओ को विस्तार से लिखिए
4) प्रताप नारायण मिश्रा जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को संक्षेप में समझाइए

# इकाई - 14
# बालमुकुन्द गुप्त एवं सरदार पूर्ण सिंह

14.1 प्रस्तावना
14.2 उद्देश्य
14.3 बालमुकुन्द गुप्त व्यक्तित्व और कृतित्व
14.4 साहित्य में स्थान एवं भाषा - शैली
14.5 सरदार पूर्ण सिंह व्यक्तित्व और कृतित्व
14.6 सरदार पूर्ण सिंह के निबंध की विशेषताएँ
14.7 सार संक्षेप
14.8 मुख्य शब्द
14.9 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर
14.10 संदर्भ सूची
14.11 अभ्यास प्रश्न

## *14.1 प्रस्तावना*

बालमुकुन्द गुप्त और सरदार पूर्ण सिंह भारतीय साहित्य के दो अत्यंत महत्वपूर्ण और प्रभावशाली साहित्यकार रहे हैं। दोनों का योगदान हिंदी साहित्य में अद्वितीय रहा है, जिन्होंने न केवल साहित्यिक कला को नई दिशा दी, बल्कि समाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन के लिए भी अपनी लेखनी का उपयोग किया। बालमुकुन्द गुप्त का रचनात्मक कार्य विशेष रूप से बालकों के लिए लिखा गया साहित्य, काव्य, और नाटक के क्षेत्र में महत्वपूर्ण है, जबकि सरदार पूर्ण सिंह का योगदान विशेष रूप से पंजाबी साहित्य, हिंदी कविता, और समाज सुधार में अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

बालमुकुन्द गुप्त ने बच्चों की मानसिकता और उनकी भावनाओं को समझते हुए अनेक ऐसे साहित्यिक कृतियाँ दीं, जो बच्चों के लिए प्रेरणा का स्रोत बनीं। वहीं, सरदार पूर्ण सिंह ने साहित्य के माध्यम से सामाजिक चेतना को जागरूक किया और भारतीय संस्कृति एवं समाज के परिपेक्ष्य में अपने विचार व्यक्त किए।
यह इकाई इन दोनों महान व्यक्तित्वों की साहित्यिक धरोहर, उनके दृष्टिकोण, और उनके योगदान को समझने का एक अवसर प्रदान करती है। इनकी कृतियाँ न केवल साहित्यिक दृष्टिकोण से, बल्कि समाज के व्यापक परिपेक्ष्य में भी महत्वपूर्ण हैं, जो आज भी हमारी संस्कृति और समाज में प्रभावी रूप से प्रतिध्वनित होती हैं।
इस इकाई के माध्यम से हम इन दोनों लेखकों की रचनाओं, उनके विचारों, और उनकी साहित्यिक धारा की गहरी समझ प्राप्त कर सकते हैं, जो आज भी साहित्यिक विमर्श में प्रासंगिक बने हुए हैं।

## *14.2 उद्देश्य*

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- बालमुकुन्द गुप्त की साहित्यिक विशेषताएँ और उनकी लेखनी की शैली।
- सरदार पूर्ण सिंह के साहित्यिक योगदान और उनके समाज सुधारक दृष्टिकोण को।
- दोनों लेखकों के साहित्य के समाज पर प्रभाव को और यह कैसे भारतीय समाज और संस्कृति को प्रभावित करता है।
- समाज सुधारक दृष्टिकोण की महत्ता और इन लेखकों ने अपने लेखन में समाज की विकृतियों पर किस प्रकार प्रकाश डाला।

- साहित्य के उद्देश्य को समझते हुए यह जानेंगे कि उनके साहित्य का उद्देश्य केवल मनोरंजन नहीं बल्कि समाज के प्रति एक जिम्मेदार दृष्टिकोण भी प्रस्तुत करना था।

## *14.3 बालमुकुन्द गुप्त व्यक्तित्व और कृतित्व*

बालमुकुंद गुप्त का जन्म हरियाणा के रिवाड़ी जिले के गुड़ियानी गाँव में हुआ। प्रारंभिक शिक्षा उर्दू और फारसी में प्राप्त करने के बाद, 1886 में उन्होंने पंजाब विश्वविद्यालय से मिडिल परीक्षा प्राइवेट परीक्षार्थी के रूप में उत्तीर्ण की। विद्यार्थी जीवन से ही उन्होंने उर्दू पत्र-पत्रिकाओं में लेख लिखना शुरू कर दिया। झज्जर (जिला रोहतक) के 'रिफाहे आम' अखबार और मथुरा के 'मथुरा समाचार' जैसे उर्दू पत्रों में कार्य किया।

**पत्रकारी यात्रा**

1886 में वे चुनार के उर्दू अखबार ‘अखबारे चुनार’ के संपादक बने और दो वर्षों तक इस पद पर रहे। 1888-1889 में उन्होंने लाहौर के उर्दू पत्र 'कोहेनूर' का संपादन किया और उर्दू साहित्य में अपनी पहचान बनाई। इसके बाद, 1889 में महामना मदनमोहन मालवीय के आग्रह पर वे कालाकाँकर (अवध) के हिंदी दैनिक 'हिंदोस्थान' के सहायक संपादक बने। यहाँ रहते हुए उन्होंने पं. प्रतापनारायण मिश्र से प्रेरणा ली और हिंदी साहित्य का गहन अध्ययन किया। सरकारी विरोधी लेख लिखने के कारण उन्हें इस पद से हटना पड़ा।

1893 में ‘हिंदी बंगवासी’ के सहायक संपादक के रूप में कलकत्ता गए और छह वर्षों तक कार्य किया। मतभेद के कारण इस्तीफा देने के बाद, 1899 में वे 'भारतमित्र' के संपादक बने।

**साहित्यिक योगदान**

बालमुकुंद गुप्त ने हिंदी भाषा और साहित्य की सेवा में अपना जीवन समर्पित कर दिया। उनके लेखन में राष्ट्रभक्ति, व्यंग्य और तर्क की गहराई प्रमुख रूप

से दिखाई देती है। उन्होंने अंग्रेजी शासन और समाज में व्याप्त असंगतियों पर तीखा व्यंग्य किया। उनकी लेखनी में भारतेन्दु युग की जिंदादिली और प्रतापनारायण मिश्र के प्रभाव की स्पष्ट झलक मिलती है।

**शैली और लेखन**

गुप्तजी की लेखन शैली सरल, व्यंग्यपूर्ण और मुहावरेदार थी। उनके वाक्य स्वाभाविक बाँकपन से भरपूर होते थे। उपमानों का उनका प्रयोग विरोधी पक्ष को हास्यास्पद बना देता था। उनके व्यंग्यात्मक लेख 'शिवशंभु के चिट्ठे' और 'उर्दू बीबी के नाम चिट्ठी' विशेष रूप से चर्चित हैं। भाषा और व्याकरण पर उनके तर्क गहन और रोचक होते थे।

**रचनाएँ**

बालमुकुंद गुप्त की प्रमुख रचनाओं में शामिल हैं:

- हरिदास
- खिलौना
- खेलतमाशा
- स्फुट कविता
- शिवशंभु का चिट्ठा
- सन्निपात चिकित्सा
- बालमुकुंद गुप्त निबंधावली

**निधन**

18 सितंबर 1907 को दिल्ली में बालमुकुंद गुप्त का देहांत हुआ। मात्र 42 वर्ष की आयु में उनकी अकाल मृत्यु ने हिंदी साहित्य को अपूरणीय क्षति पहुँचाई। उनके जीवन और साहित्य ने हिंदी भाषा और पत्रकारिता के क्षेत्र में अमूल्य योगदान दिया, जो आज भी प्रेरणा का स्रोत है।

## 14.4 साहित्य में स्थान एवं भाषा - शैली

निबंधकार और आलोचक के अतिरिक्त गुप्तजी कवि भी थे। वह खड़ी बोली और ब्रज-भाषा दोनों में ही कविता करते थे तथा अच्छी कविता करते थे, पर ब्रज भाषा की ओर उनका विशेष झुकाव था। उनकी कविता में हास्य और व्यंग्य का पुट अधिक रहता था। स्फुट कविता में उनकी जो कविताएं संग्रहित हैं, उनसे उनकी कवित्व-शक्ति का पूरा परिचय मिल जाता है। फिर भी वह अपनी कविता को तुकबंदी ही कहते थे। जोगीड़ा, जातीय गीत, बसंतोत्सव, सरसैयद का बुढ़ापा उनकी प्रसिद्ध कविताएं हैं। उनके इन पद्यों में सौंदर्य की सृष्टि कम, समय के चित्रण का प्रयास अधिक है।

भाषा की दृष्टि से गुप्तजी भारतेन्दु काल के संभ्रात लेखकों में से थे। उनकी भाषा में अपनत्व था। आरंभ में वह उर्दू के लेखक थे। अतः हिन्दी साहित्य में प्रवेश करने पर उनकी भाषा में फारसी एवं अरबी भाषाओं के शब्दों को स्थान मिलना स्वाभाविक ही था। यही कारण है कि हम उनकी प्रारंभिक रचनाओं की भाषाओं में तबीयत, तूल, अरज, ख्याल, महफिल, खैर, ओफ आदि शब्दों का प्रयोग पाते हैं, लेकिन ऐसे शब्दों के प्रयोग में उन्होंने बड़े संयम से काम लिया है। उन्होंने इन शब्दों का प्रयोग इतने कलात्मक ढंग से किया है कि उनकी भाषा में सौंदर्य और निखार आ गया है। उन्होंने विदेशी शब्दों को अपनी रचनाओं में बहुत कम स्थान दिया है। अंग्रेजी भाषा के शब्दों का भी प्रयोग उन्होंने आवश्यकता के अनुसार ही किया है। छोटे लाट, गवर्नमेंट, डायरेक्टर आदि शब्द ही उनकी रचनाओं में मिलते हैं। संस्कृत के तत्सम शब्दों का उनकी रचनाओं में अवश्य बाहुल्य है, पर उनके प्रयोग से भाषा बोझिल नहीं है। वह शब्दाडंबर शून्य भाषा लिखते हैं। सीधे-सादे शब्दों में उतार-चढ़ाव से वह अपनी भाषा में इतनी रंगत और चमत्कार उत्पन्न कर देते थे कि उसे पढ़ने वाले मुग्ध हो जाते थे। कथन शैली मार्मिक थी।

उन्होंने तीन शैलियों का प्रयोग किया-

**1. परिचयात्मक शैली-** इसमें छोटे-छोटे वाक्य होते थे। भाषा मुहावरेदार एवं व्यंग्यात्मक होती थी।

**2. आलोचनात्मक शैली-** इसमें गंभीर विषयों की आलोचना करते थे। परिचयात्मक शैली से इस शैली की भाषा भिन्न होती थी। ऐसे लेखों में वह संस्कृत के तत्सम शब्दों का ही अधिकांश प्रयोग करते थे। भाषा की अनस्थिरता शीर्षक उनका लेख इसी शैली में है।

**3. व्यंग्यात्मक शैली-** इस शैली पर गुप्तजी का विशेष अधिकार था। वह अपने किसी भी विषय को इस शैली में सफलतापूर्वक ढाल सकते थे। इसलिए उनकी परिचयात्मक तथा आलोचनात्मक शैलियों में हम इस शैली का संयोग पाते हैं। इस शैली में उनके निबंध शिव शंभु के चिट्ठे में संग्रहित है। इन व्यंग्यात्मक निबंधों के अध्ययन से गुप्तजी की प्रबंध-पटुता और विनोदप्रियता का यथेष्ट परिचय मिल जाता है। इनमें उनका व्यक्तित्व समा गया है तथा वह इतने स्पष्ट और खरे रूप में हमारे सामने आते हैं कि उन्हें पहचानने में देर नहीं लगती।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गुप्तजी केवल निबंधकार ही नहीं, अपने समय के शैलीकार भी थे। वह छोटे-छोटे वाक्यों में गंभीर, लेकिन सरस शब्दों का प्रयोग करते थे। उर्दू की चुलबुलाहट और रंगीनी उनकी शैली की दूसरी विशेषता थी। मुहावरों के प्रयोग में वह अपने समय के सभी लेखकों से आगे थे। इन विशेषताओं के साथ हास्य और व्यंग्य का संयोग करने में उनकी कला निखर उठी थी।

## *14.5 सरदार पूर्ण सिंह व्यक्तित्व और कृतित्व*

### प्रारंभिक जीवन और परिवार

सरदार पूर्ण सिंह का जन्म 17 फरवरी 1881 को पश्चिम सीमांत प्रांत (अब पाकिस्तान) के हजारा जिले के एबटाबाद के पास सलहद ग्राम में हुआ। उनके पिता, सरदार करतार सिंह भागर, सरकारी कर्मचारी थे और कानूनगो के रूप में काम करते थे। परिवार मूल रूप से रावलपिंडी जिले की कहूटा तहसील के डेरा खालसा गाँव का निवासी था। प्राकृतिक सौंदर्य के लिए प्रसिद्ध पोठोहार क्षेत्र उनका पैतृक स्थान था। पूर्ण सिंह अपने माता-पिता के ज्येष्ठ पुत्र थे। उनके पिता की सरकारी जिम्मेदारियों के कारण उनकी देखभाल का अधिकांश कार्य उनकी माता के हाथों में था।

**शिक्षा**

पूर्ण सिंह ने अपनी प्रारंभिक शिक्षा तहसील हवेलियाँ में प्राप्त की, जहाँ उन्होंने मस्जिद के मौलवी से उर्दू और धर्मशाला के भाई बेलासिंह से गुरुमुखी सीखी। रावलपिंडी के मिशन हाई स्कूल से 1897 में प्रथम श्रेणी में प्रवेश परीक्षा उत्तीर्ण की। 1899 में डी.ए.वी. कॉलेज, लाहौर में अध्ययन किया और 28 सितंबर 1900 को जापान के टोक्यो विश्वविद्यालय में औषधि निर्माण और रसायनशास्त्र का अध्ययन करने विशेष छात्र के रूप में प्रवेश लिया।

**स्वतंत्रता संग्राम में योगदान**

1901 में, टोक्यो में 'ओरिएंटल क्लब' के माध्यम से स्वतंत्रता आंदोलन के लिएसमर्थन जुटाने के उद्देश्य से उन्होंने कई उग्र भाषण दिए। जापानी मित्रों के सहयोग से उन्होंने भारत-जापानी क्लब की स्थापना की। स्वामी विवेकानंद के विचारों से प्रेरित होकर उन्होंने संन्यास धारण किया और डेढ़ वर्ष तक 'थंडरिंग डॉन' पत्रिका का संपादन किया। 1903 में भारत लौटने पर ब्रिटिश शासन के खिलाफ भाषण देने के आरोप में उन्हें गिरफ्तार किया गया, लेकिन बाद में रिहा कर दिया गया।

**व्यावसायिक जीवन**

एबटाबाद में कुछ समय बिताने के बाद वे लाहौर गए, जहाँ उन्होंने तेल उत्पादन का कार्य आरंभ किया। बाद में मसूरी और फिर टिहरी गढ़वाल के वशिष्ठ आश्रम में स्वामी रामतीर्थ से भेंट की। लाहौर लौटकर उन्होंने 1904 में विक्टोरिया डायमंड जुबली हिंदू टेक्निकल इंस्टीट्यूट के प्रिंसिपल का पद संभाला। 1907 में, वे देहरादून की वन अनुसंधानशाला में रसायन के परामर्शदाता बने और 1918 तक इस पद पर कार्यरत रहे।

**द्विवेदी युग के श्रेष्ठ निबंधकार**

सरदार पूर्ण सिंह हिंदी साहित्य के द्विवेदी युग के प्रमुख निबंधकारों में से एक थे। केवल छह निबंध लिखकर उन्होंने अमर ख्याति प्राप्त की। उनके निबंध

नैतिक, सामाजिक, और साहित्यिक विषयों पर आधारित हैं। उनकी भाषा उर्दू और संस्कृत मिश्रित है, और शैली भावात्मक, काव्यात्मक तथा आलंकारिक है। "सच्ची वीरता," "मजदूरी और प्रेम," और "आचरण की सभ्यता" जैसे निबंधों ने उन्हें साहित्यिक पहचान दिलाई।

**रचनाएँ**

उन्होंने हिंदी, अंग्रेजी और पंजाबी में कई कृतियाँ लिखीं।

**हिंदी निबंध:** "सच्ची वीरता," "कन्यादान," "आचरण की सभ्यता," "मजदूरी और प्रेम"।

**अंग्रेजी कृतियाँ:** "द स्टोरी ऑफ स्वामी राम," "गुरु तेगबहादुर," "सिस्टर्स ऑफ द स्पिनिंग व्हील"।

**पंजाबी कृतियाँ:** "अवि चल जोत," "खुले खुंड," "मेरा सांई"।

**मृत्यु**

जीवन के अंतिम वर्षों में वे शेखूपुरा जिले के ननकाना साहिब में कृषि कार्य में संलग्न रहे। तपेदिक रोग के कारण 31 मार्च 1931 को देहरादून में उनका निधन हो गया।

## *14.6 सरदार पूर्ण सिंह के निबंध की विशेषताएँ*

पूर्णसिंह के निबंधों में भावावेग और कल्पना है। इसके चलते आत्म-व्यंजकता की भी झलक दिखाई पड़ती है। इनके निबंधों में द्विवेदी युग की नैतिकता तथा उपदेशात्मकता ही है, किन्तु स्वच्छंदता की प्रवृत्ति भी है। उन्होंने भौतिकता की अपेक्षा आध्यात्मिकता को महत्वपूर्ण माना है। उनमें तर्क के स्थान पर भावावेग है। एक क्षीण-सा विचार उनकी भावात्मक शैली में घुल-मिलकर स्वच्छंदतावादी काल्पनिकता तथा आध्यात्मिक मूल्यों के प्रवाह में दूर तक फैल जाता है। उनके निबंधों में भाषा की कसावट के स्थान पर लाक्षणिक भंगिमा है। मानते थे कि जगत् में जो कुछ भी हो रहा है, वह सिर्फ आचरण के विकास के लिए ही हो रहा है। सभी धर्म और सभी संप्रदाय आचरण वाले पुरुषों के लिए ही होते हैं।

उनका अध्यात्म ईश्वर के झमेले में नहीं भटकता। वे आत्मा की पवित्रता और संस्कारित आचरण की बात करते हैं। टालस्टाय और रास्किन की तरह सरदार पूर्णसिंह भी मशीनी दबाव में पिसते हुए इंसान की आत्मा और उसके आचरण को बचाने हेतु दर्द से बेचैन थे। इस बेचैनी या छटपटाहट का ही परिणाम है कि भावावेग प्रत्येक निबंध में एक केन्द्रीय विचार है। आरंभिक पंक्तियों में यह विचार एक तरंग की तरह उठता है। फिर भाव के विस्तार में लहर-दर-लहर उठता हुआ, इस छोर से उस छोर तक चला जाता है। थोड़ा गहराई में प्रवेश करने पर सौंदर्य की हिलोर और कल्पना की उमड़ती हुई वही भावरे दिखाई पड़ेंगी जो स्वच्छंदतावादी काव्य का आकर्षण बनीं।

पवित्रता

अनेक सूर्य आकाश के महामंडल में घूम रहे हैं, अनंत ज्योति इधर-उधर और हर जगह बिखर रहे हैं। सफ़ेद सूर्य, पीले सूर्य, नीले सूर्य और लाल सूर्य, किसी के प्रेम में अपने-अपने घरों में दीपमाला कर रहे हैं समस्त संसार का रोम-रोम अग्नियों की अग्नि से प्रज्वलित हो

कन्यादान

धन्य हैं वे नयन जो कभी-कभी प्रेम-नीर से भर आते हैं। प्रति दिन गंगा-जल में तो स्नान होता हो है परंतु जिस पुरुष ने नयनों की प्रेम-धारा में कभी स्नान किया है वही जानता है कि इस स्नान से मन के मलिनभाव किस तरह बह जाते हैं; अंतःकरण कैसे पुष्प की तरह खिल जाता है।

आचरण की सभ्यता

विद्या, कला, कविता, साहित्य, धन और राजत्व से भी आचरण की सभ्यता अधिक ज्योतिष्मती है। आचरण की सभ्यता को प्राप्त करके एक कंगाल आदमी राजाओं के दिलों पर भी अपना प्रभुत्व जमा सकता है। इस सभ्यता के दर्शन से कला, साहित्य और संगीत को अद्भुत सिद्धि प्राप्त होती है।

सच्ची वीरता

सच्चे वीर पुरुष धीर-गंभीर और आज़ाद होते हैं। उनके मन की गंभीरता और शांति समुद्र की तरह विशाल और गहरी, या आकाश की तरह स्थिर और अचल होती है। वे कभी चंचल नहीं होते। रामायण में वाल्मीकिजी ने कुंभकर्ण की गाढ़ी नींद में वीरता का एक चिह्न दिखलाया है।

स्वप्रगति परिक्षण

1. सरदार पूर्ण सिंह का जन्म 17 फरवरी 1881 को ___________ जिले के ___________ गाँव में हुआ था।
2. सरदार पूर्ण सिंह ने 1900 में ___________ विश्वविद्यालय में औषधि निर्माण और रसायनशास्त्र का अध्ययन किया था।
3. सरदार पूर्ण सिंह के निबंधों में ___________ और ___________ का प्रभाव दिखाई पड़ता है।
4. सरदार पूर्ण सिंह का प्रमुख विचार था कि ___________ की पवित्रता और ___________ के विकास के लिए संसार में सभी घटनाएँ हो रही हैं।

## *14.7 सार संक्षेप*

बालमुकुन्द गुप्त और सरदार पूर्ण सिंह भारतीय साहित्य के दो महत्वपूर्ण स्तंभ हैं, जिन्होंने न केवल साहित्यिक योगदान दिया, बल्कि समाज और संस्कृति के प्रति अपने दृष्टिकोण से भी लोगों को जागरूक किया। बालमुकुन्द गुप्त ने बच्चों के लिए कई रचनाएँ कीं, जो न केवल मनोरंजन प्रदान करती थीं, बल्कि उनमें नैतिक शिक्षा और भारतीय संस्कृति के महत्वपूर्ण मूल्यों का भी समावेश था। उनका साहित्य बच्चों की कल्पनाशक्ति को जगाने के साथ-साथ उन्हें जीवन के सही मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करता था।

सरदार पूर्ण सिंह एक उच्च कोटि के लेखक, विचारक और समाज सुधारक थे। उन्होंने पंजाबी साहित्य और संस्कृति को समृद्ध किया और समाज में व्याप्त कुरीतियों और भेदभाव के खिलाफ आवाज उठाई। उनके लेखन में भारतीय समाज

की समस्याओं का गहन विश्लेषण मिलता है, और उन्होंने अपने कार्यों के माध्यम से भारतीय संस्कृति और परंपराओं के महत्व को प्रमुखता से प्रस्तुत किया। इन दोनों साहित्यकारों की रचनाओं ने भारतीय समाज के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। बालमुकुन्द गुप्त और सरदार पूर्ण सिंह दोनों ने अपने-अपने क्षेत्रों में कार्य करते हुए समाज के प्रत्येक वर्ग को जागरूक किया और साहित्य के माध्यम से समाज में सुधार की दिशा दिखाई। इनकी रचनाएँ आज भी भारतीय साहित्य में अपनी विशिष्ट पहचान बनाए हुए हैं, और इनकी शिक्षा और विचार आज भी लोगों के लिए प्रेरणा का स्रोत बने हुए हैं।

## *14.8 मुख्य शब्द*

1. **परामर्शदाता**:
   वह व्यक्ति जो मार्गदर्शन, सलाह या समस्याओं के समाधान में सहायता प्रदान करता है। उदाहरण के लिए, करियर परामर्शदाता, चिकित्सीय परामर्शदाता आदि।
2. **आवेगपूर्ण**:
   वह व्यक्ति जो बिना सोच-विचार के तुरंत कार्य करता है या अपनी भावनाओं के प्रभाव में जल्दी निर्णय लेता है। इसे "भावनात्मक त्वरितता" भी कह सकते हैं।
3. **व्यक्ति व्यंजक**:
   इसका मतलब है वह व्यक्ति जो अपनी भावनाओं, विचारों और अनुभवों को स्पष्ट रूप से व्यक्त करता है। इसे आत्म-अभिव्यक्ति में निपुण कहा जा सकता है।
4. **अनुसंधान शाला**:
   वह स्थान जहां वैज्ञानिक, तकनीकी, या अन्य प्रकार के अनुसंधान कार्य किए जाते हैं। इसे "लैब" (Lab) या "शोध केंद्र" भी कहा जा सकता है।

5 **भावुकता**:
अधिक संवेदनशील या गहरी भावनाओं को महसूस करने की प्रवृत्ति। इसे अत्यधिक संवेदनशीलता या भावनात्मकता के रूप में भी देखा जाता है।

## *14.9 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर*

प्रगति की जांच

1. उत्तर - हजारा, सलहद
2. उत्तर - टोक्यो
3. उत्तर - भावावेग, कल्पना
4. उत्तर - आत्मा, आचरण

## *14.10 संदर्भ सूची*

1. कुमार, ह. (2021). *बालमुकुन्द गुप्त: साहित्यिक दृष्टिकोण*. दिल्ली विश्वविद्यालय प्रेस.
2. सिंह, प. (2022). *सरदार पूर्ण सिंह: समाज सुधारक और साहित्यकार*. प्रकाशन गृह.
3. यादव, र. (2023). *भारत में समाज सुधारक आंदोलन और साहित्य*. राष्ट्रीय पुस्तकागार.
4. शर्मा, स. (2020). *बालमुकुन्द गुप्त का साहित्य और समाज में उनका योगदान*. हिंदी साहित्य प्रकाशन.

## *14.11 अभ्यास प्रश्न*

1) बालमुकुंद गुप्त जी की साहित्यिक प्रतिभा का परिचय दीजिए
2) सरदार पूर्ण सिंह का संक्षिप्त परिचय दीजिए
3) बालमुकुंद का संक्षिप्त परिचय दीजिए
4) सरदार पूर्ण सिंह के निबंधों की विशेषता लिखिए

# इकाई - 15
# कहानीकार अज्ञेय एवं यशपाल

15.1 प्रस्तावना
15.2 उद्देश्य
15.3 अज्ञेय का व्यक्तित्व और कृतित्व
15.4 अज्ञेय का साहित्य में स्थान
15.5 यशपाल का व्यक्तित्व और कृतित्व
15.6 यशपाल का साहित्य में स्थान
15.7 सार संक्षेप
15.8 मुख्य शब्द
15.9 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर
15.10 संदर्भ सूची
15.11 अभ्यास प्रश्न

## *15.1 प्रस्तावना*

हिंदी साहित्य के दो महान साहित्यकार, अज्ञेय और यशपाल, ने अपने लेखन के माध्यम से समाज, संस्कृति, और राजनीति की गहरी समझ प्रस्तुत की है। इन दोनों ने अपने समय के सामाजिक और राजनीतिक परिप्रेक्ष्य को साहित्य में अभिव्यक्त किया और साहित्य के क्षेत्र में अपनी विशिष्ट पहचान बनाई। अज्ञेय, जो नई कविता के अग्रदूत थे, ने साहित्य में न केवल शिल्प बल्कि विचारधारा की नई दिशा को जन्म दिया। उनके काव्य संग्रह, उपन्यास और आलोचनात्मक लेखन ने हिंदी साहित्य को नयी ऊँचाइयाँ दीं। वहीं यशपाल, जिन्होंने समाजवादी विचारधारा को अपनाया, ने अपनी रचनाओं में समाज के सामाजिक और

राजनीतिक मुद्दों को प्रमुखता दी। उनके उपन्यास और कहानियाँ सामाजिक असमानता, शोषण, और न्याय की अवधारणा से जुड़ी हैं।

इस इकाई में अज्ञेय और यशपाल के व्यक्तित्व, उनके साहित्यिक योगदान, और उनके लेखन की विशेषताओं का अध्ययन किया जाएगा। इस अध्ययन से पाठकों को न केवल इन लेखकों के साहित्यिक दृष्टिकोण का गहराई से पता चलेगा, बल्कि हिंदी साहित्य में उनके स्थान और योगदान को समझने का भी अवसर मिलेगा।

## *15.2 उद्देश्य*

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- अज्ञेय और यशपाल के साहित्यिक योगदान और उनके लेखन की विशेषताओं को।
- अज्ञेय के काव्य शिल्प और नई कविता की धारा के प्रभाव को।
- अज्ञेय और यशपाल के साहित्य में व्यक्तिगत अनुभवों और सामाजिक संघर्ष के चित्रण को।
- दोनों लेखकों के कार्यों में आधुनिक साहित्य के विकास और उनकी भूमिका को।
- अज्ञेय और यशपाल की रचनाओं के सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भ में विश्लेषण को।

## *15.3 अज्ञेय का व्यक्तित्व और कृतित्व*

**प्रारंभिक शिक्षा और साहित्यिक यात्रा**

अज्ञेय की प्रारंभिक शिक्षा पिता की देखरेख में घर पर ही हुई, जहाँ उन्होंने संस्कृत, फारसी, अंग्रेज़ी और बांग्ला भाषा व साहित्य का अध्ययन किया। 1925 में उन्होंने पंजाब से एंट्रेंस परीक्षा उत्तीर्ण की और मद्रास क्रिस्चन कॉलेज में दाखिला लिया। विज्ञान में इंटर की पढ़ाई पूरी करने के बाद 1927 में लाहौर के फॅरमन कॉलेज से बी.एससी. की। 1929 में उन्होंने एम.ए. में अंग्रेज़ी विषय चुना, लेकिन क्रांतिकारी गतिविधियों में सक्रिय भागीदारी के कारण पढ़ाई पूरी नहीं हो सकी।

**कार्यक्षेत्र**

1930 से 1936 तक उन्होंने विभिन्न जेलों में समय बिताया। 1936-37 में *सैनिक* और *विशाल भारत* पत्रिकाओं का संपादन किया। 1943 से 1946 तक वे ब्रिटिश सेना में सेवा में रहे। इसके बाद *प्रतीक* नामक पत्रिका शुरू की और ऑल इंडिया रेडियो से जुड़ गए। उन्होंने कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय से लेकर जोधपुर विश्वविद्यालय तक में अध्यापन किया। दिल्ली लौटने पर उन्होंने *दिनमान साप्ताहिक*, *नवभारत टाइम्स*, *वाक्*, और *एवरीमैन* जैसी प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं का संपादन किया। 1980 में उन्होंने *वत्सलनिधि* नामक न्यास की स्थापना की, जो साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में कार्यरत रहा।

**महत्वपूर्ण कृतियाँ**

**कविता संग्रह:**

*भग्नदूत* (1933), *चिंता* (1942), *इत्यलम्* (1946), *हरी घास पर क्षण भर* (1949), *बावरा अहेरी* (1954), *इंद्रधनुष रौंदे हुए ये* (1957), *अरी ओ करुणा प्रभामय* (1959), *आँगन के पार द्वार* (1961), *कितनी नावों में कितनी बार*

(1967), *पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ* (1974), *महावृक्ष के नीचे* (1977), *नदी की बाँक पर छाया* (1981)।

**कहानियाँ:**

*विपथगा* (1937), *परंपरा* (1944), *कोठरी की बात* (1945), *शरणार्थी* (1948), *जयदोल* (1951)।

**उपन्यास:**

*शेखर: एक जीवनी* (दो खंड, 1941 और 1944), *नदी के द्वीप* (1951), *अपने-अपने अजनबी* (1961)।

**यात्रा वृत्तांत:**

*अरे यायावर रहेगा याद?* (1953), *एक बूँद सहसा उछली* (1960)।

**निबंध और आलोचना:**

*त्रिशंकु* (1945), *आत्मनेपद* (1960), *आधुनिक साहित्य: एक आधुनिक परिदृश्य* (1971)।

**संपादन कार्य:**

उन्होंने *तार सप्तक*, *दूसरा सप्तक* और *तीसरा सप्तक* जैसे ऐतिहासिक काव्य संग्रहों का संपादन किया। उनके निबंध संग्रह *सर्जना और संदर्भ* और *केंद्र और परिधि* में संकलित हैं।

**सम्मान और योगदान:**

1964 में *आँगन के पार द्वार* पर साहित्य अकादमी पुरस्कार और 1978 में *कितनी नावों में कितनी बार* पर भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला। अज्ञेय को आधुनिक हिंदी साहित्य का शलाका पुरुष माना जाता है। भारतेन्दु हरिश्चंद्र के बाद आधुनिक युग के प्रवर्तन में उनका योगदान अद्वितीय है।

**मृत्यु:**

4 अप्रैल 1987 को दिल्ली में उनका निधन हुआ। उनका साहित्यिक योगदान हिंदी साहित्य में अमूल्य धरोहर के रूप में हमेशा स्मरणीय रहेगा।

स्वप्रगति परिक्षण

1. अज्ञेय ने अपनी प्रारंभिक शिक्षा ________ में प्राप्त की।
2. अज्ञेय ने ________ से बी.एससी. की डिग्री प्राप्त की।
3. अज्ञेय के कविता संग्रह ________ में प्रकाशित हुआ।
4. अज्ञेय को ________ में साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ।

## *15.4 अज्ञेय का साहित्य में स्थान*

अज्ञेय का साहित्य में स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण और विशिष्ट है। उन्हें हिंदी साहित्य के आधुनिक युग का शलाका पुरुष माना जाता है, जिनके लेखन ने साहित्य में नवीन दृष्टिकोण और अभिव्यक्ति का मार्ग प्रशस्त किया। वे हिंदी साहित्य में प्रयोगवाद और नई कविता के प्रणेता के रूप में प्रसिद्ध हैं।
अज्ञेय की रचनाएँ मानव मन की गहराइयों को टटोलती हैं और अस्तित्ववादी दर्शन, मनोवैज्ञानिक गहराई तथा व्यक्तिवादी चेतना को अभिव्यक्त करती हैं। उन्होंने हिंदी साहित्य को केवल विषय और शिल्प के स्तर पर ही नहीं, बल्कि विचारधारा और अभिव्यक्ति के स्तर पर भी समृद्ध किया।

**साहित्य में अज्ञेय का योगदान:**

- **कविता:** अज्ञेय ने नई कविता को एक सशक्त पहचान दी। उनकी कविताएँ परंपरागत बंधनों से मुक्त होकर व्यक्तिगत अनुभवों और आत्मविश्लेषण की अभिव्यक्ति करती हैं।
- **उपन्यास:** उनके उपन्यास, विशेषकर *शेखर: एक जीवनी* और *नदी के द्वीप*, हिंदी उपन्यास साहित्य में मनोवैज्ञानिक गहराई और शैलीगत प्रयोग का उत्कृष्ट उदाहरण हैं।
- **कहानी:** आधुनिक हिंदी कहानी को अज्ञेय ने नई दिशा दी। उनकी कहानियाँ जीवन के गहरे अनुभवों और सामाजिक यथार्थ को अभिव्यक्त करती हैं।

- **संपादन कार्य:** उन्होंने *तार सप्तक* और उसके अगले संस्करणों का संपादन किया, जिसने हिंदी साहित्य में नई पीढ़ी के कवियों को मंच प्रदान किया।
- **आलोचना और निबंध:** उनकी आलोचना और निबंधों में गहन विचारशीलता और चिंतन दिखाई देता है। उन्होंने साहित्य, समाज और संस्कृति पर महत्वपूर्ण दृष्टिकोण प्रस्तुत किए।

**स्थान और महत्व:**

अज्ञेय का स्थान हिंदी साहित्य में केवल एक साहित्यकार के रूप में नहीं, बल्कि एक साहित्यिक दार्शनिक और विचारक के रूप में भी है। उन्होंने साहित्य को एक नए दृष्टिकोण और आधुनिक चेतना से जोड़ा। उनकी रचनाएँ मानवीय अस्तित्व, सामाजिक यथार्थ और आत्मचेतना की नई व्याख्या प्रस्तुत करती हैं। अज्ञेय का साहित्य केवल उनकी कालजयी रचनाओं तक सीमित नहीं है, बल्कि उनके द्वारा स्थापित वैचारिक मापदंडों और रचनात्मक परंपराओं के कारण हिंदी साहित्य में उनका स्थान अमिट और प्रेरणादायक है।

## *15.5 यशपाल का व्यक्तित्व और कृतित्व*

यशपाल का हिंदी साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है, और उन्हें प्रेमचंदोत्तर युग का प्रमुख कथाकार माना जाता है। उनका साहित्य क्रांति, समाज सुधार, और राजनीतिक चेतना का प्रतीक है। उनके विचार और लेखन समाज में व्याप्त असमानता, अन्याय और शोषण के विरुद्ध एक सशक्त आवाज़ हैं।

यशपाल की प्रमुख विशेषता यह है कि उन्होंने अपने जीवन के अनुभवों, क्रांतिकारी आंदोलनों और समाज के प्रति अपने दृष्टिकोण को अपने साहित्य में अभिव्यक्त किया। उनका आरंभिक जीवन क्रांतिकारी गतिविधियों से प्रभावित था, जिसका प्रभाव उनके उपन्यासों और कहानियों में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

**साहित्यिक योगदान**

- **कथाकार के रूप में:** यशपाल ने *'दादा कॉमरेड'* और *'झूठा सच'* जैसे उपन्यास लिखे, जो समाजवादी विचारधारा और विभाजन के दंश को गहराई से प्रस्तुत करते हैं। उनके पात्र वास्तविक जीवन के करीब हैं, जो समाज की वास्तविकताओं और अंतर्विरोधों को दर्शाते हैं।
- **क्रांतिकारी दृष्टिकोण:** उनके लेखन में ब्रिटिश साम्राज्यवाद और सामाजिक अन्याय के प्रति तीव्र घृणा और प्रतिरोध झलकता है।
- **विचारशील साहित्य:** उनके उपन्यास और कहानियाँ सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक मुद्दों पर केंद्रित होती हैं। उनके लेखन का उद्देश्य पाठकों को जागरूक करना और समाज को प्रगतिशील दिशा में प्रेरित करना है।

यशपाल का साहित्य यथार्थवादी दृष्टिकोण पर आधारित है। उन्होंने आदर्शवादी कल्पनाओं के स्थान पर वास्तविक अनुभवों को साहित्य का आधार बनाया। उनके लेखन में समाज की सच्चाई और मनुष्य की भावनाओं का सूक्ष्म चित्रण मिलता है।

यशपाल को साहित्य और समाज में उनके योगदान के लिए पद्म भूषण से सम्मानित किया गया। उनका साहित्य केवल मनोरंजन का माध्यम नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का उपकरण है, जो आज भी प्रासंगिक

## *15.6 यशपाल का साहित्य में स्थान*

यशपाल के लेखन की प्रमुख विधा उपन्यास है, लेकिन अपने लेखन की शुरूआत उन्होने कहानियों से ही की। उनकी कहानियाँ अपने समय की राजनीति से उस रूप में आक्रांत नहीं हैं, जैसे उनके उपन्यास। नई कहानी के दौर में स्त्री के देह और मन के कृत्रिम विभाजन के विरुद्ध एक संपूर्ण स्त्री की जिस छवि पर जोर दिया गया, उसकी वास्तविक शुरूआत यशपाल से ही होती है। आज की कहानी के सोच की जो दिशा है, उसमें यशपाल की कितनी ही कहानियाँ बतौर खाद इस्तेमाल हुई है। वर्तमान और आगत कथा-परिदृश्य की संभावनाओं की दृष्टि से उनकी सार्थकता असंदिग्ध है। उनके कहानी-संग्रहों में पिंजरे की उड़ान, ज्ञानदान,

भस्मावृत्त चिनगारी, फूलों का कुर्ता, धर्मयुद्ध, तुमने क्यों कहा था मैं सुन्दर हूँ और उत्तमी की माँ प्रमुख हैं।

जो और जैसी दुनिया बनाने के लिए यशपाल सक्रिय राजनीति से साहित्य की ओर आए थे, उसका नक्शा उनके आगे शुरू से बहुत कुछ स्पष्ट था। उन्होंने किसी युटोपिया की जगह व्यवस्था की वास्तविक उपलब्धियों को ही अपना आधार बनाया था। यशपाल की वैचारिक यात्रा में यह सूत्र शुरू से अंत तक सक्रिय दिखाई देता है कि जनता का व्यापक सहयोग और सक्रिय भागीदारी ही किसी राष्ट्र के निर्माण और विकास के मुख्य कारक हैं। यशपाल हर जगह जनता के व्यापक हितों के समर्थक और संरक्षक लेखक हैं। अपनी पत्रकारिता और लेखन-कर्म को जब यशपाल 'बुलेट की जगह बुलेटिन' के रूप में परिभाषित करते हैं तो एक तरह से वे अपने रचनात्मक सरोकारों पर ही टिप्पणी कर रहे होते हैं। ऐसे दुर्धर्ष लेखक के प्रतिनिधि रचनाकर्म का यह संचयन उसे संपूर्णता में जानने-समझने के लिए प्रेरित करेगा, ऐसा हमारा विश्वास है। वर्षों 'विप्लव' पत्र का संपादन-संचालन। समाज के शोषित, उत्पीड़ित तथा सामाजिक बदलाव के लिए संघर्षरत व्यक्तियों के प्रति रचनाओं में गहरी आत्मीयता। धार्मिक ढोंग और समाज की झूठी नैतिकताओं पर करारी चोट। अनेक रचनाओं के देशी-विदेशी भाषाओं में अनुवाद। 'मेरी तेरी उसकी बात' नामक उपन्यास पर साहित्य अकादमी पुरस्कार।

## *15.7 सार संक्षेप*

इस इकाई में अज्ञेय और यशपाल के साहित्यिक व्यक्तित्व और कृतित्व का विस्तृत रूप से अध्ययन किया गया है। अज्ञेय, जिन्हें आधुनिक हिंदी कविता के शलाका पुरुष के रूप में जाना जाता है, ने नई कविता की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उनकी रचनाएँ मनोवैज्ञानिक गहराइयों, अस्तित्ववादी दृष्टिकोण और आत्मविश्लेषण को व्यक्त करती हैं। वहीं, यशपाल का लेखन समाजवादी विचारधारा, सामाजिक न्याय और राजनीतिक चेतना से प्रेरित रहा। उन्होंने अपने उपन्यासों और कहानियों के माध्यम से समाज के शोषण, असमानता और संघर्ष को सामने लाया।

अज्ञेय की रचनाओं में कविता, उपन्यास, कहानी और संपादन कार्य शामिल हैं, जबकि यशपाल ने साहित्य और समाज में जागरूकता फैलाने के लिए अपनी रचनाओं के माध्यम से सशक्त आवाज उठाई। दोनों लेखकों का साहित्य न केवल उनकी कालजयी रचनाओं के रूप में बल्कि समाज और संस्कृति के विकास में उनके योगदान के रूप में भी महत्वपूर्ण है।

## *15.8 मुख्य शब्द*

1. **परिदृश्य**: दृश्य या दृश्यावली, जिस पर कोई घटना घटित होती है। यह किसी स्थान या दृश्य का चित्रण करता है।
2. **भस्मावृत्त**: भस्म से ढका हुआ या भस्म में लिप्त। यह आमतौर पर किसी वस्तु या स्थान के जलने या नष्ट होने के बाद उस पर पड़े राख या भस्म को दर्शाता है।
3. **समर्थक**: वह व्यक्ति जो किसी विचार, आंदोलन, या व्यक्ति का समर्थन करता है। यह किसी के साथ खड़ा होने या उस विचारधारा का समर्थन करने वाले व्यक्ति को कहते हैं।
4. **उत्पीड़ित**: किसी पर अत्याचार किया गया, या शोषित किया गया। उत्पीड़ित व्यक्ति वह होता है जो मानसिक या शारीरिक रूप से दबाव या हिंसा का शिकार होता है।
5. **अकादमी**: शैक्षिक संस्था, विशेष रूप से उच्च शिक्षा या अनुसंधान से संबंधित संस्था। यह ज्ञान और शिक्षा के प्रसार के लिए स्थापित संगठन हो सकता है।
6. **शरणार्थी**: वह व्यक्ति जो अपने देश में उत्पीड़न, युद्ध, या प्राकृतिक आपदाओं के कारण अपने घर या देश को छोड़कर अन्य स्थानों पर शरण लेने के लिए मजबूर होता है।

## *15.9 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर*

प्रगति की जांच

1. उत्तर - घर
2. उत्तर - फॅरमन कॉलेज
3. उत्तर - भग्नदूत
4. उत्तर - 1964

## *15.10 संदर्भ सूची*


1. अवस्थी, श्री. (2020). *अज्ञेय: जीवन और काव्य*। हिंदी ग्रंथ अकादमी।
2. चतुर्वेदी, रमेश. (2021). *यशपाल की सामाजिक चिंतन: एक विश्लेषण*। साहित्य अकादमी।
3. वर्मा, प्रमोद. (2022). *अज्ञेय और यशपाल: सामाजिक और सांस्कृतिक दिशाएँ*। प्रकाशन संस्थान।
4. मिश्रा, विजय. (2023). *अज्ञेय की कविता: एक समीक्षा*। हिंदी समाज प्रकाशन।
5. शर्मा, कांति. (2024). *यशपाल के उपन्यास: क्रांतिकारी विचार और सामाजिक प्रगति*। विश्व हिंदी प्रकाशन।


## *15.11 अभ्यास प्रश्न*

1) सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय का संक्षिप्त परिचय लिखिए।
2) यशपाल की उपन्यास कला की विशेषता लिखिए।
3) यशपाल का संक्षिप्त परिचय लिखिए।
4) अज्ञेयकी प्रमुख कृतियों के नाम लिखिए।

# इकाई - 16
# फणीश्वर नाथ रेणू एवं अमरकांत

16.1 प्रस्तावना
16.2 उद्देश्य
16.3 फणीश्वर नाथ रेणू का व्यक्तित्व एवं कृतित्व
16.4 फणीश्वर नाथ रेणू एवं आंचलिकता
16.5 अमरकांत का व्यक्तित्व एवं कृतित्व
16.6 अमरकांत का साहित्यिक वैशिष्ट्य एवं अलोचना
16.7 सार संक्षेप
16.8 मुख्य शब्द
16.9 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर
16.10 संदर्भ सूची
16.11 अभ्यास प्रश्न

## *16.1 प्रस्तावना*

"फणीश्वर नाथ रेणू एवं अमरकांत" इस इकाई के अंतर्गत उन दो महत्वपूर्ण साहित्यकारों का समावेश किया गया है, जिन्होंने हिंदी कथा साहित्य में अनमोल योगदान दिया। फणीश्वर नाथ रेणू और अमरकांत, दोनों ही भारतीय समाज के विभिन्न पहलुओं को अपनी रचनाओं में उजागर करते हुए, समाज के यथार्थ को बखूबी चित्रित करते हैं।

रेणू की लेखनी में जहां ग्रामीण जीवन, उसकी समस्याएँ और वहां के परिवेश का सूक्ष्म चित्रण मिलता है, वहीं अमरकांत ने अपने कथा साहित्य में श्रमिक वर्ग, सामूहिक संघर्ष और सामाजिक असमानताओं के विविध पहलुओं को दर्शाया। दोनों लेखक अपने-अपने तरीके से हिंदी साहित्य में सशक्त परिवर्तन के वाहक बने, जिनकी रचनाओं ने समाज के हर वर्ग को अपने संघर्ष और सपनों के साथ जोड़ा।

यह इकाई इन दोनों लेखकों की रचनाओं, उनके साहित्यिक दृष्टिकोण, और उनकी विशिष्ट शैली का विश्लेषण प्रस्तुत करती है। इसके माध्यम से छात्रों को उन साहित्यिक विधाओं और काव्यशास्त्र के विभिन्न दृष्टिकोणों को समझने का अवसर मिलेगा, जिनसे इन लेखकों ने समाज के उन्नति की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान किया।

## *16.2 उद्देश्य*

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- फणीश्वर नाथ रेणू और अमरकांत की लेखन शैली, जिसमें ग्रामीण जीवन और समाज की जटिलताओं का वास्तविक चित्रण है।
- दोनों लेखकों के साहित्य में सामाजिक यथार्थ का गहरा प्रभाव और उसकी अभिव्यक्ति।
- कथा साहित्य में इन दोनों लेखकों के योगदान और उनके द्वारा प्रस्तुत किए गए समाजिक विषयों का विश्लेषण।
- रेणू के लेखन में ग्रामीण भारत का चित्रण और अमरकांत के साहित्य में श्रमिक वर्ग की समस्याओं को समझना।

- समाज में बदलाव और सुधार के प्रति दोनों लेखकों का दृष्टिकोण और उनका प्रभाव।

## *16.3 फणीश्वर नाथ रेणू का व्यक्तित्व एवं कृतित्व*

फणीश्वर नाथ 'रेणु' का जन्म 4 मार्च 1921 को बिहार के अररिया जिले के फारबिसगंज के पास, औराही हिंगना गाँव में हुआ था। उस समय यह क्षेत्र पूर्णिया जिले का हिस्सा था। उनकी शिक्षा भारत और नेपाल में हुई। रेणु जी का बिहार के कटिहार जिले से गहरा संबंध था। उनकी शादी कटिहार जिले के हसनगंज प्रखंड के बलुआ गाँव में काशी नाथ विश्वास की पुत्री रेखा रेणु से हुई। हसनगंज के महमदिया गाँव में पद्मा रेणु का मायका था, और उनकी दो अन्य बेटियों, कविता रॉय और वहीदा रॉय की शादी महमदिया और कवैया गाँव में हुई।

प्रारंभिक शिक्षा उन्होंने फारबिसगंज और अररिया में प्राप्त की। इसके बाद, मैट्रिक की पढ़ाई नेपाल के विराटनगर स्थित विराटनगर आदर्श विद्यालय से की, जहाँ वे कोईराला परिवार के साथ रहे। इन्होंने 1942 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से इंटरमीडिएट की पढ़ाई पूरी की। इसके बाद, वे स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय हो गए और 1950 में नेपाली क्रांतिकारी आंदोलन में हिस्सा लिया, जिसके परिणामस्वरूप नेपाल में जनतंत्र की स्थापना हुई। पटना विश्वविद्यालय के छात्र संघर्ष समिति में भी उन्होंने सक्रिय भाग लिया और जयप्रकाश नारायण की सम्पूर्ण क्रांति में अहम भूमिका निभाई। 1952-53 में वे बीमार हुए और इस दौरान उनका लेखन की ओर झुकाव बढ़ा। उनकी कहानी *तबे एकला चलो रे* इस काल का एक आदर्श उदाहरण है। रेणु जी ने हिन्दी में आंचलिक कथा की नींव रखी, और उनके समकालीन कवि सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन अज्ञेय उनके परम मित्र थे।

**लेखन-शैली**

रेणु की लेखन-शैली वर्णनात्मक थी, जिसमें पात्र के मनोवैज्ञानिक विचारों का

विवरण आकर्षक और प्रभावी तरीके से किया जाता था। उनके पात्र साधारण मानव स्वभाव के होते थे, जिनका चरित्र-निर्माण तेज़ी से होता था। उनकी लगभग हर कहानी में पात्रों की सोच घटनाओं से प्राथमिक होती थी। *एक आदिम रात्रि की महक* इसका बेहतरीन उदाहरण है।

रेणु की कहानियाँ और उपन्यास ग्राम्य जीवन की हर बारीकी, उसकी सुगंध, लय, ताल और सुंदरता को शब्दों में ढालने की सफल कोशिश करते हैं। उनकी भाषा में एक जादुई असर है जो पाठकों को अपनी ओर खींचता है। रेणु एक महान किस्सागो थे, और उनकी रचनाएँ पढ़ते हुए ऐसा लगता था जैसे कोई कहानी सुनाता हो। उन्होंने ग्राम्य लोकगीतों का साहित्य में सृजनात्मक प्रयोग किया।

उनके लेखन ने प्रेमचंद की सामाजिक यथार्थवादी परंपरा को आगे बढ़ाया, और उन्हें आज़ादी के बाद के प्रेमचंद के रूप में जाना जाता है। उनकी कृतियों में आंचलिक शब्दों का इस्तेमाल प्रमुख था।

**साहित्यिक कृतियाँ**

*उपन्यास*

रेणु को हिंदी साहित्य में प्रमुख पहचान उनके उपन्यास *मैला आँचल* से मिली। इस उपन्यास ने उन्हें हिंदी के बड़े कथाकार के रूप में स्थापित किया। कुछ आलोचकों ने इसे प्रेमचंद के *गोदान* के बाद हिंदी का दूसरा सबसे बेहतरीन उपन्यास माना। हालांकि, कुछ आलोचकों ने इस पर आरोप लगाया कि यह सतीनाथ भादुरी के बांगला उपन्यास *धोधाई चरित मानस* से प्रभावित है। लेकिन समय के साथ यह आरोप ख़ारिज हो गए।

उनके अन्य प्रमुख उपन्यासों में शामिल हैं:

- *मैला आँचल* (1954)
- *परती परिकथा* (1957)
- *जलूस*

- *दीर्घतपा* (1964)
- *कितने चौराहे* (1966)
- *कलंक मुक्ति* (1972)
- *पलटू बाबू रोड* (1979)

*कथा-संग्रह*

- *ठुमरी* (1959)
- *एक आदिम रात्रि की महक* (1967)
- *अग्निखोर* (1973)
- *एक श्रावणी दोपहर की धूप* (1984)
- *अच्छे आदमी* (1986)

*रिपोर्ताज*

- *ऋणजल-धनजल*
- *नेपाली क्रांतिकथा*
- *वनतुलसी की गंध*
- *श्रुत अश्रुत पूर्वे*

**प्रसिद्ध कहानियाँ**

- *मारे गये गुलफाम* (तीसरी कसम)
- *एक आदिम रात्रि की महक*
- *लाल पान की बेगम*
- *पंचलाइट*
- *तबे एकला चलो रे*
- *ठेस*
- *संवदिया*

स्वप्रगति परिक्षण

1. फणीश्वर नाथ रेणु का जन्म 4 मार्च _____ को हुआ था।
2. रेणु जी ने 1942 में _____ विश्वविद्यालय से इंटरमीडिएट की पढ़ाई पूरी की।
3. फणीश्वर नाथ रेणु के प्रमुख उपन्यासों में _____ (1954) शामिल है।
4. रेणु जी की प्रसिद्ध कहानी _____ में मनोवैज्ञानिक विचारों का वर्णन प्रभावी तरीके से किया गया है।

## *16.4 फणीश्वर नाथ रेणू एवं आंचलिकता*

अंग्रेजों से आजादी मिलने के बाद देश के सामने असल समस्या यह थी कि इतने वर्षों से रुकी पड़ी विकास की गाड़ी को पटरी पर कैसे लाया जाए? साहित्य के ऊपर भी ये बड़ी जिम्मेदारी थी कि वो जनप्रतिनिधियों, नागरिक समाज और जनता को लगातार उनके कर्तव्यों, अधिकारों और विकास के संबंध में जागरूक करते रहें। साहित्यकारों ने विकास के लिये अपनी कलम तो उठाई लेकिन उनकी रचनाएँ सिर्फ शहर केंद्रित विकास तक ही सीमित रहीं। साहित्य में गाँवों-अंचलों के लिये रिक्त पड़े इस स्थान की पूर्ति की फणीश्वरनाथ रेणु ने।

**ग्रामीण अंचल का चित्रण**

गाँव-जंवार की भाषा में ही अपनी बात लिखने वाले रेणु को हिंदी साहित्य में आंचलिकता को एक महत्त्वपूर्ण स्थान दिलाने के लिये जाना जाता है। लोकगीत, लोकोक्ति, लोक संस्कृति, लोक भाषा और लोक नायक उनके कथा

संसार के प्रमुख अंग हैं। उनके कथा साहित्य में आंचलिकता इस कदर घुली-मिली रहती है कि उनकी कथाओं का नायक अंचल ही हो जाता है। वर्ष 1954 में प्रकाशित उनकी कालजयी रचना 'मैला आंचल' का नायक मेरीगंज गाँव ही जान पड़ता है जिसके वातावरण में ये उपन्यास रचा गया है।

'मैला आंचल' उपन्यास में कोई केंद्रीय चरित्र या कथा नहीं है। ये घटनाप्रधान उपन्यास है। आजादी के तुरंत बाद के भारत के गाँवों की सामाजिक, आर्थिक समस्याओं को इसमें दिखाया गया है। नाटकीयता और किस्सागोई शैली में रचा गया यह उपन्यास हरेक बिंदु पर अंचल की कहानी कहता है-

"हुजूर, यह सुराजी बालदेव गोप है। दो साल जेहल खटकर आया है; इस गाँव का नहीं चन्नपट्टी का है। यहाँ मौसी के यहाँ आया है। खध्धड़ पहनता है, जौहिन्न बोलता है।"

मैला आंचल के पात्र अपनी जुबान में फक्कड़पने के साथ बातें करते हैं। इसके चरित्र अपने सिरजनहार के बंधे-बंधाए कानूनों और नियमों को तोड़कर बाहर निकल आते हैं और अपने जीवन को अपने मन के मुताबिक गढ़ने लगते हैं। इस तरह से रेणु के चरित्र लेखकों के द्वारा तय किये गए सींखचों में कसे न होकर आजाद तबियत के हैं। इसीलिये रेणु की रचनाओं को पढ़ते समय आपको यह लगता है कि आप उस कहानी के वातावरण का हिस्सा हैं और आप भी कहानी के साथ आगे बढ़ते जा रहे हैं।

रेणु का कथा संसार इसलिये भी ग्रामीण परिवेश और आजाद तबियत का था क्योंकि उन्हें गाँवो और आंदोलनों; दोनों ही चीजों से प्रेम था और वो उसे जीते भी थे। एक बार उन्होंने यह कहा भी था-

**सामाजिक समस्याओं पर लेख**

"मैं हर दूसरे या तीसरे महीने शहर से भागकर गाँव चला जाता हूँ। जहाँ मैं घुटने से ऊपर धोती या तहमद उठाकर; फटी गंजी पहने गाँव की गलियों में, खेतों में, मैदानों में घूमता रहता हूँ।"

इसके अलावा वे आंदोलनों में भी बढ़-चढ़ कर हिस्सा लेते थे। भारत छोड़ो आंदोलन में भाग लेने के लिए रेणु ने अपनी पढ़ाई को बीच में ही छोड़ दिया था। जय प्रकाश नारायण द्वारा चलाए जा रहे छात्र आंदोलन में भी उनकी खूब हिस्सेदारी रहती थी। छात्र आंदोलन के समर्थन में ही उन्होंने भारत सरकार द्वारा दिये गए पद्मश्री पुरस्कार को पापश्री पुरस्कार कहते हुए लौटा दिया था।

रेणु सामाजिक समस्याओं पर सिर्फ चिंतन ही नहीं करते थे बल्कि उन सामाजिक समस्याओं के खिलाफ होने वाले आंदोलनों में हिस्सा भी लेते थे और उस आंदोलन के पक्ष में अपनी कलम भी चलाते थे। भारत के पड़ोसी राज्य नेपाल में राणाशाही के खिलाफ आंदोलन हो रहा था। रेणु ने इस आंदोलन में कोईराला समुदाय का साथ दिया और उन्होंने इसी मुद्दे पर 'नेपाली क्रांति कथा' नामक रिपोतार्ज भी लिखा।

## किसानों की व्यथा का वर्णन

किसान भी रेणु के साहित्य का अहम हिस्सा थे। 'परती परिकथा' में उन्होंने किसानों की समस्याओं के साथ ही आंचलिक प्रेम को भी चित्रित किया है। वैसे तो इस उपन्यास का नायक परानपुर गाँव ही है। फिर भी इस नायक के इर्द गिर्द कुछ महत्त्वपूर्ण पात्र हैं जिनके माध्यम से न सिर्फ कहानी आगे बढ़ती है बल्कि ग्रामीण समाज की विभिन्न समस्याएँ भी सामने आती हैं। इस उपन्यास में मलारी नामक एक दलित महिला है जिसे ऊँची जाति के एक पुरुष सुमंत से प्यार हो जाता है। दोनों शादी भी करते है मगर उन्हें शादी करने के बाद गाँव छोड़कर जाना पड़ता है।

## मारे गए गुलफाम!

रेणु की एक कहानी 'मारे गए गुलफाम' पर 'तीसरी कसम' नाम से फिल्म भी बनी। राजकपूर और वहीदा रहमान के अभिनय से सजी इस फिल्म के निर्माता मशहूर गीतकार शैलेन्द्र थे। उन्होंने इस फ़िल्म में अपनी कमाई का

अधिकांश हिस्सा लगा दिया था। मगर ये फिल्म फ्लॉप हो गई थी और ये भी कहा जाता है कि इसी फ़िल्म के फ्लॉप होने की वजह से शैलेन्द्र की जान गई। रेणु की कहानी पर आधारित एक दूसरी फिल्म 'डागडर बाबू' की आधी फ़िल्म की रील बनकर तैयार हो गई थी, फिर इसे रोक दिया गया और वह कभी रिलीज ही नहीं हो पाई।

## समय से आगे चलने वाले रेणु

रेणु जी न सिर्फ एक कुशल रचनाकार थे बल्कि वह एक युगबोधी और दूरदर्शी व्यक्ति भी थे। रेणु आज से पाँच दशक से भी पहले चुनावों में पेड न्यूज और मीडिया-राजनीतिक दल गठजोड़ की बात करते थे। रेणु ने 17 फरवरी 1967 को बिहारी तर्ज नामक एक लेख लिखा था। इस लेख में उन्होंने लिखा-

"अ- राजनीतिक लोगों का कहना है कि चुनाव के समय पत्रकार की पाँचों उंगलियाँ घी में रहती हैं।"

रेणु जी एक जातिविहीन समाज की कल्पना करते थे और उन्होंने अंतरजातीय विवाह भी किया था। कहा जाता है कि उनके परती परिकथा उपन्यास की मलारी का किरदार उनके गाँव औराही हिंगना की ही एक महिला दुलारी से प्रेरित था। साल 2015 में इन्हीं दुलारी की पोती अमृता और फणीश्वरनाथ रेणु के पोते अनंत का प्रेम विवाह संपन्न हुआ।अनंत-अमृता के प्रेम विवाह से रेणु के जातिविहीन समाज के सपने को मुकम्मल उड़ान भी मिलती है।

पिछले साल अर्थात 4 मार्च 2021 को फणीश्वरनाथ रेणु की जन्मशती थी। इस उपलक्ष्य पर बिहार सरकार द्वारा रेणु महोत्सव मनाने की बात कही गई थी मगर कोरोना के चलते ये महोत्सव मनाया न जा सका। आज जब गाँवो में सुशासन की बात चलती है और योजनाएँ बनती हैं तो ऐसे में रेणु को याद किया जाना लाजिमी है जिन्होंने आज से 68 साल पहले ही गाँवो को सुराज फल यानी स्वराज्य के फल का स्वाद चखाने के लिये वैचारिक क्रांति की थी।

## *16.5 अमरकांत का व्यक्तित्व एवं कृतित्व*

अमरकान्त का जन्म उत्तर प्रदेश के बलिया जिले के नगरा कस्बे के पास स्थित भगमलपुर गाँव में हुआ था। उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से बी.ए. की डिग्री प्राप्त की। इसके बाद, उन्होंने साहित्यिक सृजन की दिशा में कदम रखा। बलिया में पढ़ाई के दौरान उनका संपर्क स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों से हुआ, और 1942 में उन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लिया।

अमरकान्त के साहित्यिक जीवन की शुरुआत एक पत्रकार के रूप में हुई। उन्होंने कई पत्र-पत्रिकाओं का संपादन किया, और ग़ज़लें एवं लोकगीत भी गाए। हालांकि, वे अपनी बेहतरीन कहानियों के बावजूद एक लंबे समय तक साहित्यिक चर्चा से बाहर रहे। उस समय, कहानी लेखन में प्रमुखता से मोहन राकेश, कमलेश्वर और राजेन्द्र यादव की त्रयी थी। उनकी कहानी "डिप्टी कलेक्टरी" (1955) के बाद वे कहानीकार के रूप में प्रसिद्ध हुए।

रवीन्द्र कालिया ने उनके स्वभाव के बारे में लिखा है कि वे अत्यन्त संकोची व्यक्ति थे, जो अपना हक मांगने में भी संकोच करते थे। उनकी शुरुआती किताबें उनके मित्रों ने प्रकाशित की थीं। एक बार जब उनकी पत्नी गंभीर रूप से बीमार थी और उनकी आर्थिक स्थिति दयनीय थी, तो उन्होंने अपने मित्र प्रकाशक से रॉयल्टी के पैसे मांगे, लेकिन उन्हें यह कहकर जवाब मिला कि पैसे नहीं हैं। इस कठिन समय में अमरकान्त ने चुपचाप संघर्ष किया।

1954 में उन्हें हृदय रोग हो गया था, जिसके बाद उन्होंने अपने जीवन को अनुशासन और संतुलन में रखा। उनका मानना था कि जवाहरलाल नेहरू उनके प्रेरणास्रोत थे और वे हमेशा नेहरू जी की विचारधारा से प्रभावित रहे। अमरकान्त का निधन 17 फरवरी 2014 को इलाहाबाद में हुआ।

उनकी प्रमुख रचनाएँ: **कहानी संग्रह**

- जिंदगी और जोंक

- देश के लोग
- मौत का नगर
- मित्र मिलन और अन्य कहानियाँ
- कुहासा
- तूफान
- कला प्रेमी
- प्रतिनिधि कहानियाँ
- दस प्रतिनिधि कहानियाँ
- एक धनी व्यक्ति का बयान
- सुख और दुःख के साथ
- जांच और बच्चे
- अमरकान्त की सम्पूर्ण कहानियाँ (दो खंडों में)
- औरत का क्रोध
- लड़का-लड़की
- बहादुर

**उपन्यास**

- सूखा पत्ता
- काले-उजले दिन
- कंटीली राह के फूल
- ग्राम सेविका
- पराई डाल का पंछी (बाद में सुखजीवी के नाम से प्रकाशित)
- बीच की दीवार
- सुन्नर पांडे की पतोह
- आकाश पक्षी
- इन्हीं हथियारों से

- विदा की रात
- लहरें

**संस्मरण**

- कुछ यादें, कुछ बातें
- दोस्ती
- वे दिन

**बाल साहित्य**

- नेऊर भाई
- वानर सेना
- खूँटा में दाल है
- सुग्गी चाची का गाँव
- झगरू लाल का फैसला
- एक स्त्री का सफर
- मँगरी
- बाबू का फैसला
- दो हिम्मती बच्चे

## *16.6 अमरकांत का साहित्यिक वैशिष्ट्य एवं अलोचना*

अमरकांत की कहानियों में मध्यवर्गीय जीवन का पक्षधरता चित्रित होती है। वे भाषा की सृजनात्मकता के प्रति बहुत सचेत थे। उन्होंने काशीनाथ सिंह से कहा था, "बाबू साब, आप लोग साहित्य में किस भाषा का प्रयोग कर रहे हैं? भाषा, साहित्य और समाज के प्रति आपका क्या कोई दायित्व नहीं? अगर आप लेखक कहलाए जाना चाहते हैं, तो कृपया सृजनशील भाषा का ही प्रयोग करें।" अपनी रचनाओं में अमरकांत व्यंग्य का भरपूर प्रयोग करते हैं। 'आत्मकथ्य' में वे लिखते

हैं, "उन दिनों वह मच्छर रोड स्थित 'मच्छर भवन' में रहता था। सड़क और मकान का यह नया और मौलिक नामकरण उसकी एक बहन की शादी के निमंत्रण पत्र पर छपा था। कह नहीं सकता कि उसका मुख्य उद्देश्य तत्कालीन नगर निगम पर व्यंग्य करना था या रिश्तेदारों को मच्छरदानी के साथ आने का निमंत्रण देना।"

उनकी कहानियों में उपमा के भी अनूठे प्रयोग देखने को मिलते हैं, जैसे: "वह लंगर की तरह कूद पड़ा", "बहस में वह इस तरह भाग लेने लगा, जैसे भादों की अंधेरी रात में कुत्ते भौंकते हैं", "उसने कौए की तरह सिर घुमा कर शंका से दोनों ओर देखा। आकाश एक स्वच्छ नीले तंबू की तरह तना हुआ था", "लक्ष्मी का मुँह हमेशा एक कुल्हड़ की तरह फूला रहता था", और "दिलीप का प्यार फागुन के अंधड़ की तरह बह रहा था"।

**आलोचना**

रचनात्मक दृष्टिकोण से, अमरकांत को यशपाल ने गोर्की के समकक्ष माना था। उन्होंने लिखा, "क्या केवल आयु में छोटे होने या हिन्दी में प्रकाशित होने के कारण अमरकांत को गोर्की की तुलना में कमतर माना जाएगा? जब मैंने अमरकांत को गोर्की कहा था, तब मेरी याद में गोर्की की कहानी 'शरद की रात' थी। उस कहानी में एक साधनहीन व्यक्ति को परिस्थितियों और उन्हें उत्पन्न करने वाले कारणों के प्रति जो आक्रोश महसूस हुआ था, वही आक्रोश मुझे अमरकांत की कहानियों में भी दिखाई दिया।"

## *16.7 सार संक्षेप*

फणीश्वर नाथ रेणू और अमरकांत भारतीय साहित्य के प्रमुख कहानीकार हैं, जिन्होंने हिंदी कथा साहित्य में यथार्थवाद की नई दिशा दी। इस इकाई में इन दोनों लेखकों के साहित्यिक योगदान और उनकी लेखन शैली पर चर्चा की गई है। फणीश्वर नाथ रेणू की रचनाओं में ग्रामीण जीवन का जीवंत चित्रण मिलता है।

उनकी कहानियाँ न केवल ग्रामीण भारत की समस्याओं को उजागर करती हैं, बल्कि समाज के विभिन्न वर्गों की समस्याओं को भी उजागर करती हैं। रेणू का साहित्य यथार्थवाद से ओत-प्रोत है, और उनकी कहानियों में देशी बोली-भाषाओं का सजीव प्रयोग मिलता है। उनकी काव्यात्मक भाषा और विशेष ध्यान से लिखा गया कथा साहित्य समाज के विविध पहलुओं को उजागर करता है।

अमरकांत का लेखन श्रमिक वर्ग और उनकी समस्याओं के इर्द-गिर्द घूमता है। उनकी रचनाओं में समाज के पिछड़े वर्ग की समस्याएँ और उनका संघर्ष प्रमुख रूप से दिखाई देते हैं। अमरकांत के पात्र जीवन की कठिनाइयों से जूझते हुए सामाजिक और आर्थिक असमानताओं को समझते और उनका सामना करते हैं।

इन दोनों लेखकों ने साहित्य में सामाजिक यथार्थ की स्थापना की और अपने लेखन के माध्यम से समाज के विभिन्न वर्गों की आवाज़ उठाई। उनके योगदान को समझने के लिए उनके पात्रों और उनके द्वारा चित्रित किए गए समाजिक परिवेश का गहन अध्ययन आवश्यक है।

## *16.8 मुख्य शब्द*

1. **सृजनात्मकता (Creativity)**: यह शब्द किसी नई या मौलिक चीज़ को उत्पन्न करने की क्षमता को दर्शाता है। इसका मतलब है नए विचारों, दृष्टिकोणों या कृतियों को पैदा करना। यह कला, विज्ञान, साहित्य, और अन्य क्षेत्रों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।
2. **साधनहीन (Resource-less)**: इसका अर्थ है कि किसी के पास जरूरी संसाधन या उपकरण की कमी हो। जब किसी व्यक्ति या समूह के पास अपने कार्य को पूरा करने के लिए आवश्यक साधन या सामर्थ्य नहीं होते, तो उसे साधनहीन कहा जाता है।
3. **आक्रोश (Anger/Outrage)**: यह एक मानसिक या भावनात्मक स्थिति है जिसमें व्यक्ति में क्रोध, गुस्सा, या आक्रामकता महसूस होती है।

आक्रोश किसी अन्याय, दुःख या असहमति के प्रति प्रतिक्रिया हो सकता है।

4. **तत्कालीन (Immediate/Contemporary)**: इसका मतलब होता है वर्तमान समय से संबंधित, या जो तुरंत घटित हो। यह किसी घटना, स्थिति या व्यक्ति के उस समय से जुड़ा हुआ होता है, जब या जहां वह घटित हो रहा हो।

## *16.9 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर*

प्रगति की जांच

1. उत्तर - 1921
2. उत्तर - काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
3. उत्तर - मैला आँचल
4. उत्तर - एक आदिम रात्रि की महक

## *16.10 संदर्भ सूची*


1. कुमार, आर. (2021). *ग्रामीण भारत की कथाएँ: फणीश्वरनाथ रेणु और अमरकांत के काव्यात्मक विश्लेषण*। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
2. सिंह, ए. (2023). *हिंदी साहित्य का पुनः अवलोकन: फणीश्वरनाथ रेणु और अमरकांत का तुलनात्मक अध्ययन*। मनोहर पब्लिशर्स।
3. साहू, एस. (2022). *ग्रामीण भारत की आवाज़ें: रेणु और अमरकांत के दृष्टिकोण*। प्राइमस बुक्स।


## *16.11 अभ्यास प्रश्न*

1) फणीश्वर नाथ रेणु का संक्षिप्त परिचय लिखिए
2) अमरकांत का संक्षिप्त परिचय लिखिए
3) फणीश्वर नाथ रेणु के प्रमुख कृतियों का नाम लिखिए

4) अमरकांत की भाषा शैली को विस्तार से समझाइए